25988

सुदर्शन चरित्र

42

सेठिया [illegible] की तरफ से भेंट.

प्रकाशक—
श्री साधुमार्गी जैन
पूज्य श्री हुक्मीचंदजी महाराज की सम्प्रदाय का
हितेच्छु श्रावक मण्डल
रतलाम (मालवा)

व्याख्यान सार-संग्रह पुस्तकमाला का १४ वां पुष्प

श्रीमज्जैनाचार्य्य

पूज्य श्री जवाहिरलालजी महाराज

के

व्याख्यानों में से

सुदर्शन चरित्र

Sadhumarg

सम्पादक और प्रकाशक—

श्री साधुमार्गी जैन

पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय

का

हितेच्छु श्रावक मण्डल, रतलाम (मलवा)

मुद्रक—
के० हमीरमल लूणियां जैन
अध्यक्ष—दि डायमण्ड जुबिली (जैन) प्रेस, अजमेर

वि० संवत १९९५
वीर संवत २४६५
ईस्वी सन १९३८

अर्द्ध मूल्य
॥=)

प्रथम संस्करण
२०००

4E15713/11

व्याख्यान सार-संग्रह पुस्तकमाला का १४ वां पुष्प

श्रीमज्जैनाचार्य्य

पूज्य श्री जवाहिरलालजी महाराज

के

व्याख्यानों में से

सुदर्शन चरित्र

Sadhumarg

सम्पादक और प्रकाशक—
श्री साधुमार्गी जैन
पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय
का
हितेच्छु श्रावक मण्डल, रतलाम (मलवा)

मुद्रक—
के० हमीरमल लूणियां जैन
अध्यक्ष—दि डायमण्ड जुबिली (जैन) प्रेस, अजमेर

वि० संवत १९९५
वीर संवत २४६५
ईस्वी सन १९३८

अर्द्ध मूल्य
॥=)

प्रथम संस्करण
२०००

4815/1311

कागज और छपाई आदि की लागत से इस पुस्तक का

मूल्य ॥=) दस आने होते हैं

लेकिन

भीनासर (बीकानेर) निवासी

श्रीमान् सेठ

प्रेमराजजी हजारीमलजी बांठिया

की फर्म ने

सर्व साधारण इस पुस्तक से लाभ उठा सके इस
दृष्टि से आधी लागत अपने तरफ से
भेंट स्वरूप प्रदान करके यह पुस्तक

अर्द्ध मूल्य ।-) में

वितीर्ण करवाई है !

Acc. No 23988
Cost Re 0.60
Date 30.12.64
H 831
5115

दो शब्द

श्रीमजैनाचार्य्य पूज्य श्री १००८ श्री जवाहरलालजी महाराज के व्याख्यानों में से सम्पादित "सुदर्शन चरित्र" नामक यह पुस्तक 'व्याख्यान सार-संग्रह पुस्तकमाला' का चौदहवाँ पुष्प है। इससे पहिले व्याख्यानों में से सम्पादित कराके तेरह पुष्प मण्डल प्रकाशित कर चुका है, जो जैन एवम् जैनेतर जनता के कर कमलों में पहुँच कर सम्मान पा रहे हैं। जनता इन पुस्तकों को बड़े प्रेम से अध्ययन व मनन करके इन पुस्तकों से अनेक शिक्षाएँ ग्रहण करती हैं, यह देख कर मण्डल को भी ऐसी आदर्श पुस्तकें सम्पादन कर प्रकाशित कराने में प्रोत्साहन मिलता है और प्रसन्नता होती है।

मण्डल से सम्पादित साहित्य में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और परिग्रह-संयम यह पांच विषय मुख्य हैं, जो जैन दर्शन के प्राण स्वरूप मूल गुण हैं। इतना ही नहीं जैनेतर दर्शनों ने भी इन को धर्म के मूल भूत सिद्धान्त माने हैं। इसके अतिरिक्त

अभी तक जितने भी पुष्प मण्डल की ओर से प्रकाशित हुए हैं, वे इन व्रतों का कर्तव्य रूप में आचरण करने वाले उच्च आत्माओं के जीवन वृत्तान्त हैं जो हमारे लिए मार्ग दर्शक हैं।

अन्य चार मूल गुण तो पुरुष या स्त्री कोई भी हो एक हीपात्र की अपक्षा रखते हैं किन्तु ब्रह्मचर्य नामक चतुर्थ व्रत स्त्री एवम् पुरुष दोनों पात्रोंकी अपेक्षा रखता है। मण्डल से सम्पादित साहित्य में ब्रह्मचर्य व्रत के साथ उसके आचरण करनेवाले पात्रों में सती राजमती, सती शिरोमणी वसुमती आदि स्त्री पात्रों के चरित्र तो आ चुके हैं परन्तु पुरुष पात्र का कोई चरित्र नहीं आया था। इस सुदर्शन चरित्र के सम्पादन से यह कमी भी पूर्ण हो जाती है।

नियमानुसार यह पुस्तक छपने से पूर्व श्री अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स ऑफिस बम्बई को भेज कर साहित्य निरीक्षक समिति द्वारा प्रमाणित करा ली गई है और प्राप्त सूचनाओं के अनुसार सुधार भी कर दिया गया है।

मण्डल द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की कीमत केवल कागज और छपाई की लागत के अन्दाज से ही रखी जाती है। सम्पादन आदि किसी प्रकार के खर्च का भार पुस्तकों पर नहीं डाला जाता। पुस्तक की कागज व छपाई के खर्च के लिहाज से कीमत ।|=) होती है। परन्तु भीनासर निवासी श्रीमान् सेठ

प्रेमराजजी हजारीमलजी बांठिया की फर्म की तरफ से कागज छपाई आदि का अर्द्ध खर्च प्रदान करके अर्द्ध मूल्य ।-) में वितीर्ण कराई गई है । अतः हम सेठजी की उदारता की प्रशंसा करते हुए आपका आभार मानते हैं ।

यह कह देना भी अप्रसाङ्गिक न होगा कि श्रीमज्जैनाचार्य्य पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज साहब जो भी व्याख्यान फरमाते हैं, वे साधु भाषा में ही होते हैं परन्तु संग्राहक-सम्पादक के द्वारा भाव, भाषा आदि में परिवर्तन हो गया हो और उसके द्वारा वास्तविकता फरक पड़ गया हो तो उसके जिम्मेवार सम्पादक-संग्राहक ही हैं, पूज्य श्री नहीं । यदि किसी प्रकार की त्रुटि रह गई हो तो हमें सूचना करने की कृपा करेंगे ताकि द्वितीय संस्करण में उचित परिमार्जन किया जा सके । इत्यलम् ।

निवेदक—

मिती श्रावण शु० १५
वि० सं० १९९५
वीर सं० २४६५
ई० सन् १९३८

बालचंद श्रीश्रीमाल वर्द्धमान पीतलिया
सैक्रेटरी प्रेसीडेण्ट
श्री साधुमार्गी जैन पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी
महाराज की सम्प्रदाय का हितेच्छु श्रावक
मण्डल, रतलाम (मालवा)

प्रकरण सूची

प्रकरण ... पृष्ठांक

१—कथा प्रारम्भ १
२—सुभग के भव में १३
३—नवकार मन्त्र-माहात्म्य २५
४—नवकार मन्त्र का अर्थ ३८
५—नवकार मन्त्र पर दृढ़ता ४७
६—बालक सुदर्शन ६१
७—सुदर्शन सेठ ७४
८—कपिला के कपटजाल में ९०
९—अभया की प्रतिज्ञा ११५
१०—पंडिता का पाण्डित्य १२८
११—राजमहल में सुदर्शन १४३
१२—कठिन कसौटी १५६
१३—अभियुक्त सुदर्शन १८७
१४—निर्णय २०३
१५—पति पर विश्वास २१०
१६—शूली का सिंहासन २२३
१७—सुदर्शन की उदारता २४२
१८—अभया का अन्त २५९
१९—सुदर्शन मुनि २६९
२०—मोक्ष २९०
२१—उपसंहार ३०२

१

कथारम्भ

भारतवर्ष के अंगदेश में, चम्पापुरी नाम की एक नगरी थी। चम्पापुरी, बहुत प्रसिद्ध तथा उन्नत थी। भगवान महावीर के समय का वर्णन करते हुए, कोणिक को भी चम्पा का राजा कहा है। और दधिवाहन को भी, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि एक ही चम्पा के ये दोनों राजा प्रथम पश्चात् हुए हैं, अथवा चम्पा नाम की दो नगरियाँ थीं, लेकिन जैन और बौद्ध साहित्य में चम्पा का बहुत ही वर्णन मिलता है। उस

वर्णन से प्रकट है कि उस समय चम्पानगरी प्रत्येक दृष्टि से उन्नत थी। भगवान महावीर के वर्णन में चम्पापुरी का बहुत उल्लेख है। औपपातिक सूत्र में चम्पापुरी का विवरण देकर बताया गया है कि चम्पापुरी कैसी थी। उस वर्णन में आई हुई बातों पर विचार करने से ही, चम्पानगरी की स्थिति और उसकी उन्नत दशा का पता लग सकता है। औपपातिक सूत्र में चम्पापुरी का वर्णन करते हुए प्रारम्भ में ही कहा गया है कि—

तेणं कालेणं तेणं समयेणं चम्पा नामं
नगरी होत्था रिद्धित्थिमिय समिद्धा ॥

इस वर्णन से यह भी जाना जाता है, कि नगर में तीन बातों का होना आवश्यक है। पहली बात है, ऋद्धि। ऋद्धि का अर्थ-हाट, हवेली, महल, मकान, बाग, तालाब, कूप आदि। जल पवन् और निवास आदि की सुविधा के साधनों की गणना ऋद्धि में है। दूसरी बात है समृद्धि। नगर के लिए ऋद्धि के साथ समृद्धि का होना आवश्यक है। समृद्धि का अर्थ है धनधान्यादि। यदि रहने के लिए महल मकान तो हों, लेकिन खाने-पीने आदि जीवनोपयोगी साधनों का कष्ट हो, तो वे महल मकान आदि सुखदाई होने के स्थान पर दुःखदायी हो जावेंगे। ऋद्धि और समृद्धि के साथ ही, नगरों के लिए तीसरी बात राजकीय सुव्यवस्था का होना भी आवश्यक है।

समृद्धि तो हो, परन्तु राजकीय सुव्यवस्था न हो, किन्तु स्वचक्र परचक्र का भय हो, या परचक्र का आधिपत्य हो, तो वहाँ की ऋद्धि समृद्धि थोड़े ही समय में भारत की ऋद्धि समृद्धि की भाँति नष्ट हो जावेगी। जिस नगर में ऋद्धि भी हो, समृद्धि भी हो और राजकीय सुव्यवस्था भी हो, वह नगर सुखी एवं उन्नत माना जाता है। शास्त्र के वर्णनानुसार चम्पापुरी में ये तीनों ही बातें थीं और इस प्रकार उस समय चम्पापुरी उन्नत नगरी थी। चम्पापुरी का सुधार केवल इहलौकिक सुधार तक ही सीमित न था, किन्तु उसका आध्यात्मिक सुधार भी था। शास्त्र के वर्णन से पाया जाता है, कि भगवान महावीर चम्पापुरी में बार-बार पधारते थे। इससे प्रकट है, कि वहाँ के लोग धार्मिक थे। साथ ही चम्पापुरी में चन्दनबाला ऐसी कन्या और सुदर्शन ऐसा पुरुष उत्पन्न हुआ था, इससे भी यह जाना जाता है कि वहाँ के लोगों का धार्मिक जीवन अच्छा था। वैसे तो, जहाँ अच्छाई होती है वहाँ किसी न किसी अंश में बुराई भी होती है। इसके अनुसार कपिला पंडिता और अभया जैसी बुरे आचरणवाली स्त्रियाँ भी चम्पा में ही हुई थीं, लेकिन इनके कारण चम्पा को दूषण नहीं दिया जा सकता और हो सकता है, कि ये तीनो स्त्रियाँ चम्पा से बाहर की हों। भगवान महावीर के चातुर्मास, साधुसन्तों का समय-समय पर आगमन, और सती चन्दनबाला तथा सुदर्शन सेठ जैसे महापुरुष का जन्म चम्पा के

लिए यही सिद्ध करता है, कि चम्पा के अधिकाँश निवासी धर्मात्मा थे ।

चम्पापुरी के राजा का नाम दधिवाहन था । दधिवाहन, प्रजाप्रिय न्यायशाली और नीतिनिपुण राजा था । राजा वही अच्छा माना जाता है, जो क्षेमंकर और क्षेमंधर हो । जनता की कुशल के लिए पहले से जो मर्यादा बंधी हुई है, उसकी रक्षा करनेवाला और नवीन परन्तु जनता के लिए हितकारी मर्यादा बाँधनेवाला राजा ही अच्छा समझा जाता है । दधिवाहन, ऐसा ही राजा था । वह प्रजा का अच्छी तरह से पालन करता था ।

राजा दधिवाहन की पटरानी का नाम अभया था । अभया, बहुत सुन्दरी थी, इस लिए राजा दधिवाहन उसको स्त्रियों में रत्न के समान मानता था और हृदय से चाहता था। सुन्दरी होने के साथ ही अभया, त्रियाचरित्र में भी कुशल थी । उसने, अपने त्रियाचरित्र के बल से राजा दधिवाहन को अपना सेवक-सा बना रखा था । उसको अपने रूप सौन्दर्य एवं अपनी चातुरी पर गर्व भी था । उसी ने, सुदर्शन सेठ को अपने कपट जाल में फाँस कर शीलभ्रष्ट करना चाहा था, और उसी के कृत्य के कारण, सुदर्शन सेठ का चरित्र गाया-सुना जाता है, तथा सुर्शन सेठ की जय बोली जाती है ।

चम्पापुरी में ही, जिनदास नाम का सेठ रहता था । जिनदास, धनसम्पन्न एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति था । राजा तथा प्रजा ने, जिनदास

को 'नगरसेठ' पद से विभूषित कर रखा था। उसकी पत्नी का नाम, अर्हद्दासी था। अर्हद्दासी, पतिभक्ता और धर्मपरायणा स्त्री थी। पतिपत्नी, धार्मिक और श्रावकव्रतधारी थे। दोनों, पारस्परिक सहयोग से सुखपूर्वक गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करते हुए, श्रावक-धर्म का पालन करते थे, तथा अपने-अपने नाम की सार्थकता सिद्ध करते थे। लेकिन इन दोनों से कोई सन्तान न थी। सन्तान न होने के कारण पतिपत्नी को किसी प्रकार का खेद तो न था, फिर भी स्त्री-स्वभावानुसार अर्हद्दासी को एक दिन यह विचार हो आया, कि मुझे और सुख तो प्राप्त हैं, पति भी मुझ पर कृपा रखनेवाले एवं धर्मात्मा हैं, घर भी सम्पन्न है, तथा लौकिक प्रतिष्ठा भी अच्छी है, परन्तु पुत्र नहीं है इसलिए भविष्य अन्धकारमय है। पुत्र न होने के कारण, हम लौकिक धर्म का भार किसको सौंप कर आत्म-कल्याण में लग सकेंगे! हमारा उत्तराधिकारी कौन होगा! वास्तव में, गार्हस्थ्य जीवन के लिए पुत्र का होना आवश्यक है। पुत्र के बिना कुल उसी प्रकार सूना रहता है, जिस प्रकार रात्रि में दीपक के बिना घर सूना रहता है। वे स्त्रियाँ निश्चय ही सद्भागिन हैं, जिनको 'माता' बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, लेकिन मैं ऐसी हतभागिन हूँ कि मैंने एक भी सन्तान को जन्म नहीं दिया। विवाह करके अपने पर जो ऋण चढ़ाया जाता है, वह ऋण विषय-विलास से नहीं उतरता, किन्तु सन्तान का पालनपोषण करने से ही उतरता है। सन्तान

की सेवा और सन्तान की अनुकम्पा, दाम्पत्य-जीवन में होने वाले पाप से मुक्त भी कर सकती है। मुझे ऐसा अवसर ही नहीं मिला, कि जिससे मैं दाम्पत्यजीवन के ऋण से मुक्त होती। मेरे पर यह ऋण भी है, और मेरा भविष्य भी अन्धकार-पूर्ण है।

इस प्रकार विचार करती-करती अर्हद्दासी, चिन्तित हो उठी। उसका प्रसन्न मुख, फीका पड़ गया। जब मन में किसी प्रकार की चिन्ता होती है, तब मनुष्य को खाना-पीना पहना-ओढ़ना या हँसना बोलना आदि कुछ भी अच्छा नहीं लगता। इसी के अनुसार, अर्हद्दासी को भी सब कुछ बुरा लगने लगा।

अर्हद्दासी इस प्रकार की चिन्ता में बैठी थी, इतने ही में बाहर से सेठ आया। अपनी पत्नी को उदास देख कर सेठ समझ गया, कि आज पत्नी को कोई बड़ी चिन्ता है, इसी से यह उदास है। सेठ ने सेठानी से पूछा, कि आज तुम्हें ऐसी क्या चिन्ता है, जिसके कारण तुम इस प्रकार उदास हो ? पति को अपने सामने और इस प्रकार का प्रश्न करते देख कर अर्हद्दासी ने विचार किया, कि मैं अपनी चिन्ता से पति को क्यों दुःखित करूँ ! यह विचार कर उसने अपनी चिन्ता दबा पति से कहा, कि जिसे आप ऐसा पति प्राप्त है, उस स्त्री को किसी प्रकार की चिन्ता कैसे हो सकती है ? मुझे कोई चिन्ता नहीं है।

इस प्रकार पति से प्रिय वचन कह कर अर्हद्दासी ने जिनदास को सन्तुष्ट करने की चेष्टा की, लेकिन अर्हद्दासी का मुख यह स्पष्ट बता रहा था, कि इसको किसी प्रकार की चिन्ता है। सेठ, बुद्धिमान था। वह समझ गया, कि अर्हद्दासी मेरे सामने अपनी चिन्ता प्रकट करके मुझे अपनी चिन्ता के दुःख से दुःखी नहीं करना चाहती। यह समझने के साथ ही सेठ ने विचार किया कि यह तो अपने कर्त्तव्य का ऐसा विचार रखती है, फिर क्या मेरा यह कर्त्तव्य नहीं है, कि मैं इसकी चिन्ता मिटाऊँ! बुद्धिमानों का कथन है, कि पत्नी को सदा प्रसन्न रखना, मुर्झाई हुई कभी न रहने देना। पत्नी, अर्द्धाङ्गा है। इसलिए उसको मुर्झाई हुई रहने देना, अपने आधे अंग को ही मुर्झाया हुआ रखना है। इसलिए मेरा भी कर्त्तव्य है, कि मैं इसकी चिन्ता मिटाने और इसे प्रसन्न करने का प्रयत्न करूँ।

अर्हद्दासी की चिन्ता मिटाने के लिए, जिनदास ने अनेक प्रयत्न किये। प्रसन्नता देनेवाली बातें भी की, अर्हद्दासी को, खेल-तमाशे भी दिखलाये तथा वन उपवन में भी घुमाया, परन्तु यथेष्ट परिणाम न निकला। जिनदास ने देखा, कि अर्हद्दासी ऊपर से तो प्रसन्नता दिखलाती है, लेकिन इसका हृदय प्रसन्न नहीं है, किन्तु चिन्ताग्रस्त हो है। इसको प्रसन्नता प्राप्त कराने के लिए किये गये मेरे सब कार्य 'रोग दूसरा और औषध दूसरी' के समान व्यर्थ

हुए हैं। इसलिए अब इसी से यह जानना चाहिये, कि इसको क्या चिन्ता है।

जिनदास ने अर्हद्दासी से कहा, कि—प्रिये, मुझको कष्ट न हो, इसलिए तुमने अपनी चिंता दबाने की चेष्टा की, लेकिन तुम्हारी आकृति यह स्पष्ट कह रही है कि तुम्हारे हृदय में चिन्ता है। मैंने, तुम्हें चिन्ता मुक्त करने का प्रयत्न भी किया, परन्तु मुझे मेरे प्रयत्न में सफलता नहीं मिली। इससे मैं समझ गया, कि तुम्हें कोई ऐसी बड़ी चिन्ता है, जो इन प्रयत्नों से नहीं दब सकती। यदि तुम उचित समझो तो मुझे भी यह बताओ, कि तुमको किस चिन्ता ने घेर रखा है। तुम समझती हो, कि चिन्ता प्रकट करने पर पति को कष्ट होगा, परन्तु वास्तव में मैं तुम्हारी चिन्ता न जानने से दुःखी हो रहा हूँ, और मेरे हृदय में यह विचार होता है, कि क्या मैं तुम्हारी चिन्ता सुनने के योग्य नहीं हूँ!

पति की बात सुनकर अर्हद्दासी ने विचार किया, कि पति मेरी चिन्ता जानने के लिए आतुर हैं, और चिन्ता न जानने से दुःखी हैं। इसलिए अब इनसे चिन्ता का कारण अप्रकट रखना ठीक नहीं। इस प्रकार सोच कर उसने जिनदास से कहा—नाथ, आप यह क्या कह रहे हैं! ऐसी कौनसी बात हो सकती है जिसे सुनने के योग्य आप न हों? यह मेरा सद्भाग्य है, कि मुझे आप पति मिले हैं—जो मेरी चिन्ता का कारण न जानने से दुःखी हैं

अन्यथा मेरी अनेक बहनों को तो ऐसे पति मिले हैं, जो पत्नी की चिन्ता जानने मिटाने के बदले स्वयं ही पत्नी को दुःख देते हैं। मैं केवल यह सोच कर ही आप से अपनी चिन्ता दबा रही थी, कि मेरी चिन्ता का कारण सुना कर मैं आपको दुःखित क्यों करूँ! लेकिन आप तो मेरी चिन्ता का कारण न जानने से दुःखित हैं, इसलिए अब यह बताती हूँ कि मुझे किस बात की चिन्ता है। यह तो आप जानते ही हैं, कि मैं अपनी कुछेक दूसरी बहनों की तरह खाने-पीने या गहने-कपड़े की चिन्ता नहीं कर सकती! पूर्व-पुण्य के प्रताप से और आपकी कृपा से, खाने-पीने या गहने-कपड़े आदि की कुछ कमी भी नहीं है, और कदाचित् कमी भी होती तो मैं धर्म को समझती हूँ इसलिए इन चीजों के विषय में चिन्ता नहीं कर सकती। पति—यानी आपकी ओर से भी मुझे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं है। मेरी अनेक बहनों को तो ऐसे पति मिले हैं, जो पत्नी को अपमानित तथा दुःखित करते रहते हैं और जिनका आचरण भी पत्नी के लिए दुःखदायी रहता है। मेरे सद्भाग्य से मुझे इस ओर का कोई कष्ट नहीं है। बल्कि मैं तो यही मनाती रहती हूँ, कि जैसे सुयोग्य पति मुझे मिले हैं, वैसे ही पति मेरी सब बहनों को मिलें। इस प्रकार मुझे और किसी बात की चिन्ता नहीं है, केवल यही चिन्ता है, कि अपने यहाँ कोई सन्तान नहीं है। आज अपन जिस धर्म का पालन कर रहे हैं,

अपने पश्चात् उस धर्म का पालन कौन करेगा, और अपन लोकोत्तर-धर्म स्वीकार करके आत्म-कल्याण करने के लिए घर-बार आदि का बोझ किस पर डालेंगे! अपना उत्तराधिकारी कौन होगा! इस भविष्य सम्बन्धी विचार से ही मेरे को चिन्ता है। मैं, रह-रह कर यही सोचती हूँ, कि हमारा दाम्पत्य-जीवन केवल विषय-भोग के लिए ही रहा। सन्तानोत्पत्ति और उसके पालन-पोषण विषयक कर्त्तव्य पालन करने का अवसर हमें नहीं मिला। पत्नी का कर्त्तव्य है, कि वह पति से जो कुछ लेती है, उसके बदले में पति को सुयोग्य सन्तान दे। लेकिन मैं अपना यह कर्त्तव्य पूरा न कर पाई और ऋणी ही बनी रही। इन्हीं विचारों से मैं चिन्तित हूँ।

अर्हद्दासी का कथन सुनकर जिनदास समझ गया, कि अर्हद्दासी को सन्तान विषयक चिन्ता है और यह चिन्ता मेरे ऋण से मुक्त होने के लिए है। यद्यपि स्त्रियों को इस प्रकार की चिन्ता होना अस्वाभाविक नहीं है, लेकिन मैं पुरुष हूँ और जिनभक्त हूँ। इसलिए मुझे मेरे योग्य ही काम करना चाहिये। इस प्रकार सोच कर जिनदास ने अर्हद्दासी से कहा, कि—प्रिये, सन्तान का होना न होना अपने हाथ की बात नहीं है। तुमने, जान बूझकर तो सन्तानोत्पत्ति को रोका नहीं। यदि सन्तान होती, तो तुम उसके पालन-पोषण द्वारा मातृ-कर्त्तव्य पूरा करके दाम्पत्य जीवन के ऋण से

मुक्त हो जातीं। लेकिन जब सन्तान हुई ही नहीं, तब तुम क्या कर सकती हो? ऐसी दशा में इस विषयक तुम्हारी चिन्ता व्यर्थ है। तुम चाहे जितनी चिन्ता करो, तुम्हारी चिंता सन्तानोत्पत्ति के लिए उपयोगी नहीं हो सकती। बल्कि इस विषय में तुम्हारा चिन्तित होना, अपनी धार्मिकता को दूषित करना है। अपन, जिन भक्त श्रावक हैं। अपने को इस प्रकार की चिन्ता होनी ही न चाहिये। इसलिए तुम चिन्ता त्यागो। रही उत्तराधिकारी की बात सो उत्तराधिकारी हो या न हो, अपने आत्मा के कल्याण अकल्याण पर इस बात का कोई प्रभाव नहीं हो सकता। उत्तराधिकारी के होने मात्र से अपने आत्मा का कल्याण नहीं हो सकता और उत्तराधिकारी के न होने से अपने आत्मा का अकल्याण नहीं हो सकता। इसलिए चिन्ता छोड़ो, और दान-धर्म के कार्य विशेष रूप से करती हुई अपना धन सद्कार्य में लगाओ। यदि अपनी पुत्र विषयक अन्तराय टूटनी होगी तब तो टूट ही जावेगी, नहीं तो अपने आत्मा का कल्याण तो होगा, तथा अपना द्रव्य सद्कार्य में लगेगा, किसी अयोग्य के हाथ में न जावेगा। अयोग्य उत्तराधिकारी को द्रव्य सौंपने की अपेक्षा, द्रव्य को सद्कार्य में लगाना ही श्रेष्ठ है। वैसे तो तुम धर्म-कार्य करती ही रहती हो, लेकिन अब से विशेष करो, और अपना द्रव्य भी दानादि शुभ कार्यों में विशेष रूप से लगाओ। इस प्रकार की चिन्ता, सर्वथा त्याग दो।

जिनदास ने, अपनी पत्नी अर्हद्दासी को इस प्रकार समझ बुझा कर चिन्ता मुक्त किया। पति के वचनों से अर्हद्दासी सन्तुष्ट हुई, और पति की आज्ञानुसार पहले की अपेक्षा अधिक रूप से धर्म-ध्यान तथा दानादि सद्कार्य करने लगी। जिनदास भी श्रावक धर्म का पालन करता हुआ विशेष रूप से धर्म-ध्यान करने लगा एवं इस दिशा में अर्हद्दासी का उत्साह बढ़ने लगा।

२

सुभग के भव में

आत्मा को जो भी सुख-दुःख तथा हानि-लाभ होता है, इष्ट-अनिष्ट का संयोग-वियोग देखना पड़ता है, अथवा स्वयं जो उत्थान या पतन होता है, वह वर्त्तमान भव की करणी का परिणाम नहीं होता, किन्तु पूर्व के एक या अनेक भव की रणी का परिणाम भी उसके साथ रहता है। यह बात शास्त्र से प्रकट है, और अनुभव से भी सिद्ध है। इस भव की करणी परिणाम, इस भव में भी प्राप्त होता है और अगले भव में भी, न्तु अच्छी या बुरी करणी का परिणाम प्राप्त तो होता ही है।

यह बात दूसरी है, कि कारण विशेष की सहायता से इस तरह के परिणाम को विपाक में भोगने के बदले प्रदेश से ही भोग लिया जावे, अथवा परिवर्त्तन कर दिया जावे, और प्रकट में परिणाम का उस रूप में भोगना दृष्टि में न आवे, लेकिन अपने कृत्य का परिणाम किसी न किसी रूप में प्राप्त अवश्य होता है; और वह परिणाम चाहे वर्त्तमान भव में प्राप्त हो, या अगले भव में। कर्म की स्थिति जब परिणाम देने के योग्य होती है, तभी परिणाम प्राप्त होता है, और ऐसा होने में कभी-कभी अनेक भव का अन्तर भी पड़ जाता है। यानी एक भव के कृत्य का परिणाम, कई भव के पश्चात् भी मिलता है।

कहने का मतलब यह हैकि सुख-दुःख की अच्छाई-बुराई अथवा उन्नति अवनति आत्मा के कृत्य का ही परिमाण है, फिर वह परिणाम चाहे इस भव के कृत्य का हो, अथवा पूर्व के किसी भव के कृत्य का। एक आत्मा सुखी है, और दूसरा दुःखी है। एक संसार में भ्रमण करने के कार्य करता है,और दूसरा संसार से निकलने का। यह सब आत्मा के भिन्न-भिन्न कृत्यों का ही परिणाम है।

जिस सुदर्शन सेठ की यह कथा है, वह सुदर्शन सेठ लौकिक दृष्टि से भी सुखी था, और लोकोत्तर दृष्टि से भी। उसको इहलौकिक सुख भी प्राप्त था, और पारलौकिक सुख भी प्राप्त हुआ। इहलौकिक सुख की दृष्टि से वह स्वस्थ था, सुन्दर था, कुलीन

था, अनुकूल स्त्रीपुत्र वाला था, धनी था, और प्रतिष्ठा प्राप्त भी था। इन सब इहलौकिक सुख के प्राप्त होने पर, किसी किसी को पारलौकिक सुख प्राप्त नहीं होता। बल्कि कोई कोई ऐसे भी होते हैं, जो इहलौकिक सुखों की सामग्री प्राप्त होने पर, परलोक के लिए और दुःख पैदा कर लेते हैं। वे इहलौकिक सुख-सामग्री का उपयोग ऐसी रीति से करते हैं, कि जिससे आगामी भव में या तो नरक तिर्यक गति को प्राप्त होते हैं, अथवा आत्मा को मोक्ष की ओर अग्रसर नहीं कर सकते। लेकिन सुदर्शन सेठ ने इहलौकिक सब सुख प्राप्त होने पर भी आत्मा को मोक्ष की ओर अग्रसर किया, और अन्ततः उसी भव में मोक्ष भी प्राप्त कर लिया। यद्यपि इसमें सुदर्शन की वर्त्तमान भव की करणी का परिणाम भी है, लेकिन पूर्व-भव की अच्छी करणी के बिना वर्त्तमान भव में अच्छी करणी भी नहीं हो सकती, और मोक्ष के लिए केवल वर्त्तमान भव की करणी ही पर्याप्त नहीं होती, किन्तु अनेक जन्म की करणी के एकत्रित परिणाम से ही आत्मा को मोक्ष प्राप्त होता है। यह बात, जैन शास्त्रों को भी मान्य है, और अजैन ग्रन्थों को भी। इसलिए सुदर्शन के विषय में यह देखना है, कि उसकी पूर्व भव की ऐसी कौन सी करणी थी, जो उसे सुदर्शन के भव में इहलौकिक और पारलौकिक सुख प्राप्त करानेवाली हुई। पूर्व-भव में सुदर्शन ग्वाले का बालक था, और वहाँ उसका नाम सुभग था।

सुभग, किस करणी के प्रताप से सुदर्शन का चरमशरीरी भव तथा मोक्ष प्राप्त कर सका, यह देखना है। यद्यपि मोक्ष-प्राप्ति में किसी न किसी रूप से सुभग के पूर्व-भव अथवा पूर्व-भवों की करणी भी आभारी हो सकती है, परन्तु उन भवों का इतिहास नहीं है, इसलिए सुदर्शन के केवल एक ही पूर्व-भव—सुभग-की करणी के विषय में ही विचार किया जाता है।

पहले के प्रायः सभी श्रावकों के वर्णन से यह पाया जाता है, कि उनके यहाँ गायें भी रहती थीं। आनन्द कामदेव आदि श्रावकों का वर्णन करते हुए शास्त्र में बताया गया है, कि उन लोगों के यहाँ हजारों गायें थीं। पहले के लोग, जीवन-निर्वाह के लिए गाय का होना आवश्यक मानते थे। आज के लोग तो गोपालन को ओछा तथा असुविधापूर्ण कार्य मानते हैं। ऐसा माननेवाले लोगों ने गायों से उत्पन्न घी दूध आदि खाना तो नहीं छोड़ा है, लेकिन गायों का पालना छोड़ दिया है। ऐसा करने से उनकी स्वयं की भी हानि हुई है, और गायों की भी। स्वयं के लिए गाय पालने वाले में और दूध का व्यवसाय करने के लिए गायें रखनेवाले में, प्रत्येक दृष्टि से अन्तर है। जो स्वयं के लिए गाय पालता है, उस का यह लक्ष्य होता है, कि गाय को अच्छी खुराक मिले, जिससे इसके द्वारा मुझे अधिक तथा शुद्ध एवं स्वास्थ्यवर्द्धक दूध प्राप्त हो और इसका तथा इसके बच्चे का स्वास्थ्य भी अच्छा रहे। इस प्रकार

वह गो की रक्षा का भी ध्यान रखता है, तथा उसके बच्चे की रक्षा का भी। चाहे वह दूध देती हो या न देती हो, स्वयं पर उसकी रक्षा का दायित्व समझता है, इसलिये दूध न देने पर भी उसकी सुविधा एवं उसके सुख का ध्यान रखता है और किसी भी समय उसे कष्ट नहीं होने देता। उसको अपने आत्मीय के समान मानता है। श्रावक में तो ये बातें विशेष रूप से होती हैं। इसके विरुद्ध जो लोग दूध का व्यवसाय करने वाले होते हैं, वे इन बातों का विचार नहीं रखते। उनका ध्येय तो यह रहता है कि मुझे गाय के खाने-पीने आदि में खर्च तो कम करना पड़े, लेकिन इसके द्वारा अधिक से अधिक दूध प्राप्त हो। फिर ऐसा करने में, गाय या उसके बच्चे को कष्ट ही क्यों न हो! बल्कि दूध का व्यवसाय करने के लिए गाय आदि दुधारू पशु पालनेवाले कई लोग, गाय भैंस के बच्चों को पैदा होते ही उसको माता से अलग कर देते हैं। माता, अपने बच्चे को देख भी नहीं पाती। फिर उस बच्चे को या तो कसाई के हाथ बेच देते हैं, या वह बच्चा भूख का मारा स्वयं ही मर जाता है। वे लोग ऐसा इसलिए करते हैं, कि यदि बच्चा उसकी माता की दृष्टि में आया, तो माता उससे प्रेम करेगी, उसके बिना दूध न देगी, तथा इस कारण वह बच्चा अपनी माता (गाय या भैंस) का कुछ दूध पीलेगा, जिससे दूध की हानि होगी या बच्चे के खाने-पीने में व्यय करना पड़ेगा। इस

प्रकार व्यय के भय से अपने स्वार्थ के लिये वे लोग गाय के बच्चे की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हत्या कर डालते हैं। साथ ही, गाय को खुराक भी ऐसी देते हैं, जिससे उसका अधिक से अधिक रक्त, दूध में परिणत हो और वह अधिक दूध दे। उनका लक्ष्य केवल अधिक दूध प्राप्त करना रहता है, यह लक्ष्य नहीं होता, कि दूध भी मिले और गाय की भी रक्षा हो। उनका प्रयत्न यह रहता है, कि गाय इसी बार में सब दूध दे डाले। इसके लिए वे ऐसे उपायों का अवलम्बन लेते हैं, जिससे गाय या भैंस उस वार तो अधिक दूध देती है, लेकिन आगे के लिए वह दूध देने के प्रायः अयोग्य हो जाती है। इतना ही नहीं, किन्तु बम्बई कलकत्ता आदि शहरों में तो दूध के व्यवसायी कई लोग, जैसे ही गाय, भैंस ने दूध देना बन्द किया वैसे ही उन्हें पशु-वध करने वाले कसाइयों के हाथ बेच देते हैं। क्योंकि दूध न देने पर उन पशुओं को अपने यहाँ रख कर उनका खर्च उठाना, उन्हें भारी लगता है। इस प्रकार स्वयं के लिए गाय, भैंस, रखने वालों में, और दूध का व्यवसाय करने के लिए रखने वाले में बहुत अन्तर है। वहाँ दूध के व्यवसाय के लिए रखे गये पशुओं के साथ निर्दयता का व्यवहार किया जाता है, फिर भी लोग स्वयं पशु पाल कर दूध खाना कठिन—बल्कि कोई कोई तो पशुपालन में पाप तक मानते हैं और बजारू दूध घी खाकर, दूध-व्यवसाय के कारण होने वाले पशु-वध में किसी न

किसी रूप से सहायक बनते हैं। भारत की अवनति के कारणों में से एक यह भी है, कि भारत का अधिकांश पशु-धन नष्ट हो गया है, तथा नष्ट होता जा रहा है। जिस भारत में दूध, दही, घृत आदि का बाहुल्य था, वहाँ आज छोटे-छोटे बच्चों को भी दूध नहीं मिलता, इसका कारण यही है, कि लोगों को गो-पालन बुरा मालूम होता है। परन्तु वास्तव में जीवन के लिए गाय का साहाय्य उसी प्रकार आवश्यक है, जिस प्रकार पृथ्वी की सहायता आवश्यक है। पृथ्वी का नाम भी 'गो' है, और गाय का नाम भी 'गो' है। 'गो' का अर्थ है आधार देने वाली। पृथ्वी और गाय का 'गो' नाम सम्भवतः इसी दृष्टि से रखा गया है, कि जीवन के लिए इन दोनों के साहाय्य की समान आवश्वकता है। पृथ्वी, रहने आदि के लिए आधार रूप है, और गो, स्वास्थ्य वर्द्धक खान-पान की सामग्री देने के लिये। घी, दूध, अन्न आदि दूसरे खाद्यपदार्थ गाय की सहायता से ही प्राप्त होते हैं। इसीलिए पहले के लोग गाय का आदर करते थे, अपने यहाँ गाय का होना आवश्यक मानते थे, और गाय की सहायता से स्वयं का जीवन सुखपूर्वक बिताते थे।

जिनदास सेठ के यहाँ भी गायें थीं। उसके यहाँ कितनी गायें थीं इसका तो वर्णन नहीं मिलता, लेकिन गायें थीं अवश्य। उन गायों को चराने के लिए, जिनदास ने अपने

यहाँ ग्वाले का एक बालक रख छोड़ा था, जिसका नाम सुभग था। सुभग शरीर से सुन्दर था और स्वभाव से भी सरल, कोमल तथा नम्र था। पूर्व के प्रायः सभी लोग, अपने यहाँ कार्य करनेवाले सेवक को अपने घर का एक सदस्य ही मानते थे। श्रावक तो सभी को अपना आत्मीय मानता है, इस लिए वह अपने यहाँ के सेवक को अच्छी तरह रखे, यह स्वाभाविक ही है। जिनदास और अर्हद्दासी का व्यवहार, सुभग के प्रति बहुत ही प्रेम पूर्ण रहता था। उनके यहाँ कोई सन्तान न थी, इस लिए दोनों का सन्तति-प्रेम भी सुभग को ही प्राप्त था। जिनदास, सुभग से प्रत्येक काम प्रेम से लेता जिससे सुभग को यह अनुभव न होता, कि मैं इनका सेवक हूँ। और अर्हद्दासी तो धर्म जानने वाली श्राविका होने के साथ ही स्वाभाविक ही कोमल हृदया भी थी। इसलिए वह सुभग के खानपानादि का एवं सुख-दुःख का उसी प्रकार ध्यान रखती, जिस प्रकार माता अपने पुत्र के खानपान आदि का ध्यान रखती एवं व्यवस्था करती है। सुभग भी, जिनदास और अर्हद्दासी के विषय में यही समझता कि ये ही मेरे माता-पिता हैं तथा यह घर मेरा ही है। इसलिए वह प्रत्येक कार्य यही समझ कर करता, कि यह कार्य तो मेरे घर का ही है। वह कभी-कभी सेठ के साथ धर्मस्थान पर भी जाया करता था, लेकिन बालक सुभग धर्म के विषय में कोई विशेष जानकारी नहीं रखता था। केवल यदा-कदा जिनदास के साथ

धर्मस्थान पर जाता और जिनदास की देखा-देखी महात्माओं को वन्दन-नमस्कार भी कर लेता।

बालक सुभग, प्रातःकाल भोजनादि से निवृत्त हो जिनदास के यहाँ की गायें लेकर उन्हें चराने के लिए जंगल में चला जाता। वहाँ वह प्रेमपूर्वक गायों को चराता रहता, तथा जंगल के वृक्ष, पहाड़, नदी, झरने आदि को देख कर प्रत्येक के कार्य का महत्व एवं उनकी उपयोगिता का विचार करता रहता। जब सन्ध्याकाल समीप होता, तब वह गायों को लेकर घर लौट आता। यही प्रायः उसका नित्यकृत्य था। जब वह जंगल से गायें लेकर वापस आता, तब जिनदास उस से कुशल समाचार पूछा करता; तथा वह कोई असुविधा अथवा कठिनाई बताता, तो जिनदास उसे मिटाने का प्रयत्न करता। इसी प्रकार अर्हद्दासी भी सुभग के खान-पान शयनादि की समुचित व्यवस्था कर देती।

एक दिन सुभग, नित्य की तरह गायें लेकर जंगल में चराने के लिए गया। जिस जंगल में सुभग गायें चराने ले गया था, उसी जंगल में एक महात्मा आये और एक वृक्ष के नीचे ध्यान लगा कर बैठ गये। महात्मा कैसे हुआ करते हैं, इसके लिए एक कवि कहता है—

ज्ञान के उजागर सहज सुखसागर सुगुनरतनागर
विराग रस भर्यो है,

शरण की रीति हरे मरण को न भय करे
करण सों पीठ दै चरण अनुसर्यो है।
धर्म के मंडन भर्म के विहंडन हैं
परम नरम व्है के करम सों लर्यो है,
ऐसे मुनिराज भुविलोक में विराजमान
निरखी बनारसी नमस्कार कर्यो है ॥

वे तपोधनी महात्मा भी ऐसे ही थे, जो एक वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ थे। उसी समय गायों को चराता हुआ सुभग, उस ओर आ निकला। वृक्ष के नीचे ध्यान लगाये हुए महात्मा को देखकर सुभग को बहुत ही प्रसन्नता हुई। जिनदास के साथ सुभग कभी-कभी धर्मस्थान पर जाया करता था, तथा उसने वहाँ मुनिराज को देखा था इसलिए और जिनदास एवं अर्हद्दासी से मुनिराज का स्वरूप तथा मुनि-दर्शन का माहात्म्य आदि सुना करता था इसलिए सुभग ने जान लिया, कि ये मुनिराज हैं। उन मुनिराज को देखकर सुभग उनकी ओर उसी प्रकार आकर्षित हुआ, जिस प्रकार चुम्बक की ओर लोह आकर्षित होता है। वह अपने मन में कहने लगा, कि मैं जब सेठ के साथ धर्मस्थान पर जाया करता हूँ, तब सेठ वहाँ विराजमान तथा भिक्षा के लिए घर आये हुए मुनिराज के विषय में यह कहा करते हैं, कि ये मेरे गुरू हैं लेकिन सद्भाग्य से आज

22988

यहाँ सेठ नहीं हैं, केवल मैं ही हूँ। इसलिए ये तो मेरे ही गुरु हैं। इस प्रकार बालक की भांति अनेक विचार करते हुए सुभग ने, सरलता, नम्रता और श्रद्धापूर्वक उन मुनिराज को नमस्कार किया। मुनिराज ध्यान में थे, इसलिए वे कुछ भी नहीं बोले, न उनने सुभग की ओर देखा ही। मुनि को प्रणाम करके सुभग, उनके सामने हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया, तथा उन मुनिराज की ओर एक टक देखने लगा। मुनिराज तो अरिहन्त या सिद्ध भगवान का ध्यान कर रहे थे, परन्तु सुभग उन मुनिराज का ध्यान कर रहा था। मुनिराज के ध्यान में तन्मय सुभग इस बात को भूल ही गया कि मैं कहाँ खड़ा हूँ, मेरी गायें कहाँ होंगी, या दिन व्यतीत हो चला है।

समय पर मुनि का ध्यान समाप्त हुआ। ध्यान समाप्त होते ही वे लब्धिधारी मुनिराज, नवकार मन्त्र का उच्चारण कर आकाश में उड़ गये। महात्मा को आकाश की ओर जाते देखकर, उन्हें ठहराने के लिए सुभग 'गुरु महाराज' 'गुरु महाराज' कहकर पुकारने लगा, परन्तु वे निस्पृह महात्मा कब ठहर सकते थे! समय होने पर महात्मा भी उसी प्रकार स्थान पर गये बिना नहीं रुकते, जिस प्रकार सूर्यास्त होने पर कमल मुकुलित हुए बिना नहीं रहते। सुभग, उन महात्मा को पुकारता ही रहा, फिर भी वे महात्मा तो चले ही गये। जब सुभग की आँखों से वे महात्मा

अदृश्य हो गये, तब सुभग सोचने लगा, कि आकाश की ओर उड़ने से पहले महात्मा ने 'अरिहन्ताणं—अरिहन्ताणं' का जो मन्त्र पढ़ा था, उस मन्त्र में तो बड़ी ही शक्ति है ! मेरी समझ से उस मन्त्र की शक्ति से ही महात्मा आकाश में उड़ गये हैं।

महात्मा के जाने पर, सुभग की विचारधारा बदली और तब उसको ध्यान हुआ, कि सूर्य अस्त होनेवाला है, तथा गायें न मालूम किधर चली गई हैं। वह गायों को इधर उधर देखने लगा, लेकिन उसे गायें न मिलीं। सन्ध्या काल समीप जानकर सब गायें, घर और बछड़ों का स्मरण करके, सुभग के बिना ही नित्य की तरह घर चली गई थी। गायें न मिलने पर सुभग ने कुछ चिह्न के आधार से यह निश्चय किया, कि गायें घर को चली गई हैं। 'गायें मेरे बिना ही घर को चली गई हैं, इस कारण सेठ मेरे विषय में चिन्ता कर रहे होंगे और न मालूम क्या सोचते होंगे' आदि विचार करता हुआ सुभग, जल्दी-जल्दी घर की ओर चला।

३

नवकार मन्त्र-माहात्म्य

जैन धर्मानुयायिओं में ऐसा अभागा कोई ही व्यक्ति होगा, जो नवकार मन्त्र न जानता हो। वास्तव में, जो स्वयं को केवली प्ररूपित धर्म का अनुयायी मानता है, उसके लिए नवकार मन्त्र का जानना है भी आवश्यक। नवकार मन्त्र तो प्रायः सभी जैन जानते हैं, लेकिन ऐसे बहुत कम लोग निकलेंगे, जो नवकार मन्त्र का माहात्म्य तथा ठीक अर्थ जानते हों। जो नवकार मन्त्र जैन धर्म का प्राण है, उसके माहात्म्य एवं अर्थ से सर्वथा अपरिचित रहना, एक बहुत बड़ी कमी है। जिस

मन्त्र को हृदयंगम किया जाता है, उठते बैठते आदि प्रत्येक समय जिसका स्मरण किया जाता है, उसका माहात्म्य और अर्थ यत्किंचित तो जानना ही चाहिए। वैसे तो माहात्म्य तथा अर्थ न जानने पर भी नवकार मन्त्र का ध्यान स्मरण लाभकारी ही है परन्तु नवकार मन्त्र के ध्यान स्मरण का पूर्ण लाभ तो तभी है, जब उसका कुछ भी माहात्म्य तथा अर्थ समझा हुआ हो। नवकार मन्त्र धारण कराने वालों का यह कर्त्तव्य है कि वे नवकार मन्त्र धारण कराने के साथ ही नवकार मन्त्र का माहात्म्य और अर्थ भी बता दें, जिससे नवकार मन्त्र का धारक—नवकार मन्त्र के ध्यान स्मरण से होने वाला--पूर्ण लाभ ले सके। जिनदास सेठ ने सुभग को नवकार मन्त्र बताने के साथ ही स्वयं की बुद्धयानुसार उसे नवकार मन्त्र का माहात्म्य एवं अर्थ भी बताया होगा। माहात्म्य तथा अर्थ समझने के कारण ही, सुभग नवकार मन्त्र से वह लाभ ले सका, जिसका वर्णन अगले किसी प्रकरण में मिलेगा।

सुभग, जिस समय जंगल में ध्यानस्थ महात्मा के सामने हाथ जोड़ कर खड़ा था, उस समय वह मुनि के ध्यान में ऐसा एकाग्र चित्त था, कि उसको गायों की भी खबर नहीं रही, समय को भी खबर नहीं रही और स्वयं की भी खबर नहीं रही। मन की एकाग्रता के कारण वह तो दूसरी ओर से बेखबर था, लेकिन संध्याकाल समीप आने पर गायों का ध्यान घर या बछड़ों में

जा लगा। इसलिए वे नित्य के समय पर चरना छोड़ कर सुभग के बिना ही घर को चली आई।

गायों को देखकर, और उनके साथ सुभग को न देखकर जिनदास सेठ को चिन्ता हो गई। वह सोचने लगा, कि सुभग सदा तो गायों के साथ ही आता था, फिर आज वह गायों के साथ क्यों नहीं आया! गायें अकेली क्यों आई! कहीं वन में किसी हिंसक पशु अथवा चोर डाकू ने सुभग को मार तो नहीं डाला! कोई उसको बहका कर ले तो नहीं गया! इस प्रकार सोचता हुआ सेठ, उत्सुकता पूर्वक सुभग की प्रतीक्षा करने लगा। जैसे जैसे समय बीतता जाता था, सेठ की चिन्ता भी वैसी ही बढ़ती जा रही थी। इधर सेठ तो सुभग की प्रतीक्षा करता था, और सुभग इस बात की चिन्ता कर रहा था, कि मुझे देर हो गई है, इसलिए सेठ मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे और मेरे लिए चिन्तित होंगे। इस चिन्ता के कारण सुभग, जल्दी जल्दी घर की ओर बढ़ा चला आ रहा था।

सुभग की प्रतीक्षा में सेठ द्वार पर खड़ा था, इतने ही में उसने देखा कि सुभग जल्दी-जल्दी चला आ रहा है। सुभग को आता देखकर, सेठ को बहुत प्रसन्नता हुई। सुभग भी सेठ को देखकर प्रसन्न हुआ। सेठ ने दौड़कर सुभग को छाती से

लगा लिया। फिर उसने सुभग से पूछा, कि आज इतनी देर क्यों हुई? गायों के साथ ही क्यों नहीं आया?

सुभग, सेठ के प्रश्न का उत्तर देना तो चाहता था, लेकिन हर्ष के मारे उसका गला भर आया, इससे वह न बोल सका। सेठ ने उससे फिर विलम्ब का कारण पूछा, तब सुभग ने अपने हर्षावेश को रोक कर कहा, कि पिताजी, आज जंगल में मुझे बहुत ही आनन्द प्राप्त हुआ। मैं उस आनन्द में ऐसा मग्न हो गया था, कि मेरे को न तो समय की ही खबर रही, न घर की और न गायों की। सेठ ने पूछा, कि—ऐसा क्या आनन्द था? यदि तेरी इच्छा हो, तो उस आनन्द का वर्णन करके मुझे भी उसमें भाग दे।

सुभग कहने लगा—पिताजी, उस आनन्द का पूर्णतया वर्णन करने की शक्ति तो मेरे में नहीं है, फिर भी मैं कुछ वर्णन करता हूँ। आज जङ्गल में, मैंने वृक्ष के नीचे एक मुनिराज को ध्यानस्थ देखे। उनका दर्शन पाकर, मुझे बहुत ही प्रसन्नता हुई। उनके मुखमण्डल से ऐसी शान्ति टपकती थी, कि कुछ कहा नहीं जा सकता। मैं उनके सामने और सब बातों—बल्कि स्वयं तक को भूल गया। इसी कारण गायें मेरे बिना ही घर चली आईं।

सुभग का यह कथन सुन कर सेठ, और भी अधिक प्रसन्न हुआ। वह बोला, कि—बेटा, तुझको धन्य है, जो आज वन में तुझे

महात्मा का दर्शन हुआ और तूने उनकी भक्ति की। क्या वे महात्मा अभी जंगल में ही होंगे ? यदि हों, तो मैं भी उनका दर्शन कर आऊँ। सुभग ने उत्तर दिया—नहीं, अब वे वहां नहीं हैं। यदि वे वहीं होते, तब तो सम्भव था कि मैं अब तक भी घर न आता, किन्तु उनके सामने खड़ा ही रहता। ध्यान समाप्त होने पर वे मुनि, 'अरिहन्ताणं' 'अरिहन्ताणं' ऐसा मन्त्र पढ़कर आकाश में उड़ गये। मैंने उन्हें बहुत पुकारा लेकिन वे नहीं ठहरे किन्तु चले ही गये। जब वे चले गये, तब मुझे गायों का और घर का ध्यान आया, और तभी मैं यहां आया हूँ।

सेठ ने कहा, कि—तू सद्भागी है, इसी से तुझे वन में भी ऐसे मुनिराज का दर्शन हुआ। मैंने तो जंघाचरण, विद्याचरण मुनि के विषय में केवल शास्त्र से बात ही सुनी है, परन्तु तूने तो ऐसे मुनि का दर्शन भी किया है। सद्भाग्य होने पर, वन में और अनायास ही ऐसा सुअवसर मिल जाता है, लेकिन जब दुर्भाग्य होता है, तब मनुष्य इस प्रकार के प्राप्त अवसर को भी ठुकरा देता है। ऐसे मुनिराजों का दर्शन, प्रायः वन के निर्दोष वातावरण में ही हो सकता है, और सम्भव है कि इसी बात को दृष्टि में रख कर श्रीकृष्ण ने गो चराने के बहाने वन के अभ्यासी बनने का आदर्श जनता के सामने रक्खा हो।

सुभग से बातें करता हुआ सेठ, उसको साथ लेकर घर में

आया। सेठ द्वारा कही गई बातों को सुन कर, सुभग और आनन्दित होता जाता था। घर आने पर तथा सेठ का कथन समाप्त होने पर सुभग ने सेठ से कहा, कि—पिताजी, मुनि-दर्शन के कार्य का आपके द्वारा समर्थन सुन कर मुझे बहुत ही प्रसन्नता हुई, लेकिन मुझ से एक भूल हो गई है। जिस मन्त्र को कह कर वे मुनि आकाश की ओर उड़े, वह मन्त्र मैंने सुना तो था, परन्तु पूरा याद नहीं रहा। यदि वह सारा मन्त्र याद हो जाता, तो बड़ा अच्छा रहता। मेरी समझ से वे मुनि, उस मन्त्र की शक्ति से ही आकाश में उड़ गये। मेरे को भी वह मन्त्र याद होता, तो मैं भी आकाश में उड़ जाया करता।

सुभग की बात के उत्तर में सेठ ने कहा, कि—उस मन्त्र का जो भाग तुमने मुझे सुनाया, उस पर से मैं समझ गया, कि उन मुनि ने किस मन्त्र का उच्चारण किया था। तुम्हारी स्मृति में उस मन्त्र का जो भाग रहा, वही बहुत है। मुनिराज ने जो मन्त्र पढ़ा था, वह नवकार मन्त्र है। लो, मैं तुम्हें वह सारा मन्त्र सुनाता हूँ, उसे सुन कर फिर बताओ, कि मुनिराज ने यही मन्त्र उच्चारण किया था, या दूसरा।

नमो अरिहन्ताणं। नमो सिद्धाणं।
नमो आयरियाणं। नमो उवज्झायाणं।
नमो लोए सव्व साहूणं।

सेठ से मन्त्र सुन कर सुभग कहने लगा, कि उन महात्मा ने यही मन्त्र उच्चारण किया था। सेठ बोला, कि—इस मन्त्र की शक्ति से, आकाश में उड़ने आदि सभी कार्य हो सकते हैं। ऐसा कोई कार्य नहीं, जो इस मन्त्र की शक्ति से न हो सके। भगवान पार्श्वनाथ ने महान् विषधर सांप को यह मन्त्र सुनाया था, और उस सांप ने अपने हृदय में इस मन्त्र को स्थान दिया था, तो वह सांप भी मर कर देवों का स्वामी इन्द्र हुआ। नवकार मन्त्र के प्रभाव और इसकी शक्ति के विषय में, बहुत-सी कथाएँ प्रसिद्ध हैं। मैं उन में से एक कथा तुम्हें सुनाता हूँ।

यह कह कर जिनदास, सुभग से कहने लगा—कि एक राजा ने, एक चोर को शूली पर चढ़ाने की आज्ञा दी। साथ ही यह आज्ञा भी दी कि इस चोर की कोई किसी भी रूप में सहायता न करे। राजा की आज्ञानुसार नगर के बाहर उस चोर को शूली दी गई। शूली लगाने वाले लोग, चोर को शूली पर बैठा कर चले गये, लेकिन कुछ सिपाही दूर रह कर इस बात का पता रखने लगे, कि कोई आदमी इस शूली चढ़े हुए चोर की किसी तरह सहायता तो नहीं करता है। शूली पर लगे हुए चोर को प्यास लगी, परन्तु वहां उसको पानी पिलाने वाला कौन था? वह किसी मार्ग जाते हुए को पुकारता और अनुनय-विनय पूर्वक उससे पानी पिलाने के लिए भी कहता, लेकिन राजा के भय से

उसके पास कोई न जाता, न कोई उसको प्रार्थना स्वीकार करके पानी ही पिलाता।

योगायोग से, उस ओर एक श्रावक निकला। चोर ने उसे पुकारा। चोर की आवाज सुन कर, श्रावक उसके पास गया। चोर ने श्रावक से कहा, कि—सेठजी, मुझे बहुत ज्यादा प्यास लगी है। जितना दुःख इस शूली का नहीं है, उससे अधिक दुःख प्यास का है। इसलिए दया करके, कहीं से पानी लाकर मुझे पिला दो।

चोर की प्रार्थना सुन कर, सेठ के हृदय में उसके प्रति बहुत दया हुई। सेठ ने उससे कहा, कि—मैं पानी लेने तो जाऊँगा, परन्तु मैं पानी लेकर आऊँ उससे पहले ही यदि तेरी मृत्यु हो गई, तो तू न मालूम किस नीच गति में जावेगा। इसलिए तू मेरे से नवकार मन्त्र सुन कर उसका जाप कर। यदि मेरे आने से पहिले ही तेरी मृत्यु हो गई, और मरने के समय तू नवकार मन्त्र का जाप करता रहा—नवकार मन्त्र जपते-जपते मरा तो दुर्गति में जाने से तो बच जावेगा!

चोर ने, श्रावक का कथन मानना स्वीकार किया। श्रावक चोर को नवकार मन्त्र सुना कर पानी लेने के लिए चला गया। चोर ने, नवकार मन्त्र पहले ही पहल और केवल एक ही बार सुना था, इस कारण उसको नवकार मन्त्र याद नहीं रहा और

वह नवकार मन्त्र के स्थान पर यह जपने लगा कि 'आनू तानू कछू न जानूं सेठ वचन प्रमाणू' ।

यानी, मैं और कुछ नहीं जानता, लेकिन सेठ का वचन प्रमाण है। इस प्रकार का जाप जपता हुआ चोर, वह श्रावक पानी लेकर आया उससे पहले ही मर गया। फिर भी दुर्गति में नहीं गया, किन्तु नवकार मन्त्र को प्रमाण मानने के कारण देव हुआ।

चोर के मरने के पश्चात्, सेठ पानी लेकर आया। सेठ ने देखा कि चोर मर गया है। वह सोचने लगा कि क्या मालूम चोर ने नवकार मन्त्र को हृदय में स्थान दिया था या नहीं! यदि नवकार मन्त्र को हृदय में स्थान न दिया होगा, तो न मालूम किस गति में गया होगा। सेठ इस प्रकार सोच रहा था, इतने ही में राजा के सिपाहियों ने आकर सेठ को पकड़ लिया, तथा उस पर यह अभियोग लगा कर राजा के सामने उपस्थित किया कि आपकी आज्ञा के विरुद्ध इसने चोर की सहायता की है। राजा, उस श्रावक पर बहुत ही क्रुद्ध हुआ। उसने कहा, कि—मैं, राजाज्ञा उल्लंघन करने वाले को बहुत ही कठोर दंड देता हूँ, इसलिए इस सेठ को भी - मेरी आज्ञा के विरुद्ध चोर की सहायता करने के अपराध में—शूली पर चढ़ा दिया जावे। राजा की ऐसी कठोर आज्ञा सुन कर भी, वह श्रावक पूर्व की भांति प्रसन्न ही रहा और हँसने लगा। शूली की आज्ञा सुन कर भी श्रावक को

हँसता देख कर, राजा अधिक क्रुद्ध हुआ। राजा ने श्रावक से पूछा कि—मैंने तुझे प्राणदण्ड दिया है, फिर भी तू हँसता क्यों है ? और क्या इस प्रकार हँसना, मेरा अपमान करना नहीं है ? राजा के प्रश्न के उत्तर में श्रावक ने कहा, कि—मैं आपका अपमान करने के लिए नहीं हँस रहा हूँ, किन्तु इसलिए हँस रहा हूँ, कि मैंने चोरी या ऐसा ही कोई दूसरा अनैतिक अपराध नहीं किया है, फिर भी मुझे शूली लगाने का दंड दिया गया है, इसके सिवा जब मुझे मरना ही है, तब हँसता हुआ क्यों न मरूँ ! यह सुन कर, राजा ने अपने सिपाहियों को आज्ञा दी, कि इसको जल्दी ही शूली पर चढ़ा दो, जिस से इसका हँसना भी मिट जावे, और यह चोर की सहायता करने के लिए परलोक में भी जल्दी पहुँच जाय।

राजा की आज्ञानुसार, सिपाही लोग उस श्रावक को शूली के पास ले गये। जिस चोर की सहायता करने के अपराध में श्रावक को शूली लगाने की आज्ञा हुई थी, वह चोर मर कर देव हुआ था। उस देव को यह मालूम हुआ, कि मेरी सहायता करने के अपराध में श्रावक को शूली दी जा रही है। उसका आसन कम्पित हो उठा। वह तत्काल शूली के समीप उपस्थित हुआ, और जैसे ही सिपाहियों ने सेठ को शूली पर बैठाया, वैसे ही उस देव ने शूली को सिंहासन में परिणत कर दिया। श्रावक ने

चोर को नवकार मन्त्र का जो दान दिया था, उस उपकार का प्रत्युपकार, देवगति में जन्मे हुए उस चोर ने इस प्रकार चुकाया।

यह कथा कह कर सेठ ने सुभग से कहा, कि यदि उस श्रावक ने चोर को नवकार मन्त्र न सुनाया होता और चोर ने नवकार मन्त्र पर विश्वास न किया होता, तो आरत रौद्र ध्यान करने के कारण वह चोर मर कर न मालूम किस नरक में जाता। परन्तु नवकार मन्त्र सुनने तथा उस पर श्रद्धा करने के कारण ही वह देवगति प्राप्त करके अपने सहायक श्रावक का प्रत्युपकार करने में समर्थ हुआ। नवकार मन्त्र का ऐसा प्रभाव है।

यह कथा कह कर, जिनदास ने सुभग से कहा कि नवकार मन्त्र का माहात्म्य बताने वाली ऐसी बहुत-सी कथाएँ हैं, लेकिन वे कथाएँ न सुना कर अब मैं तुमको यह बताता हूँ कि इस मन्त्र का महान् फल क्या है? नवकार मन्त्र का फल बताने के लिए मन्त्र, के साथ ही यह कहा जाता है कि—

एसो पंच णमुक्कारो सव्व पाव पणासणो।
मंगलाणंच सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं॥

अर्थात्—इन पाँचों को नमस्कार करना सब पापों का नाशक है, सब प्रकार मंगल करनेवाला है, और यही प्रथम मंगल है।

नवकार मन्त्र सब पापों को नष्ट करनेवाला है और सब प्रकार से मंगल है। इस मन्त्र में जिनको नमस्कार किया गया है, वे सब

इस बात का आदर्श एवं मार्ग बताते हैं, कि पापों का नाश किस प्रकार किया जा सकता है। साथ ही उनके गुणों को देख कर इस बात का भी पता लगता है, कि इन गुणों को हम भी प्रगट कर सकते हैं, हम में भी ये गुण हैं, तथा इन्हीं की तरह हम भी दुःख मुक्त हो सकते हैं। इस प्रकार नवकार मन्त्र आत्मा के लिए एक अनुपम सम्पत्ति है। जिसके पास नवकार मन्त्र की सम्पत्ति है, उसके पास चाहे कोई भौतिक सम्पत्ति न हो तब भी वह सम्पन्न है, और जिस के पास नवकार मन्त्र की सम्पत्ति नहीं है, उसको चाहे कितनी भी भौतिक सम्पत्ति मिली हो, वह दीन ही है। मैंने नवकार मन्त्र का जो प्रभाव सुनाया, नवकार मन्त्र में उससे भी बहुत अधिक शक्ति है, लेकिन उसका परिचय तभी मिल सकता है, जब स्वयं में दृढ़ता हो और मन्त्र के प्रति पूर्ण विश्वास हो। जो कष्ट के समय घबराता नहीं है, जो कष्टों को अपनी कसौटी समझता है, नवकार मन्त्र द्वारा कष्टों को मिटाने की कामना नहीं करता, उसी को नवकार मन्त्र की शक्ति मालूम हो सकती है। इसलिए नवकार मन्त्र के स्मरण ध्यान का फल प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है, कि चाहे जैसे भी कष्ट हों उन से भय न करे, न यह विचार लावे कि मैं नवकार मन्त्र जपता हूँ, फिर भी मुझे यह कष्ट क्यों हो रहा है; और न नवकार मन्त्र से यह कामना ही करे, कि मेरे ये कष्ट मिट जावें। इस प्रकार जो

कष्टों से भय नहीं खाता, तथा निष्काम रूप नवकार मन्त्र का जप करता है, नवकार मन्त्र से उसकी आत्मा का अवश्य ही कल्याण होता है।

प्रिय सुभग, मैंने नवकार मन्त्र के विषय में तुम्हें जो कुछ सुनाया है, वह बहुत थोड़े में सुनाया है। इस विषयक सब बातों को न तो आज कहा ही जा सकता है, न तुम अभी समझ ही सकते हो, और न मुझे सब बातें मालूम ही हैं। तुम जैसे-जैसे बड़े होओगे, तुम्हारी बुद्धि विकसित होगी, तथा तुम्हारे हृदय में जिज्ञासा होगी, वैसे ही वैसे सत्संग द्वारा तुम इस विषयक अधिकाधिक बातें जान सकोगे।

४

नवकार मन्त्र का अर्थ

किसी वस्तु का पूर्ण स्वरूप, अथवा किसी बात का पूर्ण अर्थ करने में कोई भी समर्थ नहीं हो सकता। किसी साधारण मनुष्य की तो बात ही अलग है, महाज्ञानी भगवान तीर्थङ्कर स्वयं भी ऐसा करने में समर्थ नहीं हैं। वे भी जो कुछ जानते अथवा स्वयं के ज्ञान में देखते हैं, उसे पूरी तरह व्यक्त नहीं कर सकते, किन्तु उसका अनन्तवां भाग ही कह सकते हैं। वस्तुतः आत्मा के अनुभव की बात को, जड़ वाणी पूरी तरह कैसे कह सकती है। कहने में तो जो कुछ भी आता है, वह अपूर्ण ही है।

नवकार मन्त्र के लिए भी यही बात है। नवकार मन्त्र का पूर्ण अर्थ, कहने को कोई समर्थ नहीं है, लेकिन इस विचार से नवकार मन्त्र का अपूर्ण अर्थ न कहना या न जानना बुद्धिमानी नहीं हो सकती। पूर्ण अर्थ, पूर्ण पुरुष ही जान सकते हैं, अपूर्ण पुरुष नहीं जान सकता। परन्तु पूर्ण होने का मार्ग अपनी अपूर्णता को क्रमशः दूर करना ही है। पक्षी, अपने पंखों के बल से अनन्त आकाश का पार नहीं पा सकता, लेकिन इस कारण वह आकाश में उड़ना नहीं त्यागता, किन्तु अपनी शक्ति भर अनन्त आकाश में भ्रमण करता ही है, तथा इस विचार से और प्रसन्न होता है, कि जिसमें मैं भ्रमण कर रहा हूँ, वह आकाश अनन्त है। इसी प्रकार नवकार मन्त्र का पूर्ण अर्थ न जान सकने पर भी अपूर्ण अर्थ तो जानना ही चाहिए और इस विचार से प्रसन्न होना चाहिए, कि नवकार मन्त्र ऐसा है, जिसका अर्थ अनन्त है। इस विषय में यह विचार कर हताश होने की आवश्यकता नहीं है, कि मैं नवकार मन्त्र का पूर्ण अर्थ नहीं जानता, या नवकार ऐसा मन्त्र है, जिसका पूर्ण अर्थ कोई नहीं कह सकता। किसी रत्न के लिए यदि कोई बड़े से बड़ा जौहरी यह कहे, कि मैं इसकी कीमत नहीं कर सकता, तो जौहरी का यह कथन सुन कर भी—जिसके पास ऐसा रत्न है—वह व्यक्ति हताश न होगा, किन्तु, प्रसन्न ही होगा। इसी प्रकार नवकार मन्त्र के लिए भी कोई पूर्ण अर्थ नहीं

कह सकता, या हम पूर्ण अर्थ नहीं जानते इस विचार से हताश न होना चाहिए, किन्तु यह सोच कर प्रसन्न होना चाहिए, कि मुझे वह नवकार मन्त्र प्राप्त हुआ है, जिसका पूर्ण अर्थ कहने में कोई समर्थ नहीं है। नवकार मन्त्र का पूर्ण अर्थ जानने के बाद तो कुछ बाकी ही नहीं रहता। ऐसा व्यक्ति तो पूर्ण ज्ञानी ही है। जो पूर्ण ज्ञानी है, उसके लिए कुछ भी करना शेष नहीं है। जो कुछ करना है, वह अपूर्ण के लिए ही। अपूर्ण को ही पूर्ण बनने की आवश्यकता है, और इसका मार्ग यही है, कि उत्तरोत्तर ज्ञान-वृद्धि का प्रयत्न किया जावे। तथा तदनुसार क्रिया भी की जावे। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है, कि वह नवकार मन्त्र का अधिक से अधिक अर्थ जानने का प्रयत्न करे।

जिनदास सेठ से नवकार मन्त्र के प्रभाव की कथाएँ सुन कर, सुभग बहुत ही हर्षित हुआ। वह कहने लगा, कि आप की कृपा से मैंने नवकार मन्त्र का प्रभाव तो समझा, लेकिन अब यह और जानना चाहता हूँ, कि जिसका ऐसा प्रभाव है, उस नवकार मन्त्र का अर्थ क्या है? जिनदास ने उत्तर दिया, कि नवकार मन्त्र का पूर्ण अर्थ बताने में तो मैं समर्थ नहीं हूँ, फिर भी सन्त महात्माओं की कृपा से मैं जो कुछ जान पाया हूँ, वह थोड़े में तुम को सुनाता हूँ? तुम मेरे कथन को ध्यान देकर श्रवण करो।

नवकार मन्त्र का संस्कृत नाम नमस्कार मन्त्र है। 'नमस्कार' शब्द 'नमः' और 'कार' इन दो शब्दों के संयोग से बना है। नमः का एक अर्थ नमन यानी झुकना है, और दूसरा अर्थ द्रव्य तथा भाव से संकोच करना है। नम्रता और भक्ति प्रदर्शन के लिए किसी के सामने झुकना, यह नमन है। ऐसा नमन तीन प्रकार का होता है; एक तो द्रव्य से, दूसरा भाव से और तीसरा द्रव्य तथा भाव दोनों से। द्रव्य नमन से मतलब है दो हाथ दो पाँव और मस्तक, इन पाँच अंग को संकोचना, इनको झुकाना। ऐसा करना द्रव्य नमन है, और आत्मा को अप्रशस्त भाव से निकाल कर किसी के प्रशस्त गुणों में लीन करना, यह भाव नमन है। किसी को द्रव्य और भाव इन दोनों तरह से नमन करना, द्रव्य-भाव नमन है।

'नमः' शब्द के साथ 'कार' शब्द जुड़ा हुआ है, जो नमन की क्रिया का बोधक है। यानी नमस्कार का अर्थ नमन करने की क्रिया है।

नमस्कार के साथ आये हुए 'मन्त्र' शब्द का अर्थ है सदा स्मरण रखने योग्य। कर्त्तव्य के अवधारण का नाम मन्त्र है। इस प्रकार नवकार-मन्त्र या नमस्कार-मन्त्र का अर्थ, नमन करने की क्रिया का अवधारण करना-स्मरण रखना है।

नमस्कार मन्त्र में पांच पद हैं, जिन में से पहला पद 'नमो अरिहन्ताणं' है। इस पद को 'नमो अर्हन्ताणं' या 'नमो

'अरुहन्ताणं' भी बोला जाता है। इस पद के तीनों रूप का भिन्न-भिन्न क्या अर्थ होता है, यह बताता हूँ।

अरिहन्ताणं पद में आये हुए 'अरि' शब्द का अर्थ है, शत्रु या वैरी। आत्मा का वास्तविक शत्रु कर्म है। कर्म के आठ भेद हैं। जो उन आठ भेदों में से ज्ञानावरणीय आदि चार घातिक कर्मों को हन डालते हैं, यानी नष्ट कर देते हैं, उन्हें अरिहन्त कहा जाता है। नमो अरिहन्ताणं का अर्थ यह है कि जिनने कर्म-शत्रु को नष्ट कर दिया है, उन अरिहन्त को नमस्कार करता हूँ।

इस पद का दूसरा रूप 'नमो अर्हन्ताणं' है। 'अरह' शब्द 'अरह' पूजायां धातु से बना है, जिसका अर्थ है, पूजनीय। इसके अनुसार जो देवों में प्रधान-इन्द्र के भी पूज्य हैं, जो अष्ट महाप्रतिहार्यादि लक्ष्मी से युक्त हैं, उन्हें अर्हन्त कहते हैं। अथवा 'रह' का अर्थ है, गुप्त प्रच्छन्न 'रह' शब्द के पूर्व 'अ' लग कर 'अरह' शब्द बना है, जिसका अर्थ है, कुछ गुप्त नहीं। यानी जिनसे कुछ गुप्त नहीं है, किन्तु जो समस्त लोकालोक को हस्तामलक के समान देखते हैं, उन्हें अरह कहते हैं। अथवा 'रह' का अर्थ रथ भी होता है। 'रथ' सब प्रकार के परिग्रह का सूचक है। 'रथ' शब्द के पूर्व 'अ' लग जाने से परिग्रह का निषेध हो जाता है। इस प्रकार जो सब तरह के द्रव्य, भाव, परिग्रह से निकल चुके हैं, उन्हें 'अरह' कहते हैं। अथवा 'रह' का अर्थ राग भी होता है।

'रह' के पूर्व लगा हुआ 'अ' राग का निषेध करता है। इस प्रकार राग और उपलक्षण से द्वेष को भी—जीत कर वीतराग हो गये है, उन्हें अरह कहते हैं। इस प्रकार नमो अरहन्ताणं का अर्थ यह है, कि जो इन्द्रों के भी पूज्य हैं, जिनसे कुछ छिपा हुआ नहीं है, जो परिग्रह-रहित और वीतराग हैं, उन्हें नमस्कार करता हूँ।

इस प्रथम पद का तीसरा रूप 'नमो अरुहन्ताणं' है। जो संसार के बीज रूप कर्म को भस्म कर चुके हैं, और इस कारण जो अब भव-संसार में भ्रमण न करेंगे, उन्हें अरुहन्त कहते हैं। नमो अरुहन्ताणं का यह अर्थ हुआ कि जो भव-संसार के बीज-कर्म को जला चुके हैं, उन्हें नमस्कार है।

नवकार मन्त्र का दूसरा पद 'नमो सिद्धाणं' है। जो अष्ट-कर्म रूपी भारे को, ज्वाजल्यमान शुक्लध्यान की अग्नि से भस्म करके उस सिद्धि स्थान को प्राप्त हो गये हैं, जहां से लौट कर फिर नहीं आना होता, अथवा जिनका कोई कार्य शेष नहीं है किन्तु सब कार्य सिद्ध हो गये है; अथवा जिनके गुण समूह ख्याति प्राप्त कर चुके हैं, और भव्य लोग जिनके गुण समूह को जानते हैं, उन्हें सिद्ध कहते हैं। जिनके प्रकट गुणों का स्मरण करने से स्मरण करने वाले में वे गुण प्रकट हो जाते हैं, उन्हें सिद्ध कहते हैं। अथवा जिनके गुण और जिनके कार्य संसार के लिए मंगल रूप हैं, संसार के जीवों को मंगल बनाने के लिए आदर्श हैं, वे सिद्ध

हैं। नमो सिद्धाणं का अर्थ यह है, कि सिद्धों को नमस्कार है।

तीसरा पद है 'नमो आयरियाणं'। जो मर्यादा बाँधने वाले और मर्यादा का पालन करने वाले हैं, जो भव्य प्राणियों द्वारा मर्यादा पूर्वक सेवित हैं, जो सूत्र का परमार्थ जानने और बताने के अधिकारी हैं, जो अच्छी आकृति के तथा सुलक्षण युक्त हैं, जो गच्छ के लिए आधारभूत हैं, जो ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चरित्राचार, तपाचार और वीर्याचार में रमण करते हैं, इनका दक्षता पूर्वक पालन करते हैं तथा दूसरे को भी इनका पालन करने में लगाते हैं, हेतु दृष्टान्त युक्ति आदि द्वारा जो दूसरे को इन पाँच आचार का महत्व बताकर इनके पालन का उपदेश देते हैं, जो कार्य की व्यवस्था करने में कुशल हैं, जो गच्छ के साधुओं को यथायोग्य कार्य में जोड़ना जानते हैं और जिनको चतुर्विध संघ ने अपना मुखिया बनाया है, वे साधु 'आचार्य' कहे जाते हैं। 'आयरिय' का अर्थ है आचार्य और 'नमो आयरियाणं' का अर्थ है आचार्य को नमस्कार करता हूँ।

चौथा पद है 'नमो उवज्झायाणं'। उवज्झाय का अर्थ है उपाध्याय। जिनके पास स्वाध्याय की शिक्षा मिलती है, जो शास्त्र की शिक्षा देते हैं, जो भगवान तीर्थङ्कर द्वारा कहे गये द्वादशाङ्ग का स्वाध्याय करते कराते हैं, जिनके समीप जाने से सूत्र-पाठ का स्मरण होता है, अथवा सूत्र का पाठ समझने को मिलता है, जो

सूत्र की शिक्षा के लिए साक्षीदाता हैं, जो सूत्र-शिक्षा के विषय में प्रमाण पत्र या उपाधि देने के अधिकारी हैं, और जिनके समीप कुपठन अथवा दुर्ध्यान नहीं है, तथा चतुर्विध संघ ने योग्यता के कारण जिनको यह कार्य भार सौंपा है, वे उपाध्याय हैं। नमो उवज्झायाणं का अर्थ है उपाध्याय को नमस्कार करता हूँ।

पांचवाँ पद 'नमो लोए सव्व साहूणं'। सव्व का अर्थ है सब, और साहू का अर्थ है साधु। जो ज्ञानादिक की शक्ति से मोक्ष-साधन में लगा हुआ है, जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की आराधना करता है, जो सब प्राणियों को आत्मतुल्य मान कर सब पर समान रूप से करुणा रखता है, सब के कल्याण की भावना रखता है और सबको कल्याण का उपदेश देता है वह साधु है। नमो लोए सव्व साहूणं का अर्थ है लोक के सब साधुओं को नमस्कार है। लोए का अर्थ लोक है यानी लोक के सब साधुओं को नमस्कार है। यहां लोक से मतलब मनुष्य लोक है। क्योंकि साधु मनुष्य लोक में ही होते हैं।

नमस्कार मन्त्र का इस प्रकार अर्थ समझा कर, जिनदास ने सुभग से कहा, कि तुम अभी बच्चे हो, विशेष अर्थ समझने की शक्ति अभी तुम में नहीं है, इसलिए मैंने तुमको नवकार मन्त्र का यह साधारण अर्थ बताया है, जिसको तुम समझ भी सकते हो और स्मरण भी रख सकते हो। मैंने नवकार मन्त्र का जो अर्थ

कहा, उस पर से अनेक प्रश्न हो सकते हैं। तुम जब बड़े होओगे और तुम्हारी बुद्धि में वे प्रश्न उत्पन्न होंगे, तब तुम किन्हीं महात्मा से प्रश्नों का समाधन कर लेना। उस समय तुम उस समाधान क समझ कर भली प्रकार हृदयंगम कर सकोगे।

५

नवकार-मन्त्र पर दृढ़ता

किसी धार्मिक बात को श्रवण करने के पश्चात् उसका मनन करने, उसको स्वयं में रुचाने और उस पर श्रद्धा एवं विश्वास लाने की आवश्यकता है। जो बात केवल सुनी गई है, जिसका मनन नहीं किया गया है, या मनन करके भी जो अपने में रुचाई नहीं गई है, जिस पर श्रद्धा-विश्वास नहीं है, वह बात पूर्ण लाभ प्रद नहीं हो सकती। इसलिए प्रत्येक धार्मिक बात को श्रवण करके, उसका मनन करना

चाहिए और उसको श्रद्धा पूर्वक अपने में रुचाना चाहिए। इतना ही नहीं, किन्तु उस पर दृढ़ता रखनी चाहिए।

कई लोग ऐसे होते हैं, कि जो अनुकूल समय में तो धार्मिक बातों पर श्रद्धा रखते हैं, लेकिन अनुकूल समय बदलने के साथ ही श्रद्धा विश्वास को भी बदल देते हैं। उस समय वे, अपनी श्रद्धा और स्वयं के विश्वास पर दृढ़ नहीं रहते। उनके हृदय में, प्रतिकूल अथवा विषम परिस्थिति के समय उस श्रद्धा के प्रति अविश्वास हो जाता है, इसलिए वे उसको छोड़ बैठते हैं। हवा के झोके से पलटने वाली ध्वजा की तरह के ऐसे लोग, किसी धार्मिक बात द्वारा होने वाला पूर्ण लाभ कदापि नहीं ले सकते। पूर्ण लाभ तो वही ले सकता है, जो अपनी धार्मिक श्रद्धा पर अन्त तक दृढ़ रहता है। जो तन, धन, प्राण नष्ट होने के समय तक, अथवा नष्ट हो जाने तक भी अपने धार्मिक विचारों को नहीं बदलता, उन पर अविश्वास नहीं लाता और उनके प्रति अश्रद्धा नहीं होने देता। जिस व्यक्ति में इस प्रकार की दृढ़ता है, उस व्यक्ति की न तो कभी कोई हानि हुई ही है, न हो ही सकती है। कदाचित प्रकट में उसका तन, धन, प्राण नष्ट होते देखा भी जाता हो, तब भी निश्चय में उसकी कोई हानि नहीं है, किन्तु उसको लाभ ही है। गजसुकुमार मुनि के सिर पर आग रखी गई थी। उस समय उनके हृदय में यह विचार हो सकता था, कि मेरे

सिर पर यह आग संयम के कारण रखी गई है, और इस विचार से वे संयम के प्रति अश्रद्धा ला सकते थे; लेकिन उनमें दृढ़ता थी, इसलिए उनके हृदय में संयम के प्रति किंचित भी अश्रद्धा नहीं हुई। परिणामतः उनका भौतिक शरीर तो नष्ट हो गया, लेकिन उनके आत्मा की कोई हानि नहीं हुई, किन्तु आत्मा ने मोक्ष प्राप्त किया। अरणक और कामदेव श्रावक ने भी, पिशाच रूपधारी देव द्वारा विषम परिस्थिति उत्पन्न की जाने पर दृढ़ता नहीं त्यागी थी। परिणामतः उनकी कोई हानि नहीं हुई, और वे आदर्श श्रावकों में माने गये। इस प्रकार जो विषम परिस्थित में भी धार्मिकता को नहीं त्यागता, धर्म या धर्म सम्बन्धी बातों पर अश्रद्धा नहीं लाता, वही उसके पूर्ण फल को प्राप्त कर सकता है।

वयस्क स्त्री पुरुषों की अपेक्षा, बालकों में विश्वास की मात्रा अधिक होती है। उनको अच्छी या बुरी—जिस किसी भी बात पर विश्वास हो जाता है, वे अपने उस विश्वास को प्रायः दीर्घकाल तक नहीं जाने देते, किन्तु वे उस विश्वास के आधार पर ही कार्य करते हैं। यदि उनके हृदय में किसी व्यक्ति, वस्तु या स्थान की ओर से भय हो जाता है, तो वे उस व्यक्ति वस्तु या स्थान का स्मरण आते ही भीत हो उठते हैं। इसी प्रकार यदि उन्हें किसी पर अनुकूल विश्वास हो जाता है, तो वे उसके सहारे निर्भय भी

रहते हैं। उदाहरण के लिए गान्धीजी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है, कि 'मुझे मेरी धाय–माँ ने यह सिखाया था, कि राम का नाम लेने पर किसी प्रकार का भय नहीं रहता। मुझे धाय–माँ के इस कथन पर विश्वास हो गया, इसलिए मैं निर्भय रहा करता।' इस प्रकार वयस्क स्त्री पुरुषों की अपेक्षा बालकों में विश्वास की मात्रा अधिक होती है और उनमें दृढ़ता भी अधिक रहती है। वे अपने विश्वास के आधार पर ऐसे ऐसे कार्य भी कर डालते हैं, जैसे कार्य करने में वयस्क स्त्री पुरुष को अनेक विचार हो सकते हैं। सुभग भी बालक ही था। इसलिए यह देखना है कि उस में कैसी दृढ़ता थी और उस दृढ़ता के कारण उसने क्या कार्य किया।

सुभग, जैसे-जैसे जिनदास का कथन सुनता जाता था, वैसे ही वैसे उसको प्रसन्नता एवं नवकार मन्त्र पर श्रद्धा होती जाती थी। जिनदास का कथन समाप्त होने पर सुभग ने गद् गद् होते हुए जिनदास से कहा, कि जिस मन्त्र का ऐसा प्रभाव और माहात्म्य है, मैं वह मन्त्र अवश्य ही सीखूंगा। आप कृपा करके मुझे नवकार मन्त्र याद करा दीजिये।

जिनदास सेठ ने, सुभग को नवकार मन्त्र याद करा दिया। सुभग ने, मन्त्र कंठस्थ कर लिया। उसने केवल कंठस्थ ही नहीं किया, किन्तु उसे अपने में रचा लिया। वह प्रत्येक समय

मन्त्र स्मरण करता रहता । जब गायें लेकर वह जंगल में जाता, तब वहाँ भी वह नवकार मन्त्र जपा करता, तथा घर में भी बैठते, उठते, चलते, फिरते नवकार मन्त्र रटा करता। रात के समय जब वह सेठ के समीप बैठता, तब सेठ उसको धर्म-सम्बन्धी बातें सुनाया करता, जिन्हें सुभग प्रेम और श्रद्धापूर्वक सुनता रहता। सेठ के समझाने से सुभग को नवकार मन्त्र पर दृढ़ और पूर्ण विश्वास हो गया। वह नवकार मन्त्र के सहारे स्वयं को निर्भय मानने लगा। वह मानने लगा, कि मैं नवकार मन्त्र जानता हूँ, इसलिए अब न तो मेरे को किसी प्रकार का रोग हो सकता है, न दुःख। मैं सब भाँति निर्भय हूँ। कहीं भी जाऊँ मेरे को किसी प्रकार का भय नहीं है।

सुभग, नवकार मन्त्र पर दृढ़ विश्वास रख कर विचरा करता। वह, किसी भी समय और किसी भी स्थान पर भय न पाता। जैसे वह भय को जानता ही न था।

इस बात को कई दिन बीत गये। एक दिन सुभग, जंगल में गायें चरा रहा था। उस समय घनघोर बादल उठा और गरजने लगा। साथ ही बिजली कड़कने लगी, तथा मूसलधार वर्षा भी होने लगी। वह समय, बड़ी अवस्थावाले लोगों के लिए भी भय देनेवाला हो सकता है, लेकिन बालक सुभग किंचित भी भयभीत नहीं हुआ। वह तो, नित्य की भाँति नवकार मन्त्र ही जपता रहा।

उसके हृदय में यह भी विचार नहीं हुआ, कि मैं नवकार मन्त्र पर इस तरह श्रद्धा रखता हूँ, इस तरह नवकार मन्त्र का जप करता हूँ, और नवकार मन्त्र में ऐसी शक्ति बताई जाती है, फिर भी मैं कैसी आपत्ति में पड़ गया हूँ। नवकार मन्त्र की शक्ति, मुझे इस आपत्ति से छुटकारा क्यों नहीं दिलाती! और जब नवकार मन्त्र जपते रहने पर भी मुझे इस आपत्ति का सामना करना पड़ रहा है, तब यह कैसे माना जा सकता है कि नवकार मन्त्र में कोई शक्ति है! कई लोगों के हृदय में, कष्ट के समय इस प्रकार के अनेक विचार होने लगते हैं, और ऐसे विचारों का आधिक्य धर्म पर अश्रद्धा उत्पन्न करा देता है। धर्म से जब किसी प्रकार की सांसारिक कामना की जाती है और वह सांसारिक कामना पूर्ण नहीं होती, तब धर्म पर अविश्वास हो जाता है, तथा फिर ऐसे लोग धर्म को कोसने लगते हैं एवं छोड़ बैठते हैं। कामना-सहित धर्म की सेवा करनेवालों के लिए ऐसा होना स्वाभाविक ही है। लेकिन सुभग की नवकार मन्त्र पर जो श्रद्धा थी, वह कामना रहित थी। वह जानता था, कि नवकार मन्त्र में ऐसी शक्ति है, फिर भी नवकार मन्त्र द्वारा अपनी कोई इच्छा पूर्ण कराने की भावना नहीं रखता था। जिनदास ने उसको शिक्षा ही ऐसी दी थी। उसने सुभग को यह सिखाया था, कि नवकार मन्त्र में समस्त शक्ति है, लेकिन किसी सांसारिक

काम में नवकार मन्त्र की शक्ति देखने की इच्छा रखने से, नवकार मन्त्र का वह अनन्त फल नष्ट हो जाता है, जो मोक्ष प्राप्त कराने वाला है। इस कारण सुभग ने यह विचार भी नहीं किया, कि नवकार मन्त्र के प्रभाव से यह बिजली या वर्षा क्यों नहीं मिट जाती है। किन्तु वह तो यही सोचता रहा, कि यह वर्षा बिजली मेरी परीक्षा कर रही है। मेरे हृदय में नवकार मन्त्र के प्रति कितनी दृढ़ता और कितना विश्वास है, इस की कसौटी हो रही है। सेठ ने मुझ से कहा ही था कि जब विषम समय में भी नवकार मन्त्र विस्मृत न हो, और जब विषम समय से घबराया न जावे, विषम समय को अनुकूल बनाने के लिए नवकार मन्त्र से कामना न की जावे, तभी समझना कि स्वयं में नवकार मन्त्र के प्रति पूर्ण विश्वास है। स्वयं में नवकार मन्त्र के प्रति पूर्ण विश्वास है या नहीं, इस बात की परीक्षा विषम सयय पर ही होती है। यदि विषम समय से घबरा गया, उस समय नवकार मन्त्र से किसी प्रकार की सहायता चाही, अथवा उस समय नवकार मन्त्र पर अश्रद्धा हो गई, तब तो स्पष्ट है कि नवकार मन्त्र पर पूर्ण श्रद्धा विश्वास नहीं है। लेकिन यदि उस समय घबराया नहीं, दृढ़ रहा, नवकार मन्त्र से किसी प्रकार की कामना नहीं की और न उस पर अविश्वास ही किया, तो उस

समय के लिए यह कहा जा सकता है कि नवकार मन्त्र पर पूर्ण श्रद्धा और पूर्ण विश्वास है।

इस प्रकार विचार कर सुभग, न तो वर्षा बिजली से घबराया, न मन्त्र से किसी प्रकार की कामना ही की, न नवकार मन्त्र पर अविश्वास ही किया। किन्तु जैसे-जैसे बिजली वर्षा का जोर बढ़ता गया, वैसे ही वैसे सुभग का नवकार-मन्त्र-स्मरण करना भी बढ़ता गया।

सन्ध्या के समय जब वर्षा का जोर कम हुआ, तब सुभग गायों को लेकर घर की ओर चला। मार्ग में एक छोटी-सी नदी पड़ती थी, जो वर्षा के कारण उस समय पूर हो आई थी। सुभग के लिए, उस नदी को पार करना कठिन था। वह तैरना भी नहीं जानता था, इसलिए वह नदी के किनारे खड़ा होकर सोचने लगा, कि इस नदी को किस प्रकार पार करूँ! गायें तो बच्चों का स्मरण करके नदी को तैर कर निकल गईं, लेकिन सुभग न निकल सका। वह, किनारे पर ठहर कर नदी पार करने का उपाय सोचने लगा। उसको रह-रह कर यह विचार होता था, कि गायों के साथ जब मैं न पहुँचूँगा, तब सेठ मेरे लिए चिन्ता करेंगे। पहले भी एक दिन जब मैं आकाशगामी महात्मा के ध्यान में मग्न होकर रह गया था, और गायें अकेली घर को गई थीं, तब भी सेठ ने मेरे लिए चिन्ता की थी। इसलिए जिस तरह भी हो, मुझे नदी पार करके शीघ्र

ही घर पहुँचना चाहिए, जिससे मेरे लिए सेठ को चिन्तित न होना पड़े। मैं नवकार मन्त्र जानता हूँ इसलिए मुझे किसी प्रकार का भय भी न करना चाहिए। नवकार मन्त्र जानने वाले को तो निर्भय रहना चाहिए। मैंने, सेठ के मुँह से नवकार मन्त्र के प्रभाव और नवकार मन्त्र की शक्ति के विषय में अनेक कथाएँ सुनी हैं। मैंने प्रत्यक्ष भी उन महात्मा को नवकार मन्त्र का जप करके आकाश में उड़ते देखा है और मुझ को स्वयं को भी यह अनुभव है कि नवकार मन्त्र पर विश्वास रखने से किस प्रकार की निर्भयता रहती है। ऐसी दशा में मुझे इस नदी के पूर से भय करने का कोई कारण नहीं है। मुझे नवकार मन्त्र का स्मरण करते हुए नदी में कूद पड़ना चाहिए और हृदय में नवकार मन्त्र का अखण्ड ध्यान चलने देना चाहिए। यदि मैं नदी से पार हो गया तब तो ठीक ही है, लेकिन यदि नदी से जीवित पार न हुआ, किन्तु नदी में ही मर गया, तो उस दशा में भी कोई हर्ज नहीं है। मैंने सेठ के मुँह से सुना ही है, कि शूली लगा हुआ महान् अपराधी चोर भी नवकार मन्त्र जपता हुआ मरा था तो देव हुआ था। इस प्रकार जीवित रहा तब भी अच्छा है और जीवित न रहा किन्तु मर गया तब भी अच्छा है।

इस प्रकार सरल भाव से नवकार मन्त्र पर विश्वास रख कर

सुभग, नदी के किनारे पर स्थित एक वृक्ष पर चढ़ा, और नवकार मन्त्र का स्मरण करता हुआ नदी में कूद पड़ा। नदी में जिस स्थान पर वह कूदा था, उसी स्थान पर सूख कर वा पूर के प्रवाह से—गिरे हुए खैर के वृक्ष का खूंटा लगा हुआ था। सुभग उसी खूँटे पर गिरा, जिससे उसके पेट में वह खूँटा घुस गया। पेट में खूंटा घुसने से सुभग को तीव्र वेदना हुई और वह थोड़ी ही देर में मर भी गया, लेकिन वह नवकार मन्त्र विस्मृत नहीं हुआ। मरने तक उसके हृदय में नवकार मन्त्र का ऐसा अखंड ध्यान बना रहा कि उसको पेट में खूँटा लगने और वेदना होने का भी पता नहीं लगा। नवकार मन्त्र के उस अखंड ध्यान के प्रताप से, सुभग मर कर जिनदास की पत्नी अर्हद्दासी के गर्भ में उत्पन्न हुआ।

यहाँ यह प्रश्न होता है, कि नवकार मन्त्र की शक्ति तो ऐसी बताई है कि नवकार मन्त्र के प्रभाव से साँप भी फूलों की माला देनेवाला हो जाता है और शूली का भी सिंहासन बन जाता है आदि। फिर इस समय नवकार मन्त्र की यह शक्ति कहाँ चली गई? सुभग के लिए वह खैर का खूँटा सिंहासन या मोम क्यों नहीं हो गया या वह सकुशल घर क्यों नहीं पहुँच गया? नदी में उसकी मृत्यु क्यों हो गई? बल्कि इस घटना पर से तो यही कहा जा सकता है कि नवकार मन्त्र पर विश्वास करने के कारण ही उसकी मृत्यु हुई अन्यथा मृत्यु न होती।

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि नवकार मन्त्र का प्रभाव केवल भौतिक शरीर के जन्म मरण या सुख दुःख पर से ही न देखना चाहिए, किन्तु परम्परा पर आत्मा को क्या लाभ हुआ या आत्मा की क्या हानि हुई, यह देखना चाहिए। यदि केवल शरीर पर से ही देखा जावेगा, तब तो बहुत अनर्थ होगा। जैसे, गजसुकुमार मुनि संयम लेकर और समभाव धारण करके, श्मशान में ध्यान लगाये खड़े थे। उसी समय सोमल ने उनके सिर पर आग रख दी, जिससे उनका शरीर नष्ट हो गया। यदि शरीर नष्ट होने की ही बात पकड़ी जावे, तब तो यही कहना होगा कि संयम समभाव या ध्यान का फल अच्छा नहीं होता। संयम लेने, समभाव रखने या ध्यान करने का फल, मृत्यु है। इन्हीं के कारण गजसुकुमार मुनि के सिर पर आग रखी गई और उनकी मृत्यु हुई। इस प्रकार शरीर को ही देखने पर तो कभी-कभी श्रेष्ठ कार्यों को भी दूषित ठहराना होगा। इसलिए यही कहा जावेगा कि गजसुकुमार मुनि के सिर पर आग का रखा जाना या उनका शरीर छूटना संयम समभाव या ध्यान का परिणाम नहीं है। संयम समभाव या ध्यान का परिणाम तो मोक्ष है, जो उन्हें प्राप्त हुआ ही। रही शरीर छूटने की बात, लेकिन मोक्ष-प्राप्ति के लिए शरीर छूटना आवश्यक था। बिना शरीर छूटे, मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता था। मोक्ष प्राप्त हुआ, इसलिए शरीर का छूटना भी अच्छा हुआ।

इसी प्रकार सुभग के लिए केवल यह देखना ठीक न होगा कि नवकार मन्त्र का ऐसा प्रभाव होने पर भी, नवकार मन्त्र का श्रद्धालु और उस पर विश्वास रखनेवाला सुभग क्यों मर गया ? नवकार मन्त्र की शक्ति से सुभग को मोक्ष-प्राप्त करना था और मोक्ष प्राप्त करने से पहले उसको अपना पुण्य भी भोगना था। पुण्य भोगने और फिर मोक्ष जाने के लिए सुभग का यह शरीर उपयुक्त न था। उसे, सुदर्शन के भव में पुण्य भोगने के लिए जो ऋद्धि सम्पदा प्राप्त हुई, वह सुभग को कदाचित इसी भव में प्राप्त भी हो जाती, तब भी जिस रीति से वह सुदर्शन के भव में प्राप्त ऋद्धि सम्पदा आदि का उपभोग कर सका, उस रीति से सुभग के भव में न कर सकता था। उदाहरण के लिए उसे कितनी भी सम्पत्ति मिल जाती, वह कैसा भी धनवान हो जाता, तब भी वह कहलाता ग्वाले का लड़का ही। कुल के कारण उसको जो बड़ाई सुदर्शन के भव में मिली, वह न मिलती। इसी प्रकार जिनदास के यहाँ जन्मने से उसे जो मान सम्मान मिला था, वह भी इस शरीर में रहने पर नहीं मिल सकता था। उसका अधिकान्श बाल्यकाल व्यतीत हो चुका था, इसलिए वह बाल्यवस्था में भोगे जानेवाले सुखों को भी न भोग सकता। इन सबके सिवाय एक यह बात भी है कि ऋद्धि, सम्पदा, मान, प्रतिष्ठा आदि भोगने के लिए जिन संस्कारों का होना आवश्यक है, सुभग में वे संस्कार न थे। इन

कारणों से आगामी भव और वैभव प्राप्त करने के लिए यदि सुभग को यह शरीर छोड़ना पड़ा, तो इसको कुछ बुरा नहीं कहा जा सकता, न शरीर छूटने को नवकार मन्त्र का फल ही कहा जा सकता है। नवकार मन्त्र का फल, सुभग का सुदर्शन के भव में जन्मना और फिर मोक्ष प्राप्त करना है। साधारण आत्मा को केवल एक ही जन्म की धर्म-कमाई से मोक्ष नहीं मिलता, किन्तु इसके लिए कई जन्म की कमाई की आवश्यकता है। सुदर्शन ने मोक्ष प्राप्त किया है। उसका वह मोक्ष गमन केवल सुदर्शन के भव की धर्म करणी का ही परिणाम नहीं है, किन्तु उसके साथ सुभग के भव की धर्मकरणी भी सम्मिलित है, और हो सकता है, कि सुभग के पहले के भव की करणी भी शामिल हो। गीता में भी कहा है—

अनेक जन्म संसिद्धि, ततोयाति परांगतिं।

यानी अनेक जन्म की धर्मकरणी से ही मोक्ष ऐसी परमगति मिलती है।

तात्पर्य यह है कि सुभग का शरीर-त्याग, सुदर्शन के भव में जन्मने के लिए ही था। इसलिए नवकार मन्त्र का फल शरीर त्याग न मानना, किन्तु सुदर्शन का भव मिलना और मोक्ष प्राप्त होना मानना है। अच्छी वस्तु प्राप्त करने के लिए, उस वस्तु से हल्की वस्तु का त्याग करना ही होता है। अच्छी पगड़ी बाँधने या

अच्छे कपड़े पहनने के लिए, पहले की पगड़ी उतारनी ही होती है और पहले के कपड़े भी हटाने ही होते हैं। इसी के अनुसार सुदर्शन का भव प्राप्त करने के लिए, सुभग को भी—आयुष्यबल समाप्त होने से—शरीर त्यागना पड़ा। इसलिए नवकार या दूसरी धर्मकरणी—का प्रभाव शरीर तक ही न देखना, किन्तु यह देखना कि इससे आत्मा को क्या लाभ हुआ; और आत्मा को जो लाभ हुआ, उसे ही नवकार मन्त्र या धर्मकरणी का फल समझना। सुभग नवकार मन्त्र का भक्त था और उसने नवकार मन्त्र जपते हुए शरीर छोड़ा था, इसी कारण उसको सुदर्शन का उत्तम भव और फिर मोक्ष प्राप्त हुआ।

६

बालक सुदर्शन

एकेनापि सुपुत्रेण, विद्यायुक्तेन साधुना ।
आल्हादितं कुलं सर्वं, यथा चन्द्रेण शर्वरी ॥

अर्थात्—विद्वान और अच्छे एक सुपुत्र द्वारा भी सारा कुल उसी प्रकार आनन्दित रहता है जिस प्रकार एक ही चन्द्रमा से रात्रि प्रकाशित रहती है ।

आत्मा का जन्म पूर्व-भव की करणी और संस्कारों के अनुसार ही होता है । पूर्व भव की जैसी करणी और जैसे संस्कार होते हैं, जन्म भी उसी के अनुसार होता है । जिसकी पूर्व-भव की करणी

बुरी होती है, वह इस भव में जन्म कर दुःखी होता है और जिसकी पूर्व भव की करणी अच्छी होती है वह इस भव में जन्म कर सुखी होता है। सुखी वह माना जाता है जिसे क्षेत्र, वास्तु, स्वर्ण, पशु और दास प्राप्त होते हैं, तथा जो मित्रवान्, ज्ञातिमान्, उच्च गोत्रवाला कान्तिमान्, निरोगी, बुद्धिमान्, कुलीन, यशस्वी और बलवान है। जिसको इन दस बोल की योगवाई नहीं है, वह सुखी नहीं माना जाता। इस बात को दृष्टि में रख कर यह देखना है कि सरल प्रकृति और धार्मिक स्वभाव वाले सुभग का जन्म कहाँ हुआ।

सुभग तो उधर मर गया और इधर गायों के पहुँचने पर जिनदास, सुभग के लिए चिन्ता करने लगा। अर्हद्दासी को भी सुभग के लिए बहुत चिन्ता हुई। जिनदास, सुभग की खोज में गया और उसने खोज भी की, परन्तु सुभग का कहीं पता न लगा। नदी पूर थी तथा अन्धेरा हो गया था, इस कारण सुभग की खोज के लिए जिनदास जंगल में न जा सका। प्रातःकाल होने पर नदी का पूर भी कम हो जावेगा और प्रकाश भी हो जावेगा, तब सुभग को ढूंढेंगे, यह विचार कर जिनदास घर लौट आया। यद्यपि वह विवश होकर घर लौट आया था, लेकिन उसको चैन न था। रह रह कर उसे यही विचार होता था कि सुभग क्यों नहीं आया! वह जीवित भी है या नहीं! नदी पूर होने के कारण, वह उस ओर जंगल में ही ठहर गया होगा तो न मालूम किस कष्ट

में होगा; और नदी के पूर में बह गया होगा तो उसकी न मालूम कैसी दशा हुई होगी, तथा न मालूम कहाँ किनारे लगा होगा !

बड़ी रात तक जिनदास तथा अर्हद्दासी इसी विषयक बात-चीत करते रहे और फिर अपने-अपने शयनागार में जाकर लेट गये। जिनदास को तो सुभग की चिन्ता में बहुत रात बीतने पर भी नींद नहीं आई, लेकिन अर्हद्दासी सो गई। जिस समय अर्हद्दासी कुछ निद्रित अवस्था में थी, उस समय उसने स्वप्न में फूला फला कल्प-वृक्ष देखा। स्वप्न देखकर, अर्हद्दासी जाग उठी। वह सोचने लगी कि आज अनायास ही मैंने यह शुभ स्वप्न देखा है। इस शुभ स्वप्न का फल क्या हो सकता है ! आज सुभग घर नहीं आया इससे चिन्ता है फिर भी मैंने यह स्वप्न देखा है, इस स्वप्न देखने में अवश्य ही कोई रहस्य है।

इस प्रकार विचार करती हुई अर्हद्दासी प्रसन्न होती हुई अपने पति के शयनागार में गई। जिनदास उस समय जाग ही रहा था। पत्नी को देख कर वह कहने लगा कि क्या तुम्हें भी अब तक नींद नहीं आई है ? मैं सोचता था कि सुभग के न आने की चिन्ता के कारण मुझे ही नींद नहीं आई है, लेकिन मैं देख रहा हूँ कि तुम भी जाग ही रही हो ! परन्तु इस चिन्ता के समय में भी तुम्हारे मुख पर प्रसन्नता की झलक दिखाई दे रही है, इस का क्या कारण है ?

अर्हद्दासी बोली नाथ ! मैं आपके समीप से जाकर अपने

शयनागार में लेट रही। कुछ देर तक तो सुभग की चिन्ता के कारण मुझे नींद नहीं आई, परन्तु फिर नींद आ गई। मैं सो रही थी, उस समय स्वप्न में मैंने फूला फला कल्पवृक्ष देखा। स्वप्न देख कर मैं जाग उठी और सोचने लगी कि आज जिस समय सुभग के न आने के कारण चिन्ता है, यह शुभ स्वप्न देखा है, तो इस का क्या फल हो सकता है! मैं आपको यह स्वप्न सुनाने के लिए आई हूँ और जानना चाहती हूँ कि इस स्वप्न का क्या फल होगा?

पत्नी का कथन सुन कर, कुछ देर विचार करने के बाद जिनदास बोला कि प्रिये, तुम्हारे इस स्वप्न का फल पुत्र प्राप्ति है। तुमने स्वप्न देखा, इससे जान पड़ता है कि अपनी पुत्र विषयक इच्छा पूर्ण होगी। तुमने कल्पवृक्ष का एक ही फल नहीं देखा है, किन्तु सारे वृक्ष को ही फूल फल से लदा हुआ देखा है। इसलिए तुम अवश्य ही पुत्रवती होओगी और विलक्षण पुत्र की माता बनोगी।

पति पत्नी ने, सुभग विषयक बातचीत और धार्मिक चर्चा करते हुए रात बिताई। सबेरा होने पर, जिनदास फिर सुभग को खोजने लगा। खोजते-खोजते जिनदास को, नदी में पड़ा हुआ सुभग का शव मिला। सुभग का शव देख कर, जिनदास बहुत ही दुःखी हुआ। जैसे तैसे उसने सुभग के शव की अन्त्येष्टि की। फिर घर आकर

उसने सुभग की मृत्यु का वृत्तान्त अर्हद्दासी से कहा। सुभग की मृत्यु का समाचार सुन कर अर्हद्दासी को भी बहुत दुःख हुआ, परन्तु जिनदास ने समझा बुझाकर अर्हद्दासी को धैर्य दिया। उसने अर्हद्दासी से कहा कि – प्रिये जन्मना-मरना तो संसार का नियम ही है। इस नियम से कोई भी नहीं बच सकता। जो जन्मा है, वह मरने के लिए ही है। ऐसी दशा में किसी के मरने पर दुःख करना एक प्रकार अज्ञान है। इसलिए दुःख त्यागो। बल्कि मेरा तो यह अनुमान है कि सुभग तुम्हारे यहाँ ही है। आज रात को ही सुभग की मृत्यु हुई और आज रात को ही तुमने पुत्रदायक शुभ स्वप्न देखा। इससे जान पड़ता है कि सुभग तुम्हारे ही गर्भ में आया है। सुभग नवकार मन्त्र का पूर्ण श्रद्धालु था। नवकार मन्त्र पर उसको अड़ग विश्वास था। मैंने उसका शव देखा है। उसके चेहरे पर वैसी ही प्रसन्नता थी, जैसी प्रसन्नता सदा रहा करती थी। इससे जान पड़ता है कि वह मरने के समय भी नवकार मन्त्र का ध्यान ही करता रहा और नवकार मन्त्र के ध्यान में ही उसकी मृत्यु हुई। इससे मैं तो यही अनुमान करता हूँ कि वह मर कर तुम्हारे ही गर्भ में आया है। सुभग पुण्यवान था। वह तुम्हारा पुत्र हो कर इस घर का स्वामी हो, यह कोई आश्चर्य की बात भी नहीं है। इसलिए चिन्ता छोड़ो और प्रसन्न रहो।

जिनदास ने इस प्रकार अर्हद्दासी को धैर्य देकर सन्तुष्ट

किया। अर्हद्दासी के गर्भ में पुण्यवान और धर्मात्मा सुभग का जीव आया था, इसलिए अर्हद्दासी को इच्छाएँ भी वैसी ही अच्छी होने लगी। माता की भावना किसी न किसी रूप में यह स्पष्ट कर देती है कि गर्भ का बालक पुण्यात्मा है या पापात्मा। गर्भवती माता की इच्छा गर्भ की ही इच्छा मानी जाती है। इसलिए उस समय की इच्छा बालक का भविष्य बता देती है। गर्भवती की इच्छा को दोहद कहा जाता है और जैसा दोहद होता है, पुत्र भी वैसा ही पुण्यात्मा या पापात्मा होता है। जब कोणिक अपनी माता के गर्भ में था, उस समय उसकी माता की यह इच्छा हुई कि मैं अपने पति श्रेणिक का कलेजा खाऊँ। परिणामतः कोणिक ऐसा जन्मा कि जो अपने पिता श्रेणिक के लिए दुःखदायी सिद्ध हुआ। दुर्योधन जब गर्भ में था, तब गान्धारी की इच्छा, सब कौरववन्शी लोगों के कलेजे खाने की हुई थी। दुर्योधन हुआ भी ऐसा ही। वह, समस्त कौरव वन्श के लिए कुठार रूप ही निकला। इसी प्रकार जब धर्मात्मा और पुण्यात्मा बालक गर्भ में होता है, तब माता की इच्छा भी धर्म-पुण्य के कार्य करने की ही होती है।

पुण्यात्मा सुभग का जीव अर्हद्दासी के गर्भ में था; इसलिए अर्हद्दासी की इच्छाएँ धर्मपुण्य के कार्य करने की ही होती थी। ऐसी इच्छा को गर्भ की इच्छा जान कर, अर्हद्दासी धर्म-पुण्य के कार्य करती रहती। जिनदास भी, धर्म-पुण्य के कार्य विशेष रूप से

करता रहता। उसने, दान के लिए अपना भंडार ही खोल दिया।

धर्म-पुण्य के कार्य करती हुई भी, अर्हद्दासी, गर्भ की रक्षा के लिए बहुत सावधानी से काम लेती। खाने, पीने, चलने, फिरने और सोने बैठने आदि में वह इस बात का ध्यान रखती कि किसी प्रकार गर्भ को कष्ट न होने पावे। वह सदा ऐसे कार्य करती, जिनसे गर्भ को सुख मिले। जिन कामों से गर्भ के बालक को कष्ट होता है, उन कामों से वह बची रहती।

गर्भकाल समाप्त होने पर अर्हद्दासी ने, एक सर्वाङ्ग सुन्दर सम्पूर्ण बालक को जन्म दिया। पुत्र के जन्मने से माता-पिता आदि को बहुत प्रसन्नता हुई। जिनदास के यहाँ पुत्र उत्पन्न हुआ है, यह खबर सारे नगर में फैल गई। इस शुभ समाचार को सुनकर, राजा एवं नगर-निवासियों को भी बहुत प्रसन्नता हुई।

जिनदास ने पुत्र जन्मोत्सव मनाया। लोगों के यहाँ से सेठ को बधाइयाँ और भेंट मिलने लगीं। सेठ ने भी मुक्तहस्त से दान उपहार आदि दिया। राजा ने भी, सेठ के यहाँ बधाई भेजी। साथ ही, नगर सेठ के यहाँ पुत्र जन्मने के उपलक्ष में अनेक बन्दियों को मुक्त किया, प्रजा को कर में छूट दी, और दूसरे भी अनेक सुधार किये। एक पुण्यात्मा, अनेकों के लिए सुखदायी होता है; इसके अनुसार सेठ के यहाँ पुत्र का जन्मना भी सब के लिए सुखदायी हुआ।

पुत्र-जन्मोत्सव मना कर, सेठ ने सब लोगों से यह सम्मति ली, कि पुत्र का क्या नाम रखा जावे ? लोगों ने कहा कि – इस बालक का जन्मना बहुत आनन्दकारी, और इसका दर्शन सब के लिए शुभ हुआ है, इसलिए इस बालक का नाम सुदर्शन दिया जावे। हितैषियों की सम्मति मान कर, जिनदास ने बालक का नाम सुदर्शन रखा।

बालक सुदर्शन, पाँच धाय और अठारह देश की दासियों के संरक्षण में वृद्धि पाने लगा। एक धाय सुदर्शन को दूध पिलाती। दूसरी स्नानादि कराती। तीसरी शरीर-मंडन करती, वस्त्रादि पहनाती। चौथी धाय गोद में खिलाती। और पाँचवी धाय खिलौनों द्वारा खिलाती, तथा अंगुली पकड़ कर चलाती।

प्रश्न होता है, कि इन कामों के लिए तो एक ही धाय का रखना पर्याप्त हो सकता है। फिर एक बालक के लिए पाँच धाय रखने की क्या आवश्यकता थी ?

इसका उत्तर यह है, कि एक-एक कार्य में एक-एक व्यक्ति की विशेष योग्यता होती है। किसी धाय का दूध तो अच्छा होता है, बालक के पिलाने योग्य होता है, परन्तु उसमें दूसरे कार्य करने की योग्यता नहीं होती। किसी धाय को बालक को नहलाना तो अच्छी तरह याद है, परन्तु वह बालक को वस्त्र पहनाने या उसका शरीर-मंडन करने में कुशल नहीं है। इसी प्रकार एक-एक कार्य में एक-

एक व्यक्ति कुशल होता है और जो जिस कार्य में कुशल है, वह कार्य उसके द्वारा अच्छी तरह से सम्पादन होता है। इस दृष्टि से—तथा समय और पालन की दृष्टि से भी—एक ही धाय से, सब काम लेना उपयुक्त नहीं है। जब एक ही धाय द्वारा सब काम होने लगते हैं, तब अनियमितता होना भी स्वाभाविक है। जैसे, दूध पिलानेवाली धाय ही बालक को नहला या खिला रही है, तो बालक असमय में भी दूध पीने को मांग सकता है, या नहाते हुए खेलने की इच्छा कर सकता है। जब प्रत्येक कार्य के लिए अलग-अलग धाय नियत हो तब इस प्रकार की अनियमितता नहीं हो सकती। बालक के लिए इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है, कि इसके वास्ते किस धाय का दूध उपयुक्त हो सकता है। यदि दूध पिलानेवाली धाय रुग्ग या अशक्त हुई, तो बालक भी वैसा ही होगा। इसी प्रकार यह भी विचार लेना चाहिये, कि बालक को किसकी गोद में रखना उचित है। जिसकी गोद में बालक रहता है, बालक पर उस धाय का भी संस्कार रूप से असर आता है। किसी अच्छे वृक्ष के पौधे को यदि अच्छी भूमि प्राप्त नहीं है, तो वह अपना प्रकृत गुण विकसित नहीं कर सकता। इसी प्रकार अच्छे माता-पिता से जन्मा हुआ बालक भी यदि अच्छी धाय की गोद में नहीं रहता है, तो वह भी अपने गुण विकसित नहीं कर सकता। स्नान कराने, और शरीर-मंडन कराने आदि में

भी ऐसी ही बातें विचारणीय हैं। एक धाय तो बालक को इस रीति से स्नान कराती है, कि जिससे उसके अंगोपाङ्ग विकसित होते है, और एक इस तरह स्नान कराती है, कि जिससे शरीर पर फोड़े फुन्सी आदि हो जाते हैं। एक इस तरह से शरीर-मंडन करती है, कि जिससे बालक साफ सुथरा रहता है तथा सुन्दर जान पड़ता है, और एक इस तरह से शरीर-मंडन करती है, कि जिससे बालक और गन्दा बन जाता है। जैसे, कई स्त्रियाँ तो बालक की आँखों में इस तरह से काजल लगाती हैं कि आँखों में काजल जान ही नहीं पड़ता, और कोई इस रीति से लगाती हैं, कि सारा मुँह काला हो जाता है। कोई बालक को इस तरह खेल में लगाती और चलाती हैं, कि जिससे बालक थकता भी नहीं है तथा उसका शरीर का विकास भी होता है; और कोई बालक से इस प्रकार खेल कराती या बालक को इस तरह चलाती हैं कि जो बालक के लिए बोझ रूप हो जाता है, तथा जिससे बालक की हानि भी होती है। इन्हीं दृष्टियों से योग्यता देखकर भिन्न-भिन्न कार्य के लिए भिन्न-भिन्न धायें रखी जाती हैं। यह पुण्यवानों का चिन्ह भी है।

रही अठारह देश की दासियों की बात। वैसे तो अठारह दासियाँ एक ही देश की भी रखी जा सकती हैं। फिर भी अठारह देश की अठारह दासी रखी जाती थीं इसका कारण यही है, कि भिन्न-भिन्न देश की अठारह दासियों के सम्पर्क में रहने

से, बालक—सहज रीति से खेल-खेल में ही—अठारह देश की भाषा भूषा से परिचित हो जाता है। इसके लिए उसे अलग शिक्षा लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। बालक को बचपन में जिन बातों की शिक्षा सहज रीति से मिल सकती है, बड़े होने पर उन्हीं बातों के लिए श्रम करना पड़ता है। इसी दृष्टि से अठारह देश की दासियाँ रखी जाती थी।

पाँच धाय और अठारह देश की दासियों के संरक्षण में बालक सुभग आठ वर्ष का हुआ। जब सुर्शन आठ वर्ष का हो गया, तब जिनदास ने सोचा, कि अब इस को विद्या पढ़ानी चाहिये और कला सिखानी चाहिये। जिससे यह संसार—व्यवहार का भार वहन करने में समर्थ हो सके, जीवन सुख से निभा सके, और धर्म-प्राप्ति द्वारा आत्मा का कल्याण भी कर सके। नीतिकारों का कथन है, कि—

साहित्य संगीत कला विहीनः
साक्षात्पशुः पुच्छ विषाणहीनः ।
तृणं न खादन्नपि जीवमान,
स्तद्भागधेयं परमं पशूनाम ॥

अर्थात्—जो लोग साहित्य और संगीत आदि कला नहीं जानते, वे साक्षात् बिना सींग पूँछ वाले पशु के समान ही हैं। यह सौभाग्य की बात

है कि वह बिना घास खाये ही जीवित है। यह पशुओं का परम सौभाग्य है।

इसलिए सुदर्शन को विद्या, कला आदि की ऐसी शिक्षा देनी चाहिए, जिससे यह पशु न माना जावे, किन्तु मनुष्यों में श्रेष्ठ माना जावे, और प्रत्येक दृष्टि से अपना जीवन स्वतन्त्रता-पूर्वक बिता सके। अब सुदर्शन विद्या पढ़ने और कला सीखने के योग्य भी हो गया है। इसकी अवस्था आठ वर्ष की हो चुकी है। इस अवस्था से पहले बालक पर विद्या पढ़ने या कला सीखने का बोझ डालना, उसके शारीरिक तथा मानसिक विकास की क्षति करना है। और आठ वर्ष का हो जाने पर भी बालक को इस दिशा में न लगाना, उस खेत को सुखाने के समान है, जो बीज बोने के योग्य हो गया है। बल्कि बालक को विद्या कला आदि न सिखाना, किन्तु उसे मूर्ख रखना, खेत को सुखाने से भी अधिक मूर्खता पूर्ण कार्य और बालक के प्रति शत्रुता पूर्ण व्यवहार है। नीतिकारों का कथन है—

माता रिपुः पिता शत्रु येन बालो न पाठ्यते।
न शोभते सभा मध्ये हंस संघे बको यथा॥

अर्थात्—वे माता पिता बालक के शत्रु हैं, जो बालक को पढ़ाते नहीं हैं। अपढ़ बालक विद्वानों की सभा में उसी प्रकार शोभा नहीं देते, जिस प्रकार हंसों की पंक्ति में बगुला शोभा नहीं देता।

इस प्रकार सोच कर, जिनदास ने अपने पुत्र सुदर्शन को पढ़ने और कला सीखने के लिए कलाचार्य्य के पास बैठाया। थोड़े ही दिनों में सुदर्शन विद्या पढ़ कर और ७२ कला सीख कर होशियार हो गया। जिसके पूर्व-संस्कार अच्छे होते हैं, वह जल्दी सीख-पढ़ जाता है, और जिसके पूर्व संस्कार अच्छे नहीं होते, वह या तो सीखने का अवसर ही नहीं पाता, या बहुत देर में सीख पाता है, या प्रयत्न करने पर भी जैसा का तैसा ही रह जाता है, कुछ भी नहीं सीख पाता। सुदर्शन, पुण्यवान था। उसके पूर्व-संस्कार अच्छे थे, इसलिए उसे विद्या-कला सीखने में बहुत समय नहीं लगा। वह थोड़े ही समय में सीख-पढ़ कर अपने घर आया। उसकी नम्रता, सरलता और शिक्षा देख कर, जिनदास बहुत ही प्रसन्न हुआ। जिनदास ने, सुदर्शन को शिक्षा देने वाले कलाचार्य्य को बहुत पुरस्कार दिया, और उसका बहुत उपकार आभार मान कर, सम्मान सहित उसे बिदा किया।

७

सुदर्शन सेठ

प्रायः देखने में आता है, कि मनुष्य बचपन में जैसा रहता है, बड़ा होने पर वैसा नहीं रहता। बचपन में जो अनेक लोगों को प्रिय लगता है, अनेक लोगों के लिए भावी सदाशाओं का कारण होता है, वही बचपन से निकलने के पश्चात् उन्हीं लोगों को अप्रिय लगने लगता है, और भविष्य के लिए भी दुःखदायी जान पड़ने लगता है। यद्यपि ऐसा होना कोई नियम रूप नहीं है, न सभी के लिए ऐसा होता ही है, लेकिन अधिकतर

ऐसा ही होता है। अनेक माता-पिता अपने पुत्र से भविष्य विषयक अनेक आशाएँ करते हैं, हृदय में न मालूम किन-किन आशाओं को सींच कर पुत्र से प्रेम करते हैं तथा उससे लाड़ लड़ाते हैं, लेकिन अनेक पुत्र उन्हीं माता-पिता के लिए कुठार रूप निकलते हैं। राजकुमारों से प्रजा प्रेम करती है तथा यह सोचती है, कि आगे चल कर इनके द्वारा हमें सुख होगा, लेकिन उन्हीं राजकुमारों में से अनेक, प्रजा के लिए दुःख रूप सिद्ध होते हैं। बचपन में जिनसे जैसी आशा रखी जाती थी, आगे चल कर वे वैसै ही निकलें और जैसे प्रिय बचपन में रहे, वैसे ही प्रिय आगे भी रहें, ऐसे उदाहरण बहुत कम मिलेंगे। कुछ ऐसे लोग भी अवश्य निकलेंगे, जो आगे चल कर बचपन में उनके विषय में किये गये अनुमान से भी अधिक अच्छे निकले हों, लेकिन ऐसे लोगों की संख्या से अधिक संख्या उन्हीं लोगों की होगी, जिनका वर्णन पहले किया गया है। इसका कारण यह है, कि बचपन में जो स्वाभाविक सरलता और नम्रता रहती है, युवावस्था उसको नष्ट कर देती है। जो बचपन में अत्यन्त सरल और नम्र था, वही व्यक्ति युवावस्था प्राप्त होने पर असरल और कठोर बन जाता है। युवावस्था, अभिमान उत्पन्न कर देती है, और जिसमें अभिमान है उसमें सद्गुण कहाँ! अभिमान, दुर्गुणों की खान है। इसी कारण युवावस्था में मनुष्य में कृत्याकृत्य का विवेक नहीं रहता, और वह ऐसे ऐसे

कार्य करने लगता है जो उसकी स्वयं की तथा दूसरों को हानि करने वाले होते हैं। युवावस्था के साथ ही यदि धन-सम्पत्ति सम्मान, प्रतिष्ठा और अधिकार मिल जावे, तब तो युवावस्था का जोर अत्यधिक बढ़ जाता है। उस दशा में कई लोग मनुष्यता से निकल कर पशुता में पड़ जाते हैं। युवावस्था धन, सम्मान, प्रतिष्ठा और अधिकार, ये सभी मादकता देनेवाले हैं। इनका प्रत्येक नशा, मनुष्यता को निकाल फेंकता है, तो जहाँ ये सभी एकत्रित हो जावें, जिसको इन सभी का मद हो, उसके लिए तो कहना ही क्या है! और उस दशा में, मनुष्य यदि मनुष्यता त्याग बैठे तो आश्चर्य भी क्या है! यद्यपि युवावस्था धन, सम्पत्ति, प्रतिष्ठा और अधिकार के प्राप्त होने पर अच्छे कार्य भी किये जा सकते हैं, लेकिन तभी, जब इनके साथ विवेक भी हो। यदि इन सब के साथ ही विवेक भी हुआ, तब तो इन सब का उपयोग सद्कार्य में होता है, और विवेक न हुआ तो इन का उपयोग दुष्कार्य में होता है। लेकिन इनके साथ विवेक बहुत कम लोगों में होता है। ज्यादातर तो अविवेकी ही होते हैं, और इसी कारण ये सभी बातें हानि करने वाली हो जाती हैं।

बालक सुदर्शन भी, लोगों को बहुत प्रिय था। उससे भी जनता अनेक प्रकार की आशाएँ करती थी। इसलिए यह देखना है, कि आगे चल कर वह कैसा निकला, और युवावस्था, धन,

सम्पत्ति, सम्मान-प्रतिष्ठा तथा अधिकार की प्राप्ति का उस पर कैसा प्रभाव पड़ा।

पहले के लोग अपने पुत्र या अपनी कन्या का विवाह उस समय तक नहीं करते थे, जब तक पुत्र या कन्या में युवावस्था नहीं आ जाती थी, और उनके अजागृत नव अंग जागृत नहीं हो जाते थे। जब वर, कन्या योग्य हो जाते थे, उनमें विवाह के नियमोपनियम समझने तथा पालने की क्षमता आ जाती थी, और जब वे विवाह के कारण आने वाले बोझ को उठाने में समर्थ हो जाते थे, तभी उनका विवाह होता था। इस समय से पहले विवाह करना है भी हानि प्रद। वृद्धविवाह बालविवाह, और बेजोड़-विवाह, प्रत्येक दृष्टि से हानिकारक सिद्ध हुए हैं।

सुदर्शन, युवावस्था को प्राप्त हुआ। उसके साथ अपनी कन्या का विवाह करने के लिए अनेक लोग जिनदास के यहाँ आने लगे, और सुदर्शन का विवाह अपनी कन्या के साथ करने के लिए जिनदास से प्रस्ताव करने लगे। जिनदास सेठ, सुदर्शन के विवाह के योग्य कन्या की खोज में था, इसलिए उसने उन लोगों के प्रस्ताव टाल दिये, कि जिनकी कन्या सुदर्शन के योग्य न थी। अन्त में मनोरमा नाम की एक कन्या की सगाई आई। मनोरमा के पिता ने, जिनदास के सामने सुदर्शन का विवाह मनोरमा के साथ करने का प्रस्ताव किया। जिनदास को मनोरमा, सुदर्शन की पत्नी योग्य

जान पड़ी, फिर भी उसने एक दम से मनोरमा के पिता का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया, न अस्वीकार ही किया। किन्तु उससे यही कहा कि इस विषय में मैं सुदर्शन की सम्मति लेकर ही कोई उत्तर दे सकता हूँ।

जिनदास ने मनोरमा के पिता से इस प्रकार कह कर, कुछ दिन इस विषयक बातचीत स्थगित रखने के लिए कहा। मनोरमा के पिता ने भी जिनदास के इस कथन को ठीक माना, और जिनदास से कहा, कि कोई जल्दी नहीं है; आप सब की सम्मति ले लीजिये और फिर जैसा ठीक जान पड़े वैसा कीजिये।

यद्यपि सुदर्शन पूर्ण पितृभक्त था, इसलिए यदि जिनदास मनोरमा के साथ उसका विवाह करना स्वीकार कर लेता, तो पिता द्वारा स्वीकृत विवाह-सम्बन्ध को सुदर्शन अस्वीकार न करता। फिर भी जिनदास ने सुदर्शन की सम्मति जाने बिना उसका विवाह-सम्बन्ध स्वीकार नहीं किया। वह सोचता था, कि जिसको विवाह करना है, उसकी सम्मति जाने बिना उसका विवाह-सम्बन्ध स्वीकार कर लेना, या उसको विवाह-सम्बन्ध में बाँध देना अनुचित है। क्योंकि, वह मेरा पुत्र है, फिर भी उसके हृदय के विचारों को मैं नहीं जानता। मुझे यह भी मालूम नहीं है, कि उसकी इच्छा विवाह करने की है या नहीं और यदि है तो वह कैसी पत्नी चाहता है। इसलिए मुझे उससे सम्मति लेनी चाहिये, और उसकी सम्मति

तथा स्वीकृति को दृष्टि में रख कर ही विवाह सम्बन्ध स्वीकार करना ठीक होगा। विवाह, एक दिन के लिए नहीं होता है। यह जीवन भर का सम्बन्ध है। इसलिए जिसके वास्ते जीवन-सहचरी लानी है, उसको अंधेरे में रखना ठीक नहीं, न उसकी इच्छा के प्रतिकूल किसी को उसकी सहचरी बना देना ही ठीक हो सकता है। इसी विचार से उसने सुदर्शन के विवाह का निर्णय सुदर्शन की इच्छा पर रखा। पहले के माता-पिता, अपनी सन्तान का विवाह सन्तान की इच्छा जाने बिना नहीं करते थे। चाहे पुत्र हो या कन्या, उसकी इच्छा जान कर और उसकी स्वीकृति लेकर, फिर उसका विवाह पुत्र या कन्या की अभिरुचि के अनुकूल कन्या या वर के साथ करते थे। हाँ इस विषय में वे अपनी सन्तान को अपने अनुभवों और भावी हानि लाभ से अवश्य परिचित कर देते थे, परन्तु निर्णय का अधिकार तो सन्तान को ही प्राप्त रहता था। प्राचीन समय की यह नीति ही थी। श्रावक जिनदास, इस नीति का उलंघन कैसे कर सकता था! इसीलिए उसने सुदर्शन की सम्मति स्वीकृति लेना आवश्यक समझा।

जिनदास ने, सुदर्शन का विवाह-सम्बन्ध आने और मनोरमा की योग्यता आदि का समाचार अर्हद्दासी को सुनाया। अर्हद्दासी ने भी, मनोरमा के साथ सुदर्शन का विवाह होना ठीक बताया, और कहा, कि इस विषय में सुदर्शन की क्या इच्छा है, यह

सुदर्शन से जानना चाहिये; तथा उससे विवाह की स्वीकृति प्राप्त करनी चाहिये।

अवसर देख कर जिनदास और अर्हदासी ने सुदर्शन से कहा, कि—प्रिय वत्स, तुमने हमारे यहाँ जन्म लेकर हमारे अन्धेरे घर को प्रकाशित किया है। साथ ही, हमारे यहाँ पुत्र न होने से नगर के लोग नगर का भविष्य भी सूना मानते थे; वह सूनापन भी तुम्हारे जन्मने से मिट गया है। अब हमारी यह इच्छा है कि तुम्हारा विवाह हो और पुत्रवधू आवे, जिससे हमारे घर की शोभा बढ़े, और तुम योग्य सहचारिणी के सहयोग से संसार व्यवहार के कार्य करने में समर्थ बन सको।

माता-पिता का यह कथन सुन कर सुदर्शन, स्वाभाविक लज्जा से झुक गया। उसने नीची दृष्टि कर ली। फिर वह कहने लगा, कि यदि मैं विवाह न करूँ, तो क्या इस घर की शोभा कम रहेगी? क्या ब्रह्मचर्य पालने वाले का घर पूर्ण शोभायमान नहीं होता? मेरी समझ से तो विवाह करने वाले की अपेक्षा वह व्यक्ति घर को अधिक सुशोभित करता है, जो ब्रह्मचर्य का पालन करता है।

जिनदास ने उत्तर दिया, कि विवाह को मैं ब्रह्मचर्य से बढ़ कर नहीं मानता। मैं श्रावक हूँ, इसलिए ब्रह्मचर्य से विवाह को बढ़ कर तो मान ही कैसे सकता हूँ! परन्तु कई लोगों से ऐसा होता है, कि जो ब्रह्मचर्य पालने के लिए विवाह नहीं करते, लेकिन

फिर ब्रह्मचर्य भी नहीं पाल सकते और दुराचार में पड़ जाते हैं। ऐसे लोग, किसी भी ओर के नहीं रहते। वे अपना जीवन भी खराब करते हैं, और अपने कुल को भी दाग लगाते हैं। इस बात को दृष्टि में रख कर ही हम चाहते हैं, कि तुम्हारा विवाह हो, लेकिन तुम्हारी स्वीकृति के बिना हम तुम्हारे विवाह की योजना करना उचित नहीं समझते। इसलिए हम तुम्हारी स्वीकृति चाहते हैं। विवाह करके भी, देश विरति ब्रह्मचर्य पाला जा सकता है। जो व्यक्ति विवाह करके स्वदार सन्तोष और परदार विरमण रूप देश विरति ब्रह्मचर्य का पालन करता है, वह व्यक्ति भी धर्मात्मा ही माना जाता है। उसे पापी कोई नहीं कह सकता। विवाह करके भुक्तभोगी होकर—पूर्ण ब्रह्मचर्य की क्षमता आने पर—फिर पूर्ण ब्रह्मचर्य को अपनाना भी कुछ अनुचित नहीं है। इसलिए हम तुम से यही अनुरोध करते हैं, कि विवाह करके गार्हस्थ्य धर्म का पालन करो, और जब अपने में क्षमता देखो, तब पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना।

सुदर्शन ने उत्तर दिया—पिताजी, वास्तव में मैं बाल ब्रह्मचारी नहीं रह सकता, इसलिए मुझे विवाह कर लेना ही ठीक है; लेकिन विवाह करने में भी बहुत विचार होता है। विवाह किया और पत्नी अनुकूल न मिली, तो जीवन दुःखी हो जाता है। फिर दाम्पत्य-जीवन नीरस और कलह पूर्ण रहता है। इसलिए यदि मुझे

अनुकूल पत्नी मिली तब तो मैं विवाह कर सकता हूँ, लेकिन यदि अनुकूल पत्नी न मिली, तो अविवाहित ही रहूँगा; फिर भी ऐसा कोई कृत्य कदापि नहीं कर सकता, जिससे कुल को दाग लगे। मैं ऐसी पत्नी भी चाहता हूँ, जो मेरे से अधिक सुन्दरी भी न हो, और ऐसी कुरूपा भी न हो, कि जिससे मेरे हृदय में उसके प्रति घृणा हो। गृहस्थ के यहाँ बहुत सुन्दरी-स्त्री का होना भी ठीक नहीं है। यदि पति की अपेक्षा स्त्री अधिक सुन्दरी हुई, तो वह पति की उपेक्षा करती रहती है, और पति के साथ उसका पूर्ण प्रेम नहीं रहता। इसी प्रकार यदि पति की अपेक्षा पत्नी अधिक कुरूपा हुई, तो पति के हृदय में पत्नी के प्रति प्रेम नहीं रहता है। अनुरूप सुन्दरी होने के साथ ही, मैं ऐसी पत्नी चाहता हूँ जो न तो कोमल स्वभाव की हो, न अधिक कठोर स्वभाव की। गृहकार्य में चतुर हो, विनम्र हो, मेरे काम में सहायता देनेवाली हो, और मेरी इच्छा के अनुसार चलने वाली हो। इस तरह की पत्नी प्राप्त हो तब मैं विवाह कर सकता हूँ, अन्यथा जीवन भर अविवाहित रहना ही अच्छा है।

सुदर्शन का उत्तर सुन कर, जिनदास और अर्हद्दासी को बहुत प्रसन्नता हुई। वे सुदर्शन से कहने लगे, कि—तुम जैसी कन्या के साथ विवाह करना चाहते हो 'हमारी समझ से मनोरमा वैसी ही कन्या है। वह, प्रत्येक दृष्टि से तुम्हारी पत्नी बनने के

योग्य है ।' मनोरमा के पिता, तुम्हारे साथ मनोरमा का विवाह सम्बन्ध जोड़ने के लिए प्रस्ताव लेकर आये थे, इससे जान पड़ता है, कि मनोरमा भी तुम्हारे साथ विवाह करना चाहती है । यदि तुम्हारी स्वीकृति हो, तो हम वह प्रस्ताव स्वीकार कर लें ।

सुदर्शन, पहले ही मनोरमा की प्रशन्सा सुन चुका था; इसलिए माता-पिता द्वारा मनोरमा का नाम सुन कर वह प्रसन्न हुआ । उसने, मनोरमा को अपनी पत्नी बनने के योग्य मान कर माता-पिता से कहा, कि—जब आप मनोरमा को मेरे योग्य मान कर उसे मेरी सहचारिणी बनाना चाहते हैं, तब मुझे क्या इनकार हो सकता है ! मैंने, अपने विचार आपको सुना ही दिये । उनको दृष्टि में रख कर ही आप मनोरमा के पिता का प्रस्ताव स्वीकार करना चाहते हैं, इसलिए मुझे इस सम्बन्ध में आपकी सम्मति के विरुद्ध जाने का कोई कारण ही नहीं है ।

सुदर्शन की स्वीकृति पाकर, जिनदास और अर्हद्दासी को प्रसन्नता हुई । उन्होंने, सुदर्शन के विचारों तथा उसकी विनम्रता की प्रशन्सा की और उसे आशीर्वाद दिया । जिनदास ने, मनोरमा के पिता को बुला कर उससे कहा, कि—मैंने सुदर्शन के विचार जान कर उसकी सम्मति ले ली है, इसलिए मनोरमा और सुदर्शन को विवाह-ग्रन्थि में जोड़ने विषयक आपका प्रस्ताव स्वीकार है । स्वयं का प्रस्ताव स्वीकार करने के लिए, मनोरमा के

पिता ने जिनदास को धन्यवाद देकर, जिनदास का आभार माना।

मनोरमा के साथ सुदर्शन का विवाह हुआ। सुदर्शन की ही तरह मनोरमा भी, सरल, विनम्र और धार्मिक विचार रखनेवाली थी, तथा पतिअनुगामिनी थी। इसलिए पति-पत्नी दोनों ही, एक दूसरे को आनन्द देते हुए सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे। दोनों ही एक दूसरे का पूर्ण विश्वास करते थे। सन्देहजनित क्लेश, कलह का उनके यहाँ नाम भी न था। दोनों ने आनन्द और शिवानन्दा की तरह श्रावक के बारह व्रत स्वीकार किये। पति-पत्नी अपने व्रतों की रक्षा और गार्हस्थ्य धर्म का पालन करते हुए सुख से रहने लगे। जिनदास और अर्हद्दासी को भी, पुत्र और पुत्रवधू की यह जोड़ी बहुत प्रसन्नता देती थी। वे भी, आज्ञाकारी और धर्म पालन में तत्पर पुत्र तथा पुत्रवधू को देख कर बहुत आनन्द पाते थे।

कुछ दिन व्यतीत होने के पश्चात् जिनदास और अर्हद्दासी ने विचार किया कि अब पुत्र और पुत्रवधू दोनों ही सब तरह से योग्य हैं। दोनों ही कुशल हैं, लोक व्यवहार एवं गृहकार्य में भी दक्ष हैं, और हमारे गार्हस्थ्य धर्म का पालन भी भली प्रकार करते हैं। हमारे यहाँ पौत्र भी हो गये हैं। ऐसी दशा में अब अपने लिए उचित नहीं है कि अपन संसार-व्यवहार का बोझ अपने पर ही लादे रहें, और आत्मकल्याण के कार्य में न लगें। योग्य

सन्तान के होने पर भी गृहकार्य का बोझ स्वयं पर लादे रहना, और संसार-व्यवहार में फँसे हुए ही हाय-हाय करके मरना, संतान के सामने ऐसा ही आदर्श रखना है। जो लोग संसार-व्यवहार में ही फँसे रहते हैं, प्रायः उनकी सन्तान भी संसार-व्यवहार से नहीं निकल पाती। इसलिए अपने को गृह-संसार का कार्य भार सुदर्शन और उसकी पत्नी को सौंप कर आत्मकल्याण में लग जाना चाहिये।

इस प्रकार निश्चय करके, जिनदास और अर्हद्दासी ने गृह-कार्य का समस्त भार सुदर्शन तथा उसकी पत्नी को सौंप दिया और स्वयं व्यावहारिक कामों से अलग रह कर, आत्मकल्याण के लिए धर्मध्यान करने लगे।

जिनदास, नगर-सेठ था। उसने, व्यवहारिक कार्य त्यागने के साथ ही नगर-सेठ पद का भी त्यागपत्र दे दिया। राजा और प्रजा ने सोचा कि जिनदास ने नगर-सेठ पद का त्यागपत्र दे दिया है, इसलिए अब उनके स्थान पर किसी दूसरे को नगर-सेठ बनाना चाहिये। विचार विनिमय के पश्चात् सब लोग इसी निर्णय पर पहुँचे कि जिनने इस पद का त्यागपत्र दिया है, उन जिनदास का लड़का सुदर्शन ही इस योग्य है, कि जो नगर-सेठ बनाया जा सके। वह बुद्धिमान, व्यवहार कुशल एवं सर्व प्रिय है; और उसमें नगर-सेठ के योग्य गुण पैतृक संस्कार

से भी आये हैं। इसलिए उसी को नगर-सेठ बनना चाहिये।

इस प्रकार निश्चय करके, राजा और प्रजा ने सुदर्शन को नगर सेठ बनाया। सुदर्शन ने पहले तो इस भार को स्वीकार करने में आनाकानी की, परन्तु अन्त में राजा और प्रजा के अनुरोध को न टाल सका। नगर सेठ का पद मिलने पर सुदर्शन विचारने लगा, कि मुझे यह उत्तरदायित्व पूर्ण पद मिला है, इसलिए इस पद के योग्य कर्त्तव्य का पालन किस प्रकार करना चाहिए! नगर सेठ, राजा और प्रजा के बीच का पुरुष होता है। उस पर राजा भी विश्वास करता है और प्रजा भी विश्वास करती है। उसे, राजा और प्रजा दोनों के लिए इस बात का ध्यान रखना होता है, कि इनका अहित न हो। नगर सेठ का कर्त्तव्य है कि वह प्रजा का भी हित करे, और राज्यव्यवस्था की भी रक्षा करे। न तो राजा द्वारा प्रजा पर अन्याय अत्याचार ही होना चाहिए, न प्रजा द्वारा राज्यव्यवस्था ही भंग होनी चाहिए। अधिकार का सदुपयोग करना, पद या सम्पत्ति पाकर गर्व न करना, और अपने कर्त्तव्य का पालन करना बहुत ही कठिन है। मुझे नगर सेठ का पद और इस पद के योग्य जो अधिकार मिला है, उसके उत्तरदायित्व को यदि मैंने न निभाया, तो मैं धिक्कार का पात्र होऊँगा। मुझे ऐसा कौनसा कार्य करना चाहिए, जिससे नगर सेठ के कर्त्तव्य का भली प्रकार पालन हो!

इस विषयक विचार करने के लिए सुदर्शन, बाग में जा बैठा। विचार करते हुए उसने देखा, कि वृक्ष पर एक लता चढ़ी हुई है, उस लता में फूल आ रहे हैं, और भ्रमर तथा शहद की मक्खियाँ उन फूलों पर मंडरा कर उनका रस ले रही हैं। यह देख कर सुदर्शन इस विचार से प्रसन्न हुआ, कि यह बेल मुझे इस बात का बोध देती है, कि किस कार्य को करके मैं अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकता हूँ। यह लता, पृथ्वी से निकल कर, वृक्ष का सहारा पा के उन्नत हुई है। यह, पृथ्वी और पानी के परमाणु लेती तो है, लेकिन उन्हें अपने में ही नहीं रखती, किन्तु फूल के रूप में प्रकट करती है, और पृथ्वी की गन्ध अपने में खींच कर, फूल में रखती है। उन फूलों को बेल भी स्वयं के लिए नहीं रखती और जिस वृक्ष के सहारे बेल उन्नत हुई है, वह वृक्ष भी उन फूलों को अपने अधिकार में नहीं रखता। वृक्ष, यह नहीं कहता, कि लता ने मेरा सहारा लिया है, इसलिए फूलों पर मेरा अधिकार है। जिसका फूल है उस लता ने, और जिसका सहारा लेकर लता बढ़ी है उस वृक्ष ने फूलों को शहद की मक्खियों के लिए छोड़ रखा है। वे दोनों, शहद को मक्खियों को आमन्त्रित करके कहते हैं, कि—अय शहद की मक्खियो! तुम आओ और इन फूलों का रस लो। लेकिन तुम फूलों का रस लेजा कर खराब मत करना, किन्तु उससे शहद बनाना। जब मेरे फूलों का उपयोग हो, तभी मेरी यह ऋद्धि सफल है।

लता पर से यह विचार करके, सुदर्शन आगे सोचने लगा, कि यह लता तो प्राप्त सम्पत्ति का इस प्रकार सदुपयोग करती है, लेकिन मनुष्य प्राप्त सम्पत्ति का किस प्रकार दुरुपयोग करते हैं! जो सम्पत्ति और किसी को भी प्राप्त नहीं है, वह सम्पत्ति हम मनुष्यों को प्राप्त है। फिर भी हम उसका सदुपयोग न करें, किन्तु दुरुपयोग करें, तो यह हमारे लिए अवश्य ही धिक्कार के योग्य बात है। हम मनुष्यों को, इस लता से शिक्षा लेनी चाहिए। दूसरे लोग लता से मिलनेवाली शिक्षा को ध्यान में लें या न लें, लेकिन मुझे तो इसकी शिक्षा अवश्य ही अपनानी चाहिए। मेरी शोभा तभी है, जब इस लता का गुण मेरे में भी आवे। मुझे, पैतृक-सम्पत्ति भी प्राप्त हुई है, और राजा तथा प्रजा ने मिलकर 'नगरसेठ' पद भी दिया है। इसलिए मुझे उचित है, कि मैं दूसरों से जो कुछ लूँ, उसको स्वयं के लिए ही न रखूँ, और उसका दुरुपयोग न करूँ; किन्तु जिस प्रकार लता प्राप्त सम्पत्ति को फूल के रूप में विकसित करती है, और उसका रस शहद बनाने के लिए मक्खियों को देकर अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग करती है, उसी तरह मैं भी अपनी सम्पत्ति उन लोगों को दूँ जो शहद बनाने की तरह अच्छे कार्य करते हैं। मुझे, राजसत्ता या 'नगरसेठ' पद का अधिकार मिला है। मैं इसके सहारे से अपनी शक्ति विकसित करूँगा, और शक्ति का लाभ सज्जनों को दूँगा।

इस प्रकार लता का कार्य देखकर, सुदर्शन ने अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लिया। निश्चित कर्त्तव्य के अनुसार ही, वह कार्य भी करने लगा। उसने, राजसत्ता के सहारे व्यापार-व्यवसाय आदि की ऐसी व्यवस्था की, कि जिससे नगर में कोई व्यक्ति निरुद्यमी न रहा। सब लोग धन्दे से लग कर कमाने खाने लगे, और सुदर्शन की प्रशन्सा करके उसके लिए शुभकामना करने लगे।

सांसारिक और व्यावहारिक कार्य करने के साथ ही, पत्नी सहित सुदर्शन, धर्मकार्य भी बराबर और नियमित रूप से करता रहता। वह, आत्म कल्याण में लगे हुए अपने माता-पिता की भी साल सम्हाल रखता, और उन्हें धार्मिक सहायता देता रहता। समय पर सुदर्शन के माता पिता काल धर्म को प्राप्त हुए। सुदर्शन ने, उनके मरणकाल में धार्मिक साहाय्य द्वारा उनका मरण सुधारा, और फिर उनके शव की योग्य रीति से अन्त्येष्टि की।

जिस प्रकार वृक्ष सभी को शान्ति देता है, जो उसका अपकार करता है उसका भी वह उपकार ही करता है उसी प्रकार सुदर्शन भी सब को शान्ति देने वाला सिद्ध हुआ। प्रजा, राजा और देशी विदेशी, सभी लोग उस से प्रसन्न थे। चारों ओर उसकी बड़ाई होती थी। सब लोग जिनदास को धन्य कह कर कहते कि उनने हमारी छाया के लिए सुदर्शन रूप कल्प वृक्ष दिया है।

८

कपिला के कपटजाल में

एक एव पदार्थस्तु, त्रिधा भवति वीक्षितः ।
कुणपः कामिनी मांसं, योगिभिः कामिभिः श्वभिः ॥

अर्थात्—एक ही वस्तु, तीन तरह से देखी जाती है। जिसे योगी लोग अतिनिन्दित पिन्ड रूप से देखते हैं, उसे ही कामी लोग कामिनी रूप से देखते हैं, और उसे ही कुत्ते अपने भक्ष्य-मांस के रूप में देखते हैं।

संसार के सब लोग, एक ही रुचि, स्वभाव और प्रकृति के नहीं होते। प्रत्येक व्यक्ति की प्रकृति भिन्न होती है, रुचि भी

भिन्न होती है, और स्वभाव भी भिन्न होता है। इस कारण एक ही वस्तु अथवा एक ही व्यक्ति, भिन्न भिन्न लोगों के समीप भिन्न-भिन्न उद्देश्यों की पूर्ति का साधन माना जाता है। एक ही वस्तु अथवा व्यक्ति—को, लोग अपने स्वभाव, प्रकृति और रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न दृष्टि से देखते हैं; तथा ऐसा होना स्वाभाविक भी है। एक व्यक्ति या वस्तु को, सब लोग समान देखें या मानें, यह सम्भव भी नहीं है। यदि ऐसा हो, यानी प्रत्येक व्यक्ति वा वस्तु को सभी लोग एक ही दृष्टि से देखें, तब तो संसार में किसी प्रकार का झगड़ा ही न रहे। परन्तु ऐसा न तो कभी हुआ है, न होता है, न होगा ही। संसार के किसी भी भाग का और किसी भी समय का इतिहास देखिये, तो उससे यही पाया जावेगा, कि ऐसा कभी नहीं हुआ, और लोगों की रुचि एवं प्रकृति की भिन्नता के कारण ऐसा हो भी नहीं सकता। कृष्ण, अधिकान्श लोगों की दृष्टि में महापुरुष थे, तो कुछ लोग उन्हें अपना शत्रु भी मानते थे। पाण्डव, अधिकान्श लोगों को प्रिय थे, तो कुछ लोगों को अप्रिय भी थे। भगवान महावीर को अधिकान्श लोग तीर्थङ्कर मानते थे, तो कुछ लोग उनको ढोंगी कहने वाले और कष्ट देने वाले भी थे। इस प्रकार एक ही व्यक्ति, भिन्न-भिन्न लोगों के समीप भिन्न-भिन्न प्रकार का जान पड़ता है। एक ही व्यक्ति से, लोग अपनी भिन्न-भिन्न रुचि पूरी

करना चाहते हैं। यह बात दूसरी है कि कोई उस व्यक्ति को या उस वस्तु को बिगाड़ कर लाभ लेना चाहता है, कोई उसको सुधार कर, और कोई उसको उसी रूप में रख कर। हिंसक लोग, पशु-पक्षियों को मार कर प्रसन्न होते हैं, तो अहिंसक लोग उनकी रक्षा करके प्रसन्न होते हैं। दुराचारी लोग किसी स्त्री का सतीत्व नष्ट करके प्रसन्न होते हैं, तो सदाचारी लोग किसी दुराचारिणी को सत्पथ पर लगा कर प्रसन्न होते हैं; अथवा किसी सती स्त्री को देख कर उसके सतीत्व के लिए प्रसन्न होते हैं। किसी सुन्दरी को देख कर कोई तो उसके लिए दुर्भावना लाता है, और कोई उसकी पुण्य कमाई का विचार करके प्रसन्न होता है। इस प्रकार लोग, प्रत्येक व्यक्ति या वस्तु को अपनी रुचि के अनुसार ही ग्रहण करना चाहते हैं, और इसका कारण है उनकी प्रकृति, अथवा उनका स्वभाव।

सुदर्शन के लिए भी ऐसा ही हुआ। सुदर्शन सेठ, सदाचारी था। सब लोग उसके सदाचार की प्रशन्सा करते थे, तथा गृहस्थी के लिए उसका सदाचार आदर्श मानते थे। लेकिन कपिला ने उसे भी अपनी दुराचार की रुचि पूर्ण करने का एक साधन बनाना चाहा, और इसके लिए ऐसा जाल रचा, कि जिसमें फँसने के पश्चात् पुरुष के लिए सदाचार का पालन करना कठिन है। परन्तु जिस तरह कपिला अपने विचार की पक्की थी; उसी तरह सुदर्शन

भी अपने विचार का पक्का था। वह दुराचार की रुचि पूर्ण करना चाहती थी, तो सुदर्शन अपने सदाचार को नहीं त्यागना चाहता था। अपने अपने विचारों को पूर्ण करने या उनकी रक्षा के लिए इन दोनों ने क्या-क्या किया, कैसी कैसी चालें चली, और अन्त में किसकी किस तरह विजय हुई, इस प्रकरण में यही देखना है।

चम्पापुरी में ही कपिल नाम का एक ब्राह्मण रहता था। वह, वेद वेदाङ्ग, न्याय, दर्शन आदि का विद्वान भी था, और राजपुरोहित होने के कारण प्रतिष्ठित एवं धनवान भी था। साथ ही, सज्जन तथा सदाचारी भी था। वह इस बात का ध्यान रखता था, कि मेरे द्वारा किसी भी समय कोई अनुचित कार्य न हो जावे। कपिल की पत्नी का नाम कपिला था। कपिला, सुन्दरी थी। उस को अपनी सुन्दरता का गर्व था। यद्यपि वह थी तो कपिल की पत्नी लेकिन कपिल और कपिला के विचारों में बहुत वैपरीत्य था। कपिल का विचार तो यह रहता था, कि मैं सदाचारी रहूँ, मेरी सम्पदा का उपयोग सद्कार्य में हो, और मेरे द्वारा किसी भी समय कोई बुरा कार्य न हो। परन्तु कपिला का विचार यह रहता था, कि मनुष्य शरीर सुन्दरता और धन-सम्पत्ति पाने का लाभ, अच्छे-अच्छे भोगोपभोग भोगना ही है। इस प्रकार दोनों के विचारों में वैषम्य था।

सुदर्शन की प्रशन्सा सुन कर कपिल ने यह निर्णय किया कि

मेरे लिए सुदर्शन मित्रता करने के योग्य है। मेरे और सुदर्शन के स्वभाव में भी साम्य है, और अवस्था में भी साम्य है। इसी प्रकार, दूसरी बातों में भी समता है। नीति में कहा है कि "समाने शोभते प्रीतिः" वैर, विवाह और प्रीति समानता वाले से ही अच्छी होती है। सुदर्शन, प्रत्येक दृष्टि से मेरी समानता का है, और मैं भी प्रत्येक दृष्टि से सुदर्शन की समानता का हूँ। इसलिए मेरी और सुदर्शन की मित्रता उपयुक्त होगी। इस प्रकार विचार कर कपिल ने, सुदर्शन के पास पारस्परिक मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने का प्रस्ताव भेजा। कपिल की तरह सुदर्शन ने भी यह निश्चय किया, कि कपिल से मित्रता करना अनुपयुक्त नहीं है। यह निश्चय करके, उसने कपिल द्वारा भेजे प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

कपिल और सुदर्शन, मित्र बन गये। मित्र भी नाम मात्र के नहीं बने थे, किन्तु सच्चे मित्र बने थे। दोनों में से कोई भी किसी प्रकार की स्वार्थ-भावना नहीं रखता था। दोनों ही में, निष्कपट और पूर्ण प्रेम था। आज के लोग तो स्वार्थ के लिए मित्रता करते हैं, और अपना स्वार्थ पूरा करने के लिए, मित्र के साथ विश्वासघात तक कर डालते हैं। ऐसा करनेवाले लोग, मित्र नहीं, मित्र के रूप में शत्रु हैं। सच्चे मित्रों का लक्षण क्या है, इसके लिए भर्तृहरि ने कहा है—

पापान्निवारयति योजयते हिताय

गुह्यं च गूहति गुणान्प्रकटी करोति ।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले
सन्मित्र लक्षण मिदं प्रवदन्ति सन्तः ॥

अर्थात्—सच्चे मित्र के लक्षण बताते हुए सन्त लोग कहते हैं, कि जो पाप-कार्य से रोकता है, अच्छे हितकारी कार्य में लगाता है, गुप्त बातों को छिपाता है, गुणों को प्रकट करता है, विपद्काल में साथ नहीं छोडता, और समय पर सहायता देता है वही सन्मित्र है।

सुदर्शन और कपिल की मैत्री, ऐसी ही थी। वे एक आत्मा के दो शरीर की भांति थे। दोनों ही, एक दूसरे का हित तथा कल्याण चाहते थे। अपने-अपने कार्य से छुट्टी पाकर, वे एक दूसरे के यहाँ आया जाया करते, और धार्मिक व्यवहारिक तथा आमोद-प्रमोद की बातें किया करते। एक को देखे बिना, दूसरे को चैन नहीं मिलता था।

कपिल, सुदर्शन के यहाँ आया करता और सुदर्शन, कपिल के यहाँ जाया करता। इस आवागमन के कारण, कपिल की पत्नी कपिला ने सुदर्शन को देखा। सुदर्शन को बार-बार देखने से, उसके हृदय में सुदर्शन के प्रति अनुराग हुआ। वह सोचने लगी, कि ये मेरे पति के मित्र सुदर्शन सेठ कितने सुन्दर हैं! इस तरह का सुन्दर, किसी और को मैंने अब तक नहीं देखा। सुन्दर, होने के साथ ही, ये युवक भी हैं। जिस स्त्री को इनका सहवास प्राप्त है,

वह वास्तव में सद्भागिन है। मेरे पति की तो इनसे मित्रता है ही, मुझे भी इन से मित्रता करके इनके साथ के सहवास संभोग का आनन्द प्राप्त करना चाहिए। मैं सुन्दरी हूँ, बुद्धिमती हूँ और त्रियाचरित्र-कुशल भी हूँ। मैं यदि इन से एक बार गुप्त मैत्री कर लूँगी, तो फिर तो ये मेरे और मैं इनकी हो ही जाऊँगी। ये, मेरे यहाँ आते जाते रहते हैं, इसलिए मेरी और इनकी मैत्री का किसी को पता भी न लगेगा; तथा पति को भी किसी प्रकार का सन्देह न होगा।

दुराचारिणी स्त्री अथवा दुराचारी पुरुष, पर-पुरुष और पर-स्त्री की ताक में ही रहा करते हैं। उनको सुन्दर-पति अथवा सुन्दर-पत्नी प्राप्त हो, और दूसरी सुख सामग्री भी उनके यहाँ हो फिर भी उनका मन इस ओर से अस्थिर ही रहता है। वे स्वयं के पति—अथवा स्वयं की पत्नी—से असन्तुष्ट रह कर, पर-पुरुष या पर-स्त्री में ही आनन्द मानते हैं। फिर चाहे वह पर-पुरुष या पर-स्त्री, स्वयं के पति या स्वयं की पत्नी से कितनी भी खराब या कुरूपा क्यों न हो, कुल हीन क्यों न हो और उसके कारण इहलौकिक एवं पारलौकिक कितनी भी हानि क्यों न हो। स्वयं के यहाँ सब प्रकार की भोग-सामग्री होने पर भी, दुराचारिणी स्त्री या दुराचारी पुरुष, पर-पति या पर-दारा प्राप्त करने का ही प्रयत्न करते रहते हैं। इसको मोह या अज्ञान के सिवा और क्या कहा जावे! राजा भर्तृहरि की

रानी पिंगला के लिए कहा जाता है, कि उसका एक सईस के साथ अनुचित सम्बन्ध था। उस सम्बन्ध को जान कर ही, भर्तृहरि संसार से विरक्त हो गये थे, और उन्ने कहा था—

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता
साप्यऽन्य मिच्छति जनं सजनोऽन्यसक्तः।
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मांच॥

अर्थात्—मैं जिसको सदा चाहता हूँ, वह मुझे नहीं चाहती, किन्तु दूसरे पुरुष को चाहती है। जिसको वह चाहती है, उस (मेरी रानी) को दूसरा पुरुष नहीं चाहता। वह दूसरा पुरुष (ज़िसे मेरी रानी चाहती है) दूसरी ही स्त्री को चाहता है, और जिसे दूसरी स्त्री को वह चाहता है, जिससे वह प्रेम करता है, वह स्त्री मुझे चाहती है। इसलिए उस (मेरी) स्त्री को धिक्कार है, उस पुरुष को धिक्कार है, मुझको भी धिक्कार है, और उस काम को धिक्कार है, जो यह सब कुछ कराता है।

कपिला को भी, किसी प्रकार की कमी न थी। उसको पति भी प्राप्त था, और दूसरी सुख-सामग्री भी प्राप्त थी। पति, न तो अशक्त या वृद्ध था, न कुरुप था, न रोगी था, फिर भी कपिला को उससे सन्तोष नहीं हुआ, और वह सुदर्शन को चाहने लगी। उसने सुदर्शन से गुप्त प्रेम करने का अपने हृदय में निश्चय किया, लेकिन

उसके सामने यह प्रश्न था, कि सुदर्शन के सामने प्रेम-सम्बन्ध का प्रस्ताव किस तरह रखा जावे, जिस में वह अस्वीकार न कर सके। वह सोचती थी, कि सुदर्शन सदाचारी भी माना जाता है, और उसके घर में पत्नी भी है। मेरे हृदय में तो उसकी चाह है लेकिन उसको तो मेरी कोई चाह है नहीं। इसलिए उससे ऐसे समय में और इस रीति से प्रस्ताव करना चाहिये, जिसे वह अस्वीकार न कर सके।

कपिला, अपने इस विचार को कार्यान्वित करने की चिन्ता में रहा करती। कुछ दिनों के बाद, एक दिन कोई ऐसा आवश्यक कार्य आ गया, कि जिसके कारण राजा ने कपिल को अविलम्ब दूसरे गाँव जाने की आज्ञा दी। राजा की आज्ञा का पालन करने के लिए कपिल, दूसरे गाँव जाने की तय्यारी करने के लिए घर आया। उसने, आवश्यक वस्त्रादि साथ लेने की व्यवस्था करके कपिला से कहा, कि मुझे राजा ने आवश्यक कार्य के कारण अमुक ग्राम को शीघ्रातिशीघ्र जाने की आज्ञा दी है। मैं, वहाँ जा रहा हूँ। तुम सावधानी से रहना, और यदि कोई कार्य हो, तो मेरे मित्र सुदर्शन सेठ से कहना। यद्यपि अवकाश न होने के कारण मैं सुदर्शन सेठ से मिल नहीं सका हूँ फिर भी मुझे विश्वास है, कि वे तुम्हारी सूचनानुसार प्रत्येक कार्य की व्यवस्था अवश्य कर देंगे। तुम, सुदर्शन को मेरे ही स्थान पर मान कर, जो भी कार्य हो,

इसकी सूचना उन्हें देना। किसी प्रकार का संकोच न करना।

कपिल से ग्रामान्तर जाने का हाल सुनकर, कपिला मन में तो प्रसन्न हुई, फिर भी उसने त्रिया-चरित्र के अनुसार ऊपर से पतिभक्ति दिखाई, और कपिल से शीघ्र ही लौट आने का अनुरोध किया। राजा की आज्ञा पालन करने के लिए कपिल, कपिला को सान्त्वना देकर ग्रामान्तर चला गया। कपिल के चले जाने पर कपिला सोचने लगी, कि बहुत दिनों से मेरे हृदय में जो अभिलाषा है, अब उसके पूर्ण होने का अवसर आया है। मैं, ऐसे अवसर की प्रतीक्षा में ही थी। सौभाग्य से पति सुदर्शन से बिना मिले ही जा रहे हैं, और पति ने यह भी कह दिया है, कि सुदर्शन सेठ को मेरे ही स्थान पर मानना। ऐसा कह कर पति ने, मुझे सुदर्शन के साथ वही व्यवहार करने की आज्ञा भी दे दी है, जो व्यवहार मेरा पति के साथ है।

लोग, प्रत्येक बात का अर्थ अपनी भावना के अनुसार ही लगाया करते हैं। चाहे धार्मिक बात ही हो, उस बात का अर्थ भी ऐसा निकाला जाता है, जिससे अपनी भावना का पोषण हो। यह बात अवश्य है, कि अच्छी भावना होने पर बात का अर्थ अच्छा लगाया जावे, और बुरी भावना होने पर बुरा अर्थ लगाया जावे, लेकिन बात का अर्थ अपनी भावना के अनुसार ही लगाया जाता है। कपिल ने कपिला से जो कुछ कहा था, उस में इस बात की स्वीकृति

न थी, कि कपिला सुदर्शन के साथ दुराचार करे, परन्तु कपिला ने कपिल की बात से यही अर्थ निकाला। इसका कारण यह था, कि कपिला की भावना ही खराब थी।

'आज मैं सुदर्शन से अवश्य ही गुप्त मैत्री करके, उनके साथ के सहवास सम्भोग का आनन्द लूँगी' ऐसा निश्चय करके कपिला ने अपने शयनागार को इस प्रकार सजाया, कि जिसमें पहुँचते ही काम जागृत हो उठे। फिर वह स्वयं भी वस्त्राभूषण और अंजन मंजन से भली प्रकार सजी। यह करके कपिला, त्रिया-चरित्र के सहारे घबराई-सी बन कर, सुदर्शन के पास गई। मित्र-पत्नी को आई देख कर, सुदर्शन ने उसको—माता के समान मान—आदर दिया। फिर उसने कपिला से पूछा, कि आज ऐसी क्या बात है, जो आप घबराई हुई हैं, और आपको स्वयं को यहाँ आने का कष्ट उठाना पड़ा है ? सुदर्शन के प्रश्न के उत्तर में, कपिला रोती शकल बना कर आँसू गिराती हुई कहने लगी, कि मैं आपको बुलाने के लिए आई हूँ। आप, मेरे साथ शीघ्र ही घर को चलिये। विलम्ब मत करिये।

सुदर्शन—क्यों क्यों ? कुशल तो है न ?

कपिला—कुछ कहा नहीं जाता ! आपके मित्र के शरीर में भयंकर शूल चल रही है। उपाय भी किया, परन्तु कोई परिणाम न निकला। इस समय वे, आप ही के नाम की धुन लगाये

हुए हैं, इसलिए आप जल्दी चलिये, जिसमें उन्हें सन्तोष हो।

कपिला का कथन सुन कर, सुदर्शन घबराया। उसने कपिला से कहा, कि ऐसे समय में आप उनके पास से क्यों चली आई? किसी सेवक को भेज देतीं, तो क्या मैं न चला आता? कपिला ने रो कर उत्तर दिया, कि योगायोग से इस समय कोई दूसरा उपस्थित ही न था। कोई दवा लेने गया है, और कोई कहीं गया है। इसी कारण मुझे आना पड़ा। अब आप जल्दी चल कर उनका उपचार करिये, नहीं तो कोई अनर्थ हो जावेगा!

कपिला की घबराहट देख कर, और उसका कथन सुन कर, सुदर्शन से न रहा गया। वह, अपने रुग्ण मित्र की सेवा करने के लिए उत्सुक हो उठा। उसने कपिला से कहा, कि—आप चलिये, मैं आपके पीछे-पीछे अविलम्ब आता हूँ। कपिला ने उत्तर दिया, कि—नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। आपके मित्र की आज्ञा है, कि मैं आपको साथ लेकर ही आऊँ। इसलिए आप मेरे साथ ही चलिये।

कपिला जो कुछ कह रह थी, सुदर्शन उसको ठीक ही मान रहा था। वह नहीं जानता था; कि कपिला झूठ बोल रही है, और मुझे अपने कपटजाल में फँसाना चाहती है। इसलिए वह कपिल के यहाँ जाने के लिए उठ पड़ा, और कपिला के आगे आगे कपिल के घर को चला। आगे जाता हुआ सुदर्शन तो मित्र की

बीमारी के विषय में विचार करता जाता था, कि मित्र को मैं किस प्रकार सन्तोष दे सकूँगा, और उसका उपचार किस तरह किसके द्वारा कराऊँगा आदि। लेकिन सुदर्शन के पीछे जाती हुई कपिला इस बात के लिए अपने मन में अभिमान करती जाती थी, कि स्त्री होकर भी मैंने इन पुरुष को ठग लिया, तथा अपने कपटजाल में फँसा लिया है; और अभी थोड़ी देर में ही मैं इनके साथ के सहवास सम्भोग का आनन्द लूँगी। लोग, धर्म की दुहाई देकर कहते हैं, कि कपट न करना चाहिए, कपट करना पाप है आदि, लेकिन मेरा तो यह अनुभव है, कि छल कपट करने पर ही जीवन को आनन्द मिल सकता है।

कपिला के आगे आगे सुदर्शन, कपिल के घर आया। घर पर पहुँच कर सुदर्शन ने कपिला से पूछा कि मेरे मित्र कहाँ पर हैं? कपिला ने वैसी ही आकृति बना कर कहा, कि उनकी तबियत अधिक खराब है, इसलिए वे बाहर कैसे रह सकते हैं! वे, भीतर हैं। आप, भीतर उनके शयनागार में चलिये।

यह कह कर कपिला, सुदर्शन के आगे हो गई। सुदर्शन, उसके पीछे–पीछे घर में गया। घर में पहुँच कर कपिला ने सुदर्शन से कहा, कि— आप चलिये, में आती हूँ। यह कह कर कपिला, सुदर्शन के पीछे हो गई। सुदर्शन, घर में आगे की ओर बढ़ा। इतने ही में कपिला ने घर का द्वार बन्द कर दिया, और जल्दी

से चल कर फिर सुदर्शन के आगे हो गई। सुदर्शन को कपिला के छल का किंचित् भी पता न था, न हृदय में किसी प्रकार का सन्देह ही था। जब कपिला ने किंवाड़ बन्द किये, तब सुदर्शन के मन में यह प्रश्न तो हुआ, कि इसने किंवाड़ क्यों बन्द किये हैं, लेकिन इस प्रश्न का समाधान उसने यह विचारकर कर लिया कि द्वार पर कोई नहीं है, घर सूना है, इसीलिए इसने किंवाड़ बन्द किये होंगे।

सुदर्शन को साथ लिये हुई कपिला, अपने शयनागार की ओर चली। मार्ग में कभी तो शरीर का कोई अंग खोलती थी और कभी कोई अंग खोलती थी। उसने शयनागार को पहले ही कामोत्तेजक रीति से सजा रखा था। वहाँ पहुँचते ही वह, सुदर्शन की ओर देख मुसकराती हुई कहने लगी, कि—आप इस पलंग पर बैठिये, और एक नवीन मैत्री सम्बन्ध जोड़िये। इस प्रकार कह कर वह, हंसती और हाथ हिला-हिला कर हाव भाव दिखाती हुई सुदर्शन से कहने लगी, कि—आप किसी प्रकार का भय या संकोच मत करिये। यह एकान्त स्थान है और सौभाग्य से आपके मित्र भी यहाँ नहीं हैं, किन्तु ग्रामान्तार गये हैं। मैं बहुत दिनों से यह सोचती थी, कि पति के साथ तो आप की मैत्री है ही, मैं भी आपके साथ मैत्री करूँ, लेकिन इसके लिए उपयुक्त अवसर ही नहीं मिलता था। सद्भाग्य से आज ऐसा अवसर मिला है। इसीलिए मैं,

पति की बीमारी के बहाने आप को यहाँ बुला लाई हूँ। अब आप मुझ से प्रेमपूर्ण मैत्री करके सुख भोग करिये। 'तुम सम पुरुष मो सम नारी' कहावत के अनुसार, मेरी और आपकी जोड़ी भी अच्छी है। मैं आपको सर्वस्व समर्पण करने के लिए तय्यार हूँ, लेकिन आप से एक यह प्रार्थना कर देना उचित और आवश्यक समझती हूँ, कि अपना यह प्रेम सम्बन्ध किसी को ज्ञात न होने पावे। वैसे तो आप स्वयं भी प्रतिष्ठत एवं बुद्धिमान हैं, इसलिए ऐसा कदापि न होने देंगे, भिर भी भूल से इस विषय में किसी के सामने बात न निकल जावे, इसीलिए मैंने आपको सावधान किया है।

सुदर्शन, वैसे तो चतुर था, फिर भी कपिल से मित्रता होने के कारण वह कपिला के साथ चला आया था। गृह के भीतर आने तक तो उसके हृदय में किसी प्रकार का सन्देह न था, लेकिन कपिला ने जब किंवाड़ बन्द किये, तब उसके हृदय में कुछ सन्देह हुआ था, जिसको उसने दबा दिया था। परन्तु जब कपिला उसको अपने शयनागार में ले गई, और सुदर्शन ने वहाँ कपिल को न देखा तब उसके हृदय का पूर्वोत्पन्न सन्देह बढ़ गया। वह समझ गया कि मेरे साथ छल किया गया है। सुदर्शन इस प्रकार सोच समझ रहा था, इतने में ही कपिला ने हाव-भाव और बातचीत द्वारा अपना वास्तविक रूप दिखाय ही दिया, और उद्देश्य भी प्रगट कर दिया।

सुदर्शन सोचने लगा, कि इसने तो मेरे को अपने जाल में पूरी तरह फँसा लिया है। मैंने, इसके कथन पर विश्वास करके भूल की है। इस समय मुझे यह नीति वाक्य याद आता है, कि—

नदीनां च नखीनां च, शृंगिणां शस्त्रपाणिनाम् ।
विश्वासो नैव कर्तव्यः, स्त्रीषु राजकुलेषु च ॥

अर्थात्—नदियों का, नखवाले जानवरों का, सींगवाले जानवरों का, शस्त्रधारी का, स्त्री का, और राजकुलवालों का विश्वास कदापि न करना चाहिए

नीतिकारों का यह कथन ठीक ही है, लेकिन अब इसका स्मरण आना व्यर्थ है। मैं इस नीति वाक्य को भूल कर इस पर विश्वास कर बैठा, इसीसे इस के जाल में फँस गया। अब मुझे किसी न किसी उपाय द्वारा यहाँ से निकल जाना चाहिये। मैं, यहाँ से भाग कर भी निकल सकता हूँ, परन्तु ऐसा करने में अनेक आपत्तियाँ दिखाई पड़ती हैं। यह, स्त्री है। इसकी कामना पूर्ण न होने से, यह क्रुद्ध होगी, और उस दशा में सम्भव है कि यह मुझ पर दुराचार का आरोप लगा दे। साथ ही जब मैं यहाँ से भागता हुआ निकलूँगा, तब देखने वाले को भी सन्देह हो सकता है। इसलिए भाग कर जाना ठीक नहीं है। यदि मैं इस विषय में इसको उपदेश देने लगूँ तो मेरा यह कार्य भी व्यर्थ होगा। यह इस समय पूरी तरह मोह में डूबी हुई है। इसलिये इसके समीप मेरा उपदेश उसी

प्रकार व्यर्थ होगा, जिस प्रकार भैंस के सींग पर मच्छर का डंक व्यर्थ होता है। नीतिकारों ने कहा भी है, कि—

अन्तःसारविहीनाना, मुपदेशो न जायते।
मलयाचल संगसी, न्नवेणु श्चन्दनायते ॥

अर्थात्—जिसका हृदय सारविहीन है, गम्भीरता रहित है, उसको उपदेश देना व्यर्थ है। मलयाचल के संसर्ग से दूसरे वृक्ष सुगंधित बन जाते हैं लेकिन बाँस तो वैसा ही रहता है। क्योंकि बाँस का हृदय सार-विहीन है।

इसके अनुसार इस समय इसको उपदेश देना व्यर्थ है। इसलिए यहाँ से किसी ऐसे उपाय से निकलना चाहिये, जिससे यह मेरे पर किसी प्रकार का अपवाद भी न लगा सके, और मैं अपने शील की भी रक्षा कर सकूं।

सुदर्शन, युवक था और सुन्दर भी था। दूसरी ओर कपिला भी, सुन्दरी और युवती थी। उसने अपने शरीर को इस तरह सजा भी रखा था, और वह हाव भाव भी ऐसे दिखाती थी, कि जिससे पुरुष उस पर मुग्ध हो सके! इन सब बातों के साथ ही, स्थान भी एकान्त था, तथा इस प्रकार सजा हुआ था, कि जहाँ जाते ही स्त्री या पुरुष में काम जागृत हो उठे। इन सब कारणों के प्रस्तुत होते हुए अपने शील की रक्षा करना, समुद्र को हाथों के सहारे पार करने या अग्नि को पी जाने से भी अधिक

कठिन काम है, लेकिन सुदर्शन उस समय भी अपने शील की रक्षा करने का उपाय सोच रहा है। उसकी यह प्रतिज्ञा है, कि प्राण चाहे जावें, परन्तु पर स्त्री गमन कदापि न करूँगा। वह, अपनी इस प्रतिज्ञा पर दृढ़ है, इसी कारण कपिला के जाल से निकलने का मार्ग सोच रहा है।

अन्त में सुदर्शन ने, कपिला के षड्यन्त्र से निकलने का उपाय सोच लिया। उसने निश्चय किया, कि किस तरह के कपट से इसके जाल से निकलना उचित है। कपटजाल से निकलने मात्र के लिये कपटपूर्ण उपाय का सहारा लेना, भयंकर अपराध नहीं है। शील भंग करने की अपेक्षा, शील की रक्षा करने के लिए कपट का सहारा लेना, कम पाप है।

इस प्रकार निश्चय करके सुदर्शन, कपिला की ओर प्रेमभरी दृष्टि से देख कर मुसकराता हुआ कहने लगा कि—वास्तव में मेरे को जो सुयोग प्राप्त हुआ है, वैसा सुयोग प्रयत्न करने पर भी प्राप्त नहीं हो सकता। ऐसे स्थान पर तुम ऐसी सुन्दरी का प्राप्त होना और प्रेम-भिक्षा करना, कम सौभाग्य की बात नहीं है। तुम, मुझ से धनादि की लालसा से प्रेम करती होओ ऐसा भी नहीं है, न यह है, कि तुम किसी पुरुष को पसन्द न होओ। तुम ऐसी सुरूपा युवती को प्राप्त करने के लिए, लोग लालायित रहते हैं और प्रयत्न करते रहते हैं, फिर भी ऐसा सुयोग प्राप्त

नहीं होता, जैसा सुयोग मुझे प्राप्त हुआ है। मैं, युवक और सुन्दर भी हूँ, लेकिन मेरा दुर्भाग्य है, कि मेरी यह युवावस्था और सुन्दरता गन्धरहित टेसू के फूल के समान व्यर्थ है, तथा मैं इस अवसर का लाभ लेने में असमर्थ हूँ। अन्यथा, कौन बुद्धिमान ऐसे सुयोग को जाने दे सकता है।

सुदर्शन का उत्तर सुन कर, कपिला को कुछ निराशा तो हुई, फिर भी उसने सुदर्शन से पूछा कि—ऐसा क्या कारण है, जिससे आप इच्छा होते हुए भी इस अवसर का लाभ नहीं ले सकते ?

सुदर्शन—यद्यपि वह कारण गुप्त है, फिर भी यदि तुम शपथपूर्वक यह प्रतिज्ञा करो, कि मेरा बताया हुआ गुप्त कारण किसी पर प्रकट न करोगी, तो मैं वह कारण तुम्हारे सामने प्रकट कर सकता हूँ। मैं जिस कारण से इस अवसर का लाभ लेने में असमर्थ हूँ, वह कारण किसी को भी मालूम नहीं है, और उसके प्रकट हो जाने पर मेरी प्रतिष्ठा को बहुत धक्का लगेगा। मैं, किसी को मुँह बताने योग्य भी न रहूँगा। मैं भी तुम्हारे सामने शपथपूर्वक यह प्रतिज्ञा करने को तय्यार हूँ, कि यह आज की तुम्हारी बात, किसी भी रूप में और किसी के भी सामने कदापि प्रकट न करूँगा।

सुदर्शन ने सोचा, कि यह स्त्री है। स्त्रियों में साहस भी बहुत

होता है, और भय भी बहुत होता है। यदि इसको आज की घटना प्रकट होने का डर रहा, तो सम्भव है, कि यह कोई दूसरा प्रपंच रचे। इसलिए इसको आज की बात प्रकट न होने का विश्वास दिला कर, इसका भय मिटा देना चाहिए। इस विचार के कारण ही उसने कपिला से यह कहा, कि मैं आज की बात किसी के सामने प्रकट न करने के लिए शपथ खाने को तय्यार हूँ।

सुदर्शन के कथन के उत्तर में कपिला ने कहा, कि—इसमें शपथ खाने या प्रतिज्ञा करने की कौन-सी बात है। आप, वह कारण प्रकट कर दीजिये। सम्भव है, कि मैं उस कारण को अभी ही निर्मूल कर सकूँ।

सुदर्शन—यदि तुम उस कारण को मिटा सकी, तब तो बहुत ही अच्छा है। यह बात तो मेरे लिए भी प्रसन्नता की होगी। लेकिन यदि न मिटा सकीं, तो उस दशा के लिए तुम शपथपूर्वक यह प्रतिज्ञा करो, कि मैं जो कारण बताऊँ, उसे तुम किसी के सामने प्रकट न करोगी। तुम्हारी ही तरह मैं भी सपथ-पूर्वक यह प्रतिज्ञा करने के लिए तय्यार हूँ, कि आज की घटना किसी से प्रकट न करूँगा।

कपिला—आप मेरा विश्वास रखिये, मैं आपकी बात किसी पर भी प्रकट न करूँगी। इस पर भी यदि आप मुझ से सपथ-पूर्वक प्रतिज्ञा ही कराना चाहते हैं, तो लो, मैं धर्म की सपथ

खाकर यह प्रतिज्ञा करती हूँ, कि आपकी कही हुई बात मैं अपने हृदय में ही रखूंगी, किसी पर भी प्रकट न करूँगी।

सुदर्शन – मैं भी देव, गुरु, धर्म की शपथ खाकर यह प्रतिज्ञा करता हूँ, कि मैं आज की बात किसी पर भी प्रकट न करूँगा।

कपिला—अच्छा अब तो प्रतिज्ञा हो चुकी, इसलिए अब आप वह कारण प्रकट करिये।

सुदर्शन—प्रतिज्ञा हो जाने पर भी, वह बात प्रकट करने में मुझे लज्जा होती है; इसलिए यही कहता हूँ, कि जैसे किसी आदमी के सामने उत्तमोत्तम भोजन तय्यार है, फिर भी रोग होने के कारण वह आदमी सामने रखा हुआ भोजन नहीं कर सकता, वही दशा मेरी भी समझिये। बस इतने में ही सब बात समझ लो।

कपिला—स्पष्ट कहो, कि क्या बात है। जब मैं शपथपूर्वक प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ, तब संकोच या लज्जा की क्या आवश्यकता है?

सुदर्शन ने नीची गर्दन करके कहा, कि मैं पुरुषत्वहीन हूँ। सुदर्शन के मुंह से यह सुनते ही कपिला को सुदर्शन पर उतनी ही घृणा हुई, जितना वह सुदर्शन से प्रेम करती थी। उसके मुंह से सुदर्शन के लिए यही निकला, कि—जा! निकल यहाँ से! सुदर्शन तो यह चाहता ही था, इसलिए

वह कपिला के यहाँ से निकल कर अपने घर आया। उस समय उसके हृदय में वैसी ही प्रसन्नता थी, जैसी प्रसन्नता व्याघ्री के मुख से छूटे हुए मृगशिशु को, स्वयं की माता से मिलने पर होती है। वह सोचता था कि परमात्मा की कृपा से आज मेरे शील की रक्षा हुई, अन्यथा मैं ऐसे जाल में फँस गया था, कि जहाँ से शील बचा कर निकलना बहुत कठिन था। मैंने उससे कहा कि मैं पुरुषत्व हीन हूँ; यह मेरा कथन एक प्रकार से तो झूठ या कपट है, लेकिन दूसरी तरह से ठीक भी है। मेरी प्रतिज्ञा है, कि मेरे लिए मनोरमा के सिवा समस्त स्त्रियाँ माता के समान हैं। साथ ही, नीतिकार मित्रपत्नी को भी माता कहते हैं, और अपनी माता के लिए प्रत्येक पुरुष पुरुषत्वहीन ही है।

इस प्रकार सुदर्शन कपिला के कपटजाल से छूट कर बहुत प्रसन्न हुआ। साथ ही उसको यह विचार हुआ, कि आज जो घटना घटी है उसके लिए माता कपिला को दोष देना व्यर्थ है! वास्तव में, मैं स्वयं ही दोषी हूँ। एक तो मेरा शरीर ऐसा है, कि जिस पर कपिला लुभा गई। दूसरे, मैंने पर घर जाने का त्याग नहीं किया। यदि मेरा शरीर सुन्दर होने पर भी पर घर का त्यागी होता, तो आज इस घटना का अवसर ही न आता। शास्त्र में, श्रावक के लिए पर घर-प्रवेश का निषेध इसीलिए किया गया है, कि श्रावक को कभी इस प्रकार की घटना में पड़ कर शील भंग का अवसर न

आवे। मैं भी अब से यही निश्चय करता हूँ, कि राजसभा के सिवा और किसी के घर न जाऊँगा।

सुदर्शन ने तो घर पहुँच कर–अनेक विचारों के पश्चात् पर-घर जाने का त्याग किया, लेकिन सुदर्शन के जाने के पश्चात् कपिला सोचने लगी, कि यह सेठ देखने में तो इतना सुन्दर है, परन्तु जब यह नपुंसक है, तब यह सुन्दरता व्यर्थ ही है। इसकी स्त्री सती कहलाती है, लेकिन उसके तो पुत्र हैं, और यह सेठ नपुंसक है, ऐसी दशा में वह सती कैसी? पति के नपुंसक होने पर भी जब उसके पुत्र हैं, तथा होते हैं तब अवश्य ही दुराचारिणी है। सती नहीं है। आज मैं इस सेठ को जिस उद्देश्य से लायी थी मेरा वह उद्देश्य तो पूरा नहीं हुआ, लेकिन मुझे यह भेद तो मालूम हो ही गया, कि इस की सती कहलाने वाली स्त्री भी मेरी ही तरह की है। रानी के विषय में तो मैं जानती ही थी कि वह कैसी है, आज सेठानी के विषय में भी मालूम हो गया। वास्तव में उस बेचारी का अपराध भी क्या है! जब उसका पति ही नपुंसक है, तब वह सती कैसे रह सकती है। वह सती नहीं है फिर भी जिस तरह मैं ऊपर से सती बनी हुई हूँ उसी तरह वह भी सती बनी हुई है। यह भेद, आज इस सेठ को लाने से अवश्य मालूम हो गया।

कपिल, घर आया। कपिला को सुदर्शन की ओर से इस बात का भय न था, कि वह कपिल के सामने कोई भेद प्रकट करेगा।

वह सोचती थी, कि सुदर्शन ने मेरे सामने शपथ खाई है, इसलिए भी वह पति से कोई बात प्रकट न करेगा; और उसको यह भय भी है, कि यदि मैं कोई बात प्रकट करूँगा, तो मेरी नपुंसकता का भेद खुल जावेगा। इन कारणों से, वह पति से कोई बात प्रकट न करेगा। इस प्रकार के विश्वास के कारण, उसने कपिल से सुदर्शन के विषय में कोई बात नहीं की, किन्तु इस प्रकार ही चुप रही, कि जैसे कोई बात हुई ही नहीं थी।

सुदर्शन के यहाँ कपिल तो सदा की भाँति जाया करता, लेकिन सुदर्शन, कपिल के यहाँ न जाता। कपिल ने सुदर्शन से कहा, कि-जिस तरह मैं आप के यहाँ आया करता हूँ, उसी तरह आप भी मेरे यहाँ आया करते थे। परन्तु कुछ दिनों से आप मेरे यहाँ कभी भी नहीं आते इसका क्या कारण है? सुदर्शन ने उत्तर दिया, कि-आप मेरे अभिन्न मित्र हैं। आपसे मिलने पर, मुझे बहुत प्रसन्नता होती है। आपके घर न आने का कोई दूसरा कारण नहीं है, केवल यही कारण है, कि मैंने दूसरे के घर जाने का त्याग कर दिया है, फिर चाहे वह दूसरा सम्बन्धी हो, अथवा मित्र हो। केवल राज सभा में जाने का तो अवश्य आगार है, इसके सिवा उन सभी जगह जाने का त्याग कर दिया है, जहाँ कोई स्त्री रहती हो, या उपस्थित हो। इस त्याग के कारण धर्मध्यान के लिए मेरा बहुत समय बच गया है। मेरा यह नियम जान कर, आपको अवश्य ही प्रसन्नता हुई

होगी, और मुझे विश्वास है, कि आप मुझे इस नियम का पालन करने में सहायता देते रहेंगे ।

सुदर्शन का यह कथन सुनकर, कपिल ने उसकी सराहना की । फिर उसने सुदर्शन से कभी भी यह नहीं कहा, कि आप मेरे घर चलिये, या मेरे घर क्यों नहीं आते हैं ?

१

अभया की प्रतिज्ञा

हृदय में यदि किंचित् भी कुटिलता होती है, किंचित् भी बुराई या दुर्भावना होती है, तो वह कुटिलता बुराई या दुर्भावना संयोग पाकर विस्तृत रूप धारण कर लेती है। भूमि में यदि बीज पड़ा हुआ हो, तो पानी का संयोग मिलने पर वह बीज अंकुर रूप में और फिर वृक्ष रूप में हो ही जाता है। किसी स्थान पर यदि बीज ही न हो, तो वहाँ पानी बरसने पर भी कुछ नहीं उग सकता। अंकुर या वृक्ष तो तभी उत्पन्न होगा, जब बीज हो और उसको पानी का संयोग भी मिला हो। इसी

के अनुसार जिसके हृदय में किंचित् भी कुटिलता बुराई या दुर्भावना नहीं है, उसके समीप कुटिलता, बुराई और दुर्भावना-वर्द्धक कितने भी और कैसे भी कारण आवें, सब व्यर्थ होते हैं। वृद्धि तो तभी हो सकती है, जब मूल हो। जब मूल ही नहीं है, तब वृद्धि किसकी हो! यही नियम सद्गुण, सरलता और नम्रता के लिए भी हैं, लेकिन साधन पाकर भी इनकी वृद्धि उस तरह की शीघ्रता से नहीं होती, जैसी शीघ्रता से बुराइयों की वृद्धि होती है। पूरे साधन पाकर भी, केले या आम का पौधा उतनी शीघ्रता से वृद्धि नहीं पाता, जितनी शीघ्रता से—थोड़े साधन पा कर भी—धतूरा या आकड़े का पौधा वृद्धि पाता है! इस प्रकार साधन मिलने पर भी अच्छाई में उतनी वृद्धि नहीं होती, जितनी वृद्धि बुराई में होती है।

अभया के लिए भी ऐसा ही हुआ। अभया के हृदय में, दुराचार की थोड़ी बहुत भावना तो थी ही, तभी वह भावना साधन पाकर वृद्धि पाई, फिर भी वह राजपत्नी थी, कुलवती थी, और उसको अपने पद, अपनी प्रतिष्ठा एवं अपने वन्श का ध्यान था। इसलिए वह उस सीमा तक नहीं बढ़ी थी, जिस सीमा तक कपिला और पंडिता की संगति के कारण, कपिला द्वारा आदेश पाने के कारण, और कपिला द्वारा प्रतिज्ञाबद्ध की जाने के कारण दुराचार करने के लिए तय्यार हुई। कुसंगति से ऐसा

होता ही है। स्वयं के हृदय में रही हुई किंचित् भी बुराई, कुसंगति पाकर विशाल रूप धारण कर लेती है। कैकेयी में राम के प्रति कुछ भेद तो भले ही रहा होगा, लेकिन वैसा दुर्भाव न था, जैसा दुर्भाव मन्थरा की प्रेरणा के कारण हुआ। इसी प्रकार के और भी अनेकों उदाहरण दिये जा सकते हैं, लेकिन अधिक उदाहरण न देकर इस कथा से ही यह बताया जाता है, कि कुसंगति के प्रभाव से—दुराचारिणी द्वारा दिलाये गये आवेश में आ जाने से—अभया ऐसा नीच कार्य करने के लिए तय्यार हुई, जो कि उसके लिए प्रत्येक दृष्टि से अनुचित था।

पहले के राजा लोग, प्रजा के मनोरंजन और प्रजा में जागृति लाने के लिए उत्सवादि की व्यवस्था किया करते थे। इसके अनुसार चम्पापुरी में भी, इन्द्रोत्सव नाम का उत्सव हुआ करता था, कपिला की घटना के कुछ दिन बाद, इस उत्सव का समय आने पर चम्पा के राजा दधिवाहन ने नगर में यह घोषणा कराई, कि 'कल इन्द्रोत्सव है, अतः सब स्त्री-पुरुष उत्सव मनाने के लिए नगर के बाहर जावें।'

नगर के बाहर उत्सव मनाने की व्यवस्था हुई। राजा के दरबार के लिए भी डेरा शामियाना लगा, और रानी के दरबार के लिए भी। यानी, स्त्री और पुरुषों के बैठने आदि की अलग-अलग व्यवस्था हुई। राजा रानी और नगर के दूसरे स्त्री-पुरुष,

उत्सव मनाने के लिए नगर के बाहर गये। सुदर्शन की पत्नी मनोरमा भी, अपने पाँच पुत्रों सहित रथ में बैठ कर, उत्सव में भाग लेने के लिए नगर के बाहर—जहाँ रानी का दरबार लग रहा था वहाँ—गई। मनोरमा ने, रानी अभया का उचित अभिवादन किया, और अभया रानी ने मनोरमा को आदर दिया। कपिला भी, सजधज कर रानी के सामने उपस्थित हुई। उसने भी रानी का अभिवादन किया। रानी ने उसका आदर करके उससे कहा, कि—तुम तो सभी के बाद आई! मैं तो बड़ी देर से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही थी, कि पुरोहिताइनजी आ जावें, तो सब घूमने के लिए चलें। रानी के कथन के उत्तर में कपिला ने कहा, कि—मैं आपकी सेवा में जल्दी ही उपस्थित होना चाहती थी, लेकिन कार्य वश विलम्ब हो गया। अभी घूमने का समय तो नहीं बीता है, इसलिए पधारिये।

जहाँ कोई उत्सव होता है, और अधिक संख्या में लोग एकत्रित होते हैं वहाँ दुकानें भी लग ही जाती हैं, और एक प्रकार का मेला भर जाता है। इसके अनुसार इन्द्रोत्सव के कारण चम्पा के बाहर भी मेला लग गया था। जहाँ मेला होता है, वहाँ अनेक प्रकार के लोग आते हैं। कोई किस विचार से आता है, और कोई किस विचार से आता है। उत्सव में भाग लेने के लिए अभया भी आई है, कपिला भी आई है, और मनोरमा भी आई है, लेकिन तीनों

का स्वभाव भी भिन्न था, तीनों की प्रकृति भी भिन्न थी, और तीनों के विचारों में भी भिन्नता थी। यद्यपि सदाचार को महत्व तो अभया भी नहीं देती थी, वह भी सांसारिक भोग-विलास को महत्व देती थी, और इसके लिए सदाचार को ठुकरा सकती थी; फिर भी वह, कपिला की तरह उच्छृङ्खल स्वभाव की न थी। वह, कपिला की अपेक्षा गम्भीर भी थी, तथा उसको अपने पद एवं अपनी प्रतिष्ठा का भी ध्यान रहता था। इसके विरुद्ध कपिला, सांसारिक भोग विलास को ही महत्व देने वाली थी, उच्छृङ्खल स्वभाववाली भी थी, तथा चपल भी थी। लेकिन मनोरमा का स्वभाव, इन दोनों से ही भिन्न था। वह सदाचार को अपना आभूषण मानती थी, उसके स्वभाव में गम्भीरता थी, और उसकी दृष्टि सदा नीचे की ओर ही रहती थी। इन कारणों से तीनों के विचार में भी अन्तर था।

अभया ने, वहाँ उपस्थित स्त्रियों के साथ उत्सव में घूमने जाने के लिए तय्यारी की। सब स्त्रियाँ अपने-अपने वाहन में बैठ गईं। अभया भी अपने रथ में बैठी, और मनोरमा भी—अपने पुत्रों को लेकर—अपने रथ में बैठी। कपिला, अभया के साथ अभया के रथ में ही बैठी। वाहनों में बैठ कर सब स्त्रियाँ चलीं। सब से आगे अभया का रथ था। अभया के रथ के पीछे मनोरमा का रथ था, और मनोरमा के रथ के पीछे दूसरी स्त्रियों के रथ थे। उत्सव में

घूमने के लिए निकलने पर भी, मनोरमा नीची दृष्टि किये हुई बैठी थी, लेकिन अभया और कपिला चारों ओर देखती हुई कभी किसी की निन्दा करती थी और कभी किसी की प्रशन्सा करती जाती थी। सहसा कपिला की दृष्टि, मनोरमा पर पड़ी। वह, मनोरमा की ओर बार-बार देखने लगी। रानी ने कपिला से पूछा कि—तुम पीछे की ओर बार-बार क्या देखती हो ? कपिला ने उत्तर दिया कि—मैं इस पीछे वाले रथ में बैठी हुई स्त्री को देख रही हूँ, कि यह कैसी सुन्दरी है, और इसकी आकृति कैसी सौम्य है। मैंने ऐसी सुन्दरी स्त्री आज तक नहीं देखी। यह उत्सव में आई है, और इसका रथ आपके रथ के पीछे ही है, इससे यह तो जान पड़ता है, कि यह अपने नगर की कोई प्रतिष्ठित स्त्री है, परन्तु अपने नगर की होने पर भी मैं यह निश्चय नहीं कर सकी, कि यह स्त्री कौन है।

कपिला के कथन के उत्तर में अभया कहने लगी, कि—क्या तुम इनको नहीं पहचानतीं ? वास्तव में तुम्हारी आँखें और तुम्हारा मन दूसरी ओर रहता होगा, इसलिए इनको पहचानो भी कैसे ! इनको तुम एक बार नहीं किन्तु कई बार देख चुकी होओगी, फिर भी तुम्हारी स्मृति में कोई स्त्री कैसे रह सकती है ! हाँ यदि किसी सुन्दर पुरुष को तुमने देखा होता तो वह तो चाहे तुम्हारे स्मरण में रहता।

यह कह कर, अभया हँसने लगी। अभया के इस कथन का,

कपिला पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। उसने अभया से कहा, कि—आप तो हँसती हैं, लेकिन मैं सत्य कहती हूँ कि मैं इसको नहीं जानती। सम्भवतः पहले कभी मैंने इसको देखा भी नहीं और यदि देखा भी होगा तो इस समय मेरे स्मरण में नहीं है।

अभया ने कहा, कि—कभी तुम स्वयं को भी मत भूल जाना। ये यहाँ के नगरसेठ सुदर्शन की सेठानी हैं।

कपिला—ये नगरसेठ की सेठानी है! और ये बालक किस के हैं ?

अभया— इन्हीं के हैं।

'ये नगरसेठ के बालक हैं!' यह कह कर कपिला, ठहाका मार कर हँसी। कपिला को इस प्रकार हँसती देख कर, अभया समझ गई, कि इसकी इस हँसी में कोई रहस्य है। उसने कपिला से पूछा, कि—तुम हँसो क्यों ?

कपिला—कुछ नहीं, वैसे ही हँसी थी।

अभया—मुझ से भी कपट! अच्छा मत कहो!

कपिला— आपसे मैं कपट करूँ यह कैसे सम्भव है, लेकिन मैंने हँसी का कारण बताने के लिए इस अवसर को ठीक नहीं समझा, इसी से चुप रही थी। फिर भी आप नाराज होती हैं, तो लो मैं बताये देती हूँ।

यह कह कर कपिला ने साङ्केतिक भाषा में अभया से कहा,

कि—इसका पति तो नपुंसक है, फिर भी यह पाँच पुत्र लेकर सती बनी बैठी है, यह देख कर मुझे हँसी आ गई। यह बैठी तो है सती बन कर, लेकिन है दुराचारिणी। पति के नपुंसक होने पर, दुराचार किये बिना इसके पुत्र कहाँ से हो सकते थे?

अभया—तुम झूठ कहती हो। किसी ने तुम से यह बात गलत कही है।

कपिला—नहीं, मैं बिलकुल ठीक कह रही हूँ।

अभया—तुम्हें क्या पता कि इसका पति नपुंसक है? यह बात तुम्हें कैसे मालूम हुई?

कपिला—और किसी की कही हुई बात तो झूठ भी हो सकती है, लेकिन मैं जो कुछ कह रही हूँ, वह स्वयं इसके पति के मुँह से निकली हुई बात है।

अभया—इसके पति ने किससे कहा था?

कपिला—स्वयं मेरे से।

कपिला के इस उत्तर से अभया समझ गई कि इसने कभी सेठ को अपने जाल में फँसाना चाहा था, लेकिन वह स्वयं को नपुंसक बता कर इसके जाल से निकल गया है; इसी से यह कहती है, कि सुदर्शन सेठ नपुंसक है। उसने कपिला से कहा, कि—तुम स्वयं को बहुत होशियार और त्रियाचरित्र-कुशल मानती हो, लेकिन तुम्हारी बातों से जान पड़ता है, कि तुमने

कभी नगरसेठ सुदर्शन से धोका खाया है, और वह तुम्हें धोखा देकर तुम्हारे पंजे से निकल गया है। इसी से तुम कह रही हो, कि वह नपुंसक है।

कपिला—क्या मैंने धोखा खाया है ?

अभया—स्पष्ट धोखा खाया है। इन लड़कों को देख कर—सुदर्शन सेठ को जानने वाला—एक मूर्ख व्यक्ति भी कह सकता है, कि ये बालक सुदर्शन सेठ के हैं। इनकी आकृति, सेठ की आकृति से सर्वान्श में मिलती जुलती है। यदि ये सेठ से उत्पन्न न होते, किन्तु किसी दूसरे पुरुष के संसर्ग से उत्पन्न होते, तो इनकी आकृति सेठ की आकृति से कैसे मिलती ? इसके सिवा, सेठानी को देख कर भी कोई यह नहीं कह सकता, कि यह दुराचारिणी है। पर पुरुषगामिनी की आँखें छिपी नहीं रहती। जो स्त्री एक भी बार परपुरुष-गमन कर चुकती है, उसकी आँखें प्रकट या अप्रकट रूप से सुन्दर और युवक पुरुष की खोज में ही रहती हैं। सेठानी, इतनी देर से अपने साथ है, फिर भी इसकी आँखें नीची ही हैं। इसने, किसी पुरुष की ओर देखा तक नहीं। ऐसी दशा में यह परपुरुषगामिनी कैसे कही जा सकती है, और तुम्हरा कथन सत्य कैसे हो सकता है ! तुम्हारे कथन को सुन कर, और वास्तविकता देख कर यही समझा जाता है, कि तुमने धोखा खाया है। अब तुम यह बताओ, कि सेठ

को तुम से यह कहने को आवश्यकता क्यों हुई, कि मैं नपुंसक हूँ?

अभया का अन्तिम प्रश्न सुन कर, कपिला कुछ हिचकिचाई। उसने कहा, कि सेठ की मेरे पति से मित्रता है। मेरे पति से वह अपनी नपुंसकता का हाल कह रहा था, तब मैंने भी सुना था।

अभया—तुम झूठ बोलती हो। पहले तुम यह स्वीकार कर चुकी हो, कि इसके पति ने स्वयं मेरे से यह कहा था, कि मैं नपुंसक हूँ। फिर इस तरह कपट करने, और बात को छिपाने से क्या लाभ! तुम्हें, सच्ची बात कहनी ही होगी।

कपिला ने सोचा, कि मैंने सेठ के सामने शपथ-पूर्वक यह प्रतिज्ञा की थी, कि मैं तुम्हारी नपुंसकता की बात किसी से न कहूँगी। बात ही बात में, मैं इस प्रतिज्ञा को तोड़ चुकी हूँ, फिर अब दूसरी बात छिपाने से क्या लाभ! मुझ में और रानी में किसी प्रकार का भेदभाव तो है नहीं! रानी की गुप्त बातों को मैं जानती हूँ और मेरी गुप्त बातों को रानी जानती है। इसके सिवा मैं इस तरह की अनेक शपथों को तोड़ चुकी हूँ। शपथ, दूसरे को धोखा देने के लिए ही है, उससे बँध जाना मूर्खों का काम है।

इस प्रकार सोच कर कपिला ने स्वयं का सुर्शदन पर मुग्ध होने तथा पति के ग्रामान्तर जाने पर सुर्शदन को अपने घर लाने आदि समस्त वृत्तान्त अभया को सुनाया। जब कपिला सब वृत्तान्त सुना

चुकी। तब अभया ने कहा कि—मैंने तो तुमसे पहले कह ही दिया कि तुमको सेठ ने धोखा दिया है। वास्तव में वह नपुंसक या पुरुषत्वहीन नहीं है।

कपिला—यदि वह मुझे भी धोका दे गया, तब तो फिर उसको कोई भी स्त्री अपने आधीन नहीं कर सकती। जब उससे मैं भी धोखा खा गई, तब तो किसी मानवी की तो यह शक्ति हो ही नहीं सकती, कि वह सुदर्शन को अपने जाल में फँसावे। बल्कि मेरी तो यह धारणा है, कि उसको कोई देवाङ्गना भी ठगने में समर्थ नहीं हो सकती।

अभया—बस-बस! रहने दो! बहुत बातें मत करो। तुम्हारे इस कथन का तो यह अर्थ हुआ, कि संसार में तुम से बढ़ कर कोई भी स्त्री त्रियाचरित्र-कुशल है ही नहीं और जिस कार्य को तुम नहीं कर सकी, उसे कोई भी नहीं कर सकती। तुम्हारा यह कथन निरा व्यर्थ एवं असंगत है। अभी तुम त्रियाचरित्र सीखो। इतना अभिमान मत करो। जो स्त्रियाँ अच्छी तरह से त्रियाचरित्र जानती हैं, उन के सामने सेठ ऐसे साधारण पुरुष की तो गणना ही क्या है, वे, बड़े-बड़े ऋषि मुनि और देव दानव तक को डिगा सकती हैं। इसलिए इस तरह की अभिमान पूर्ण बातें न कह कर यह मानो कि मैं अभी त्रियाचरित्र में निपुण नहीं हूँ, और मैंने धोखा खाया है।

कपिला—हाँ, आपका यह कथन तो ठीक है, कि बड़े-बड़े ऋषि

मुनि और इन्द्र नरेन्द्र को भी डिगाया जा सकता है, लेकिन सुदर्शन के विषय में तो मुझे यह दृढ़ विश्वास है, कि सुदर्शन को शील से कोई भी स्त्री नहीं डिगा सकती। इस के साथ ही मुझे स्वयं के लिए भी यह विश्वास है, कि मैं त्रियाचरित्र में पूर्ण कुशल हूँ। कोई साधारण पुरुष, मेरे जाल से कदापि नहीं छूट सकता।

अभया—तुम्हारा यह विश्वास, तुम्हारे ही पास रहने दो। इस विश्वास के आधार पर, कोई अभिमान भरी बात मत कहो।

कपिला—मैं किसी को मेरे से बढ़ कर तब देखूँगी, जब कोई स्त्री सेठ को अपने अधीन कर लेगी, और तब मेरा विश्वास आप ही मिट जावेगा। इससे पहले तो कैसे मिट सकता है!

अभया—अभी मेरे लिए तुम्हें यह पता नहीं है, कि त्रियाचरित्र में मैं कैसी हूँ; इसीसे इस तरह की बात कर रही हो।

कपिला—आप कैसी होशियार हैं, यह मैं अच्छी तरह जानती हूँ, लेकिन सुदर्शन से तो आपको भी हारना ही पड़ेगा।

अभया—और यदि मैंने सुदर्शन को वश कर लिया तो?

कपिला—तो मैं आपकी शिष्या बन जाऊँगी, लेकिन यदि ऐसा न कर सकी तो?

अभया—मैं तुम्हें मुँह न दिखाऊँगी, किन्तु इस संसार से सदा के लिए बिदा हो जाऊँगी।

कपिला—ठीक है, परन्तु इस प्रतिज्ञा की कोई अवधि भी होगी?

अभया—केवल एक वर्ष।

कपिला—महारानी जी, अपनी इस प्रतिज्ञा के विषय में एक बार पुनः विचार कर लो। ऐसा न हो, कि प्रतिज्ञा अपूर्ण रहने पर आपको शर्माना भी पड़े और जीवन को भी विदा देनी पड़े।

अभया—मैंने अच्छी तरह सोच लिया है। मैं कपिला नहीं हूँ, जो कोई पुरुष मुझे धोखे में डाल सके।

कपिला—यह बात तो समय पर ही मालूम होगी।

अभया ने, कपिला के सामने सुदर्शन को भ्रष्ट करने की प्रतिज्ञा की। कपिला ने, जोश दे-दे कर अभया को प्रतिज्ञा के बन्धन में बाँध लिया, और अपने मन में प्रसन्न होने लगी। कपिला और अभया में, मार्ग भर इसी विषयक बात चीत होती रही। अन्त में, उत्सव का भ्रमण समाप्त करके, रानी—अपनी सखी सहेलियों एवं नगर की स्त्रियों सहित—डेरे पर लौट आई और मनोरमा आदि सब स्त्रियाँ, अपने-अपने घर को चली गई।

१०

पंडिता का पाण्डित्य

स्त्रियों में छल कपट प्रपंच और धूर्त्तता स्वाभाविक ही होती है । यह बात दूसरी है, कि स्त्रियों में कोई अपवाद स्वरूप ऐसी भी हों जिनमें कई दुर्गुणों का अभाव हो, अन्यथा स्त्रियों में छल कपट प्रपंच और धूर्त्तता होती ही है । स्त्रियाँ, बड़े-बड़े ऋषि मुनि को भी छल सकती हैं । अपने कपट पूर्ण व्यवहार से स्वयं को अनेकों की बना सकती हैं, फिर भी प्रकट में सती ही बनी रहती हैं, और वास्तव में किसी की भी

नहीं होतीं। स्त्रियों में प्रीति कैसी होती है, इसके लिए एक कवि कहता है:—

जल्पन्ति सार्द्धमन्येन, पश्यंत्यऽन्यं सविभ्रमाः ।
हृदये चिंतयंत्यऽन्यं, न स्त्रीणामेकतो रतिः ॥

अर्थात्—स्त्रियाँ, बात तो किसी से करती हैं, और विलासपूर्वक देखतीं किसी दूसरे को ही हैं, तथा हृदय में ध्यान किसी तीसरे का ही करती हैं। इस प्रकार स्त्रियों की प्रीति, किसी एक में ही नहीं होती।

स्त्रियों में, प्रपंच तो इतना अधिक होता है, कि वे बातों ही बातों में राई को पहाड़, और तिल को ताड़ बना देती हैं। आपस में लड़ा देना, भेद डाल देना, बदनाम कर देना आदि बातें तो उनके समीप लीला मात्र के समान हैं। इसके लिए कौणिक चेड़ा में जो युद्ध हुआ था, उसका बीजारोपण करने वाली पद्मावती विख्यात ही है। स्त्रियों की बुद्धि भी ऐसी होती है, कि वे इस तरह के कार्य में तत्काल ही बात बना सकती हैं, उपाय निकाल सकती हैं, और सैकड़ों सहस्रों ही नहीं, किन्तु लाखों, करोड़ों मनुष्यों की आँखों में भी धूल डाल सकती हैं। वे, अपना कार्य साधने के लिए कभी महान् वीरता धारण कर सकती हैं, कभी सीमातीत कायरता दिखला सकती हैं। कभी रो सकती हैं, कभी हँस सकती हैं। कभी प्रेम दिखला सकती हैं, कभी घृणा कर सकती हैं। कभी सरल बन जाती हैं, कभी असरल। कभी विनम्र हो

जाती हैं, कभी कठोर। कभी दयालु, कभी हिंसक। इस प्रकार अपना कार्य बनाने के लिए, जिस समय जैसी आवश्यकता देखती हैं, उस समय वैसी ही बन जाती हैं, और उसी प्रकार का व्यवहार करने लगती हैं। उनके इस प्रकार के व्यवहार का नाम ही त्रिया-चरित्र है। स्त्रियों में, त्रिया-चरित्र स्वभावतः होता ही है। नीतिकारों का कथन है, कि :—

अनृतं साहसं माया, मुर्खत्वमति लोभता ।
अशौचित्वं निर्दयत्वं, स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः ॥

अर्थात्—झूठ बोलना, बिना विचारे ही काम में लगने का साहस कर डालना, हठ करना छल कपट करना, मूर्खता, लोभ, अपवित्रता और निर्दयता, ये दुर्गुण स्त्रियों में स्वभाव से ही होते हैं।

इन दुर्गुणों की सहायता लेना ही, त्रियाचरित्र है। ये सब बातें स्त्रियों में स्वभावतः होती हैं फिर भी सभी स्त्रियाँ ऐसी नहीं होती। बहुत सी स्त्रीयाँ इन दुर्गुणों से बची हुई भी रहती हैं। जो स्त्रीयाँ कुलटा या दुश्चरित्र होती हैं, वे ही त्रियाचरित्र को अपना बल मानतीं एवं उसके सहारे स्वयं को सब कुछ करने में समर्थ समझती हैं। वे त्रियाचरित्र को अपना एक अमोघशस्त्र समझती हैं, उस के सहारे निर्भय रहती हैं, तथा उसकी सहायता से, जो कुछ चाहती हैं प्रायः वह कर भी डालती हैं। धुरंधर नीतिज्ञों के नीतिजाल से बचना और उसे तोड़ डालना तो सरल भी हो सकता है, लेकिन

उनके त्रियाचरित्र रूपी जाल से बचना और उसे तोड़ डालना बहुत ही कठिन है। अनेक बड़े-बड़े वीर योद्धा, विद्वान् और सदाचारी लोग भी, त्रियाचरित्र में फँसकर पथभ्रष्ट हो जाते हैं। त्रियाचरित्र के जाल में फँस जाने के पश्चात् कोई ही व्यक्ति अपने ध्येय पर स्थिर रह सकते हैं। सुदर्शन के सदाचार को नष्ट करने के लिए अभया ने जो प्रतिज्ञा की वह स्वयं के या स्वयं की सहायिकाओं के त्रियाचरित्र के बल पर ही की है। इसलिए अब यह देखते हैं, कि सुदर्शन को शीलभ्रष्ट करने के लिए किस प्रकार का त्रियाचरित्र किया गया।

अभया की धाय का नाम, पंडिता था। अभया, अपनी इस धाय को अपने पिता के घर से साथ लेती आई थी। पंडिता, बात-चीत में कुशल, त्रिया-चरित्र में निपुण और अभया की विश्वास-पात्रा थी। अभया, अपनी गुप्त से गुप्त बात भी पंडिता से कहा करती, और अभया के गुप्त कार्यों में पंडिता सहायता करती रहती। पंडिता के भरोसे पर अभया, कठिन से कठिन गुप्त कार्य को भी सरल माना करती थी। उत्सव से लौट कर अभया ने पंडिता से वह समस्त बातचीत कही, जो उसके और कपिला के बीच में हुई थी। सब बात-चीत सुना कर अभया ने पंडिता से कहा कि मैंने कपिला से जो होड़ की है, वह तेरे ही सहारे की है। यदि मेरी यह प्रतिज्ञा पूरी न हुई, तो मुझे मरना पड़ेगा।

इसलिए ऐसा उपाय कर, कि मेरी बात रह जावे और मुझे मरना न पड़े।

अभया का कथन सुन कर पंडिता ने उससे कहा, कि—इसमें घबराने की कोई बात नहीं है। यह कार्य करना, मेरे बायें हाथ का खेल है। तुम्हारी प्रतिज्ञा किस तरह पूरी हो सकेगी, इसका उपाय भी मैंने सोच लिया है। तुम निश्चिन्त रहो; लेकिन मैं जैसा कहूँ, वैसा करती जाओ। तुम, हा–हू करके तान कर इस तरह सो जाओ, जैसा किसी यक्षादि ने सताया हो। फिर मेरा संकेत मिले, तब उठ जाना। बस, इसके बाद तो मैं सब कुछ कर डालूँगी।

पंडिता की बात मान कर, अभया—अपने कपड़े-लत्ते फेंक कर और शरीर को अस्त-व्यस्त करके इस तरह हा–हू करने लगी, कि जैसे उस के शरीर में किसी देव या यक्ष का प्रकोप हो। त्रियाचरित्र में तो अभया कुशल थी ही, इसलिए उसने यह दृश्य पूरी तरह दिखाया। उसके समीप की दासियाँ, रानी की यह दशा देख कर घबराईं। वे, रानी को सम्हालने लगीं लेकिन सम्हली हुई रानी को कौन सम्हाल सकता था! वह, कभी तो हा–हू करती थी, कभी शरीर को कंपाने लगती थी, और कभी रोने या हँसने लगती थी। वहाँ उपस्थित दासियों में से एक दासी, दौड़ी हुई राजा दधिवाहन के पास गई। उसने दधिवाहन

से कहा, कि—महाराज, महारानी को न मालूम क्या हो गया है, इसलिए आप शीघ्र पधारिये!

रानी की तबियत खराब है, यह सुन कर दधिवाहन घबराया। वह, दौड़ा हुआ रानी के डेरे में आया। राजा आ रहे हैं, यह जान कर अभया कपड़ा तान कर सो गई, और हा-हू ऊँ-आँ करने लगी। पंडिता वहाँ उपस्थित ही थी। राजा के पहुँचते ही वह राजा से कहने लगी, कि—महाराज, देखिये, महारानी को न मालूम क्या हो गया है! इनका चित्त अस्थिर है, इनकी चेष्टा भी विचित्र है, और जान पड़ता है कि ये अपने आपे में नहीं हैं। इनकी दशा देख कर, मेरे को इनके जीवन के विषय में भी भय हो गया है; इसलिए शीघ्र ही उपचार होना चाहिए। अन्यथा, अनर्थ हो जायेगा।

कपड़ा तान कर पड़ी हुई रानी से राजा कहने लगा—प्रिये, तुम्हें क्या हुआ है? राजा, बार-बार इस तरह के प्रश्न करके रानी के शरीर का कपड़ा हटाना चाहता था, लेकिन रानी, कपड़े को तान कर अधिक-अधिक ऊँ-हूँ करती थी, और कोई जवाब नहीं देती थी। वह, शारीरिक चेष्टा द्वारा भी यही प्रकट करती थी, कि शरीर में किसी देवादि का प्रकोप है। रानी की इस चेष्टा से, राजा की घबराहट बढ़ गई। वह पंडिता से कहने लगी, कि—इनको क्या हो गया है, कुछ समझ में नहीं आता।

पंडिता—मेरी समझ में भी नहीं आता, कि इनको क्या हो गया है ? अभी थोड़ी देर पहले तो, ये उत्सव से लौट कर आई हैं। हाँ मेरे को इसी समय एक बात याद आई है। सम्भव है, कि उसी के कारण महारानी की तबियत अचानक इस प्रकार हो गई हो।

राजा—वह बात क्या है ?

पंडिता—आप जब युद्ध के लिए पधारे थे, तब पतिव्रता महारानी ने आपकी कुशल के लिए अनेक प्रकार के तप, नियम, और बहुत-सी मान-मिन्नतें की थीं। उसी समय महारानी ने कामदेव की यह मान भी की थी, कि—हे कामदेव, आज जिस तरह मैं महाराजा की पीठ देखती हूँ, उसी तरह जब महाराजा लौट कर आवेंगे और मैं उनका दर्शन कर लूँगी, तब उत्सव पूर्वक आपकी पूजा करूँगी, तथा जब तक उत्सवपूर्वक आपकी पूजा न कर लूँगी, तब तक महल से बाहर पैर न दूँगी। महारानी द्वारा की गई आपकी कुशल-कामना, कामदेव की कृपा से पूर्ण हुई। आप, युद्ध में विजय प्राप्त करके आनन्दपूर्वक वापिस पधार गये, लेकिन आपको पाकर महारानी, कामदेव की पूजा करने की अपनी प्रतिज्ञा भूल गईं। इन्होंने, कामदेव की पूजा नहीं की, और आज—आपकी आज्ञानुसार ये महल से बाहर यहाँ चली आईं। इस प्रकार इनने, देव से को हुई स्वयं की प्रतिज्ञा का पालन

नहीं किया। मेरी समझ से, यह उन देव का ही प्रकोप है, तथा इसी से महारानी को तबियत अनायास इस प्रकार खराब हो गई है।

पंडिता का कथन सुनकर दधिवाहन कहने लगा, कि—महारानी ने यह बहुत बड़ी भूल की, जो देव से प्रतिज्ञा करके उसका पालन नहीं किया।

पंडिता—महाराज, कार्य हो जाने के पश्चात ऐसा होता ही है। पतिव्रता, पति को पाकर परमात्मा को भी भूल जाती है, तो महारानो आपको पाकर कामदेव को भूल जावें इसमें क्या आश्चर्य है!

राजा—जिसकी कृपा से इष्ट-सिद्धि हो, उसको भूलना है तो अनुचित ही। उनसे की गई प्रतिज्ञा का पालन तो करना ही चाहिए था, और जब तक प्रतिज्ञानुसार पूजा नहीं करली थी, तब तक महारानी को महल से बाहर न निकलना चाहिए था।

पंडिता—कोई प्रतिव्रता स्त्री, पति की आज्ञा का पालन करने में कब विलम्ब कर सकती है! जब आपने महारानी को नगर से बाहर आने की आज्ञा दी, तब महारानो कैसे रुक सकती थी!

राजा—जो होना था सो हुआ, लेकिन अब क्या उपाय किया जावे, जिससे महारानी स्वस्थ हों?

पंडिता—यदि महारानी देव प्रकोप के कारण ही अस्वस्थ हुई हैं, तब तो देवप्रकोप शान्त हुए बिना महारानी की तबियत कैसे अच्छी हो सकती है !

राजा—हाँ यह तो ठीक है, लेकिन देव प्रकोप शान्त कैसे हो सकता है ?

पंडिता—आप देव की पूजा कीजिये, और अपने पर उनको पूजा का भार लीजिये। सम्भव है, कि ऐसा करने से देव तुष्टमान हो जावें, और महारानी की तबियत अच्छी हो जावे।

राजा—देव की प्रार्थना किस रीति से करनी चाहिए ?

पंडिता—पहले तो आप शुद्ध जल से हाथ पाँव धोइये। फिर हाथ जोड़ कर देव से प्रार्थना कीजिये, कि महारानी की यह भूल है, कि उन्होंने अपनी प्रतिज्ञानुसार आपकी पूजा नहीं की, और आपकी पूजा करने से पहले ही महल से बाहर यहाँ चली आई। आप महारानी का यह अपराध क्षमा कीजिये। अब महारानी को मैं इसी समय महल में भेजे देता हूँ। भविष्य में महारानी जब तक उत्सवपूर्वक आपकी पूजा न कर लेंगी, महल से बाहर न निकलेंगी। साथ ही, मैं भी अपने पर आपकी पूजा का भार लेता हूँ। इसलिए अब आप महारानी पर कृपा करिये, और शान्त हो जाइये।

यह कह कर पंडिता ने कहा, कि इस प्रकार आप देव की प्रार्थना करिये। मेरा विश्वास है, कि आपकी प्रार्थना से देव का प्रकोप शान्त हो जावेगा, और महारानी स्वस्थ हो जावेंगी। फिर जब महारानी स्वस्थ हो जावें, तब उन्हें महल में भेज दीजिये; और आज्ञा दीजिये, कि वे उत्सवपूर्वक कामदेव की पूजा करें। साथ ही, उत्सव और पूजा की सब व्यवस्था करने, एवं इस कार्य में किसी प्रकार की बाधा न हो आदि बातों के लिए अधिकारियों को भी सूचित कर दीजिये।

पंडिता ने जिस तरह से बताया था, राजा ने उसी तरह से—हाथ पाँव धोकर – कामदेव की प्रार्थना की। राजा द्वारा की गई प्रार्थना समाप्त होते ही, पंडिता भी अभया को हाथ लगा कर कहने लगी, कि—हे कामदेव महाराज, आप महाराजा की प्रार्थना स्वीकार करके महारानी पर से अपना प्रकोप हटा लीजिए। अब महाराजा ने आपकी पूजा का भार अपने पर ले लिया है, और ये महारानी की भूल स्वीकार करके आपसे क्षमा प्रार्थना करते हैं, अतः आप महारानी की भूल क्षमा कीजिये। महारानी बहुत भोली हैं। ये, प्रत्येक बात विस्मृत होजाया करती हैं, और मनुष्य से भूल होना अस्वाभाविक भी नहीं है। आप, हम मनुष्यों पर कृपा करने वाले हैं, इसलिए महारानी पर सन्तुष्ट होइये। अब महारानी बहुत शीघ्र ही, द्विगुण उत्सव के साथ आपकी पूजा

करेंगी, और जब तक आपकी पूजा न कर लेंगी, तब तक पूर्व की प्रतिज्ञानुसार महल से बाहर न निकलेंगी।

यह कह कर पंडिता ने, अभया के शरीर में लगे हुए अपने हाथ से अभया को संकेत किया। पंडिता का संकेत पा कर अभया पंडिता की बात समाप्त होते ही उठ कर बैठ गई। उसने शरीर का आलस्य तोड़ कर, राजा की ओर देखकर लज्जा का ढोंग दिखाया। कपड़ा तान कर पड़ी हुई रानी जैसे ही उठकर बैठी, वैसे ही पंडिता कहने लगी, कि—देखिये महाराज, मेरी बात ठीक निकली न! महारानी की यह दशा देव–प्रकोप के कारण ही थी। पंडिता के साथ ही, वहाँ उपस्थित दूसरी दासियाँ भी कहने लगीं, कि—वास्तव में महारानी देव प्रकोप से ही पीड़ित थीं। महाराजा की प्रार्थना देव ने स्वीकार की, और महारानी उठ बैठीं, यह बहुत प्रसन्नता की बात है। अच्छा हुआ कि इन पंडिता को महारानी द्वारा काम देव की मान ली जाने का हाल ज्ञात था, जो इन्हें इस समय स्मरण हो आया, और महाराजा की प्रार्थना से देव सन्तुष्ट हो गये, अन्यथा बड़े अनिष्ट की सम्भावना हो गई थी।

अभया को उठकर बैठी देख, दधिवाहन को भी बहुत प्रसन्नता हुई। वह अभया से कहने लगा, कि—महारानी, तुमने मेरी कुशलता की कामना से देव से प्रार्थना की थी, तथा उसके साथ जो प्रतिज्ञा की थी, वह प्रतिज्ञा पूरी नहीं की। तुमने प्रतिज्ञानुसार

कामदेव की पूजा नहीं की, और पहले ही महल से बाहर चली आई, इससे देव प्रकोप के कारण आज तुम्हारा जीवन संकट में पड़ गया था। कुछ समय पूर्व तुम्हारी जो दशा थी, उसे देख कर मेरे हृदय में बहुत चिन्ता होगई थी, लेकिन प्रसन्नता की बात है कि पंडिता को सब बात मालूम थी, तथा इस समय वह बात स्मरण भी हो आई, और देव ने भी मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली। अन्यथा, न मालूम क्या होता! देव के सन्मुख की गई प्रतिज्ञा को इसप्रकार विस्मृत भी न होना चाहिए था, न प्रतिज्ञा पूरी करने में उपेक्षा ही करनी चाहिए थी।

राजा की बात का उत्तर देने के लिए अभया उठ कर खड़ी हो गई, और हाथ जोड़कर कहने लगी कि—महाराज, आपकी बात सुन कर मुझे यह तो याद आया, कि आप जब युद्ध में पधारे थे, तब मैंने कामदेव से आपकी कुशलता के लिये प्रार्थना की थी, तथा उसके साथ पूजा की और—जब तक पूजा न कर लूँ—महल से बाहर न निकलने की प्रतिज्ञा भी की थी, लेकिन आपका दर्शन होने पर मैं इस प्रतिज्ञा को भूल गई। फिर क्या हुआ, इसका मुझे कुछ भी पता नहीं है।

पंडिता—पता भी कहाँ से होता! आप अपने वश में ही न थीं, आपके शरीर और मन पर तो देव का आधिपत्य था, ऐसी दशा में आपको क्या पता, कि कुछ देर पहले आपकी क्या दशा थी।

राजा—अभी तुम्हारी क्या दशा थी, और तुम्हारे जीवन के विषय में किस प्रकार की आशंका उत्पन्न हो गई थी, आदि बातें पंडिता से पूछ लेना। अब इस समय तो तुम महल को जाओ और भविष्य में जब तक कामदेव की—उत्सवपूर्वक पूजा न करलो, तब तक महल से बाहर न निकलना। साथ ही, उत्सवपूर्वक कामदेव की पूजा भी कर दो। अब इस कार्य में विलम्ब न होना चाहिए। इसके लिए जो व्यय या सुविधा चाहिए मुझ से कहो।

पंडिता—व्यय तो साधारण ही है, कुछ विशेष नहीं है। वह तो जैसी जैसी आवश्यकता होगी, हम कोष से लेती जावेंगी। आप कोषाध्यक्ष को यह स्वीकृति दे दीजिये, कि वह आवश्यकतानुसार खर्च देता जावे। साथ ही, किसी कर्मचारी को यह आज्ञा दीजिये, कि वह आवश्यकतानुसार—हम जिस तरह कहें उस तरह—सब व्यवस्था कर दे, और पहरेदारों को भी यह आज्ञा दे दीजिये, कि वे उत्सव के कारण होने-वाले बारबार के आवागमनादि में किसी प्रकार की बाधा न पहुँचावें।

राजा—यह सब हो जावेगा, अब तुम महारानी को महल में ले जाओ।

अभया, पंडिता और दासियाँ, उत्सव से लौट कर महल में आईं। उधर राजा ने, सम्बन्धित कर्मचारियों को कामदेव की पूजा, और उत्सव सम्बन्धी सब व्यवस्था करने की आज्ञा दे दी।

इस प्रकार पंडिता ने, अभया की प्रतिज्ञा पूरी कराने, और सुदर्शन को फँसाने के लिए रचे जाने वाले षड्यन्त्र की मजबूत नींव डाल दी।

महल में आकर, प्रसन्न होती हुई पंडिता अभया से कहने लगी, कि—लो, आपका कार्य जिस तरह हो सकता है, उसका प्रबन्ध मैंने कर लिया। अब आपका कार्य सरलता से हो जावेगा।

अभया ने पूछा, कि—मेरी समझ में नहीं आया, कि तुमने यह सब किस उद्देश्य से किया। मेरे शरीर में देव लाने, और महाराजा से कामदेव की पूजा एवं उत्सव करने की स्वीकृति का क्या रहस्य है?

पंडिता—महारानी, आप त्रियाचरित्र जानती तो हैं, लेकिन अभी पूरी तरह नहीं जानतीं। जाने भी कहाँ से! आखिर तो मेरे ही सामने जन्मी हैं और मैंने ही आपको दूध पिला कर बड़ी की है। मैंने जो कुछ भी किया कराया है, वह सुदर्शन को आपके पास तक लाने के लिए ही। अब सुदर्शन को आप तक लाना, मेरे लिए कुछ भी कठिन नहीं है। मैं सुदर्शन को आपके पास ला दूँ, फिर तो आप उसको अपना बना लोगी न?

अभया—फिर क्या है! फिर तो मैं उसे अपना कर ही लूँगी; परन्तु तुम उसको लाओगी किस तरह?

पंडिता—कामदेव की पूजा के उपाय से।

अभया—क्या पूजा करके कामदेव को बुलाओगी ?

पंडिता—कामदेव कहाँ है, और उसको कौन बुला सकता है ! मैं तो उसकी पूजा का बाहना करके एक सुदर्शन के आकार की मूर्ति बनाऊँगी, जिसे दासियों की सहायता से बाहर ले जाऊँगी, और भीतर लाऊँगी। बस इसी आवागमन में, मैं सुदर्शन को आप के महल में ले आऊँगी। आप इस विषयक ज्यादा विचार मत करो, मैं सब कुछ ठीक कर लूँगी।

पंडिता का कथन सुन कर, अभया बहुत प्रसन्न हुई। उसने, पेट भरकर पंडिता की प्रशन्सा की, उसका गुणगान किया, और उत्साह बढ़ाने के लिए उसको पुरस्कार देकर आगे के लिए भी आश्वासन दिया।

११

राजमहल में सुदर्शन

दुष्ट लोग, अपना दुष्टतापूर्ण कार्य पूरा करने में न्याय-अन्याय, उचित-अनुचित, समय असमय, जाति–कुजाति, या स्थान-अस्थान आदि किसी भी बात का विचार नहीं करते। उनका लक्ष्य तो अपना कार्य सम्पादन करना ही रहता है, फिर वह कार्य कैसा ही नीच क्यों न हो, और किसी भी रीति से किसी के भी साथ अथवा किसी भी स्थान पर क्यों न होता हो। यह न्याय है या अन्याय, उचित है या अनुचित,

इस कार्य के करने का यह समय है या नहीं, यह व्यक्ति अपनाने अथवा त्यागने योग्य है या नहीं, और यह स्थान इस कार्य को करने योग्य है या नहीं, आदि बातों की वे लोग किंचित् भी उपेक्षा नहीं करते। दुष्ट लोगों का यह स्वभाव ही होता है। साधारणतया यह नीति है, कि धर्मस्थान में बैठे हुए किसी व्यक्ति को धर्मस्थान से हटने के लिए कहा भी नहीं जाता, न हटाया ही जाता है। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति धर्म कार्य में संलग्न होता है, तो उससे धर्म कार्य भी नहीं छुड़ाया जाता है, न उसे किसी पाप-कार्य में प्रवृत्त करने की चेष्टा ही की जाती है। बल्कि इस बात की सावधानी रखी जाती है, कि इस धर्मस्थान में बैठे हुए को किसी प्रकार की असुविधा न हो, अथवा इसके धर्म-कार्य में किसी प्रकार का विघ्न न हो। लेकिन नीति का बन्धन तो सज्जनों के लिए है। दुर्जनों के लिए न नीति का बन्धन है, न अनीति का। उनके लिए तो वही नीति धर्म या न्याय है, जिसके द्वारा उनकी इच्छानुसार कार्य बनता हो। बल्कि वे लोग अपना कार्य साधने के लिए वह समय उपयुक्त समझते हैं, जब कार्य से सम्बन्धित व्यक्ति धर्म-स्थान पर बैठा हो, या धर्म-कार्य में लगा हो। उदाहरण के लिए राजसुकुमार मुनि ने पहले तो सोमल की कोई हानि की ही नहीं थी। कदाचित उनके द्वारा सोमल की कोई हानि हुई थी, और सोमल उनको शत्रु मानता था, तब

भी उसके लिए यह उचित न था, कि वह ध्यान में तल्लीन मुनि के सिर पर आग रखता। लेकिन ये मुनि हैं और ध्यान में हैं, इस बात का विचार दुष्ट-हृदय सोमल क्यों करने लगा था! उसने तो मुनि से वैर लेने के लिए उस अवसर को ही उपयुक्त माना, तथा मुनि के सिर पर आग रख दी। इसी प्रकार पंडिता ने अभया को यह विश्वास दिलाया था कि मैं सुदर्शन को महल में ले आऊँगी, इस कारण वह सुदर्शन को रानी के महल में ले आना चाहती थी; फिर भी उसको अपना यह कार्य धर्म-स्थान पर और उस समय न साधना चाहिए था, जब सुदर्शन पौषध में था, और धर्म-ध्यान में लगा हुआ था। परन्तु पंडिता ने, अपना कार्य साधने के लिए उसी अवसर को उपयुक्त समझा। दुष्ट लोगों द्वारा ऐसा होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

चम्पापुरी में एक कौमुदी-महोत्सव मनाया जाता था। वह उत्सव स्त्रियों का होता था, और उस दिन सब पुरुष नगर से बाहर हो जाते थे। नगर में कोई भी पुरुष नहीं रहता था, केवल स्त्रियाँ रह जाती थीं। कौमुदी महोत्सव, कार्तिकी पूर्णिमा पर हुआ करता था। कार्तिकी-पूर्णिमा पर होने वाले कौमुदी महोत्सव से कुछ दिन पहले ही, पंडिता ने कामदेव की एक सुन्दर मूर्ति बनवाई। फिर उस मूर्ति का उत्सव करने लगी। उसे दासियों के सिर पर रखवा कर, गाजे-बाजे तथा धूम-धाम के साथ बाहर

में फिराने लगी, और फिर महल में लाने लगी। वह, उस मूर्त्ति को दिन रहे ही महल से बाहर ले जाती, और शाम को अन्धेरा होजाने पर महल में लाती।

ऐसा करते-करते, पंडिता को कुछ दिन बीत गये। वह इस बात के प्रयत्न में थी, कि किसी तरह सुदर्शन को इसी उत्सव के बहाने महल में लेआया जावे, लेकिन उसको ऐसा अवसर ही न मिला। अनायास हो कौमुदी-महोत्सव का दिन आया। राजा ने, कार्तिकी-पूर्णिमा से एक दिन पहले ही नगर में यह घोषणा करा दी, कि कल कौमुदी महोत्सव का दिन है, अतः नगर के सभी पुरुष प्रातःकाल ही—मेरे साथ—नगर के बाहर चलें। नगर में कोई भी पुरुष न रहे, अन्यथा वह अपराधो माना जावेगा, और उसको दण्ड दिया जावेगा।

राजा द्वारा कराई गई यह घोषणा, सुदर्शन सेठ ने भी सुनी। राजा की घोषणा सुन कर वह विचारने लगा, कि जिन लोगों को उत्सव या राग-रंग पसन्द है, उनके लिए तो नगर से बाहर जाने और वहाँ आनन्द मनाने के लिए यह अवसर उपयुक्त है, वे लोग तो ऐसे अवसर की प्रतीक्षा ही करते हैं, लेकिन मेरे लिए तो राजा की आज्ञा मान कर नगर से बाहर जाना, हानिप्रद होगा। कल कार्तिकी पूर्णिमा—चातुर्मास की अन्तिम पक्षतिथि—है। मैं, कल पौषधव्रत करना चाहता हूँ। यदि मैं

राजा की आज्ञा मान कर नगर के बाहर जाऊँगा, तो इस लाभ से वंचित रह जाऊँगा। इसलिए यदि राजा मुझे इस आज्ञा से मुक्त कर दें, तो अच्छा हो।

इस प्रकार विचार कर सुदर्शन सेठ, राजा दधिवाहन के पास गया। उसने, राजा को अभिवादन किया। राजा ने सेठ का आदर करके, उससे आने का कारण पूछा। सेठ ने राजा से कहा, कि—आपने यह घोषणा कराई है, कि कल कौमुदी महोत्सव है, अतः नगर में कोई पुरुष न रहे। आपकी इस आज्ञा का पालन करना मेरा भी कर्त्तव्य है, लेकिन कल चातुर्मासिक पक्त-तिथि है। मेरा विचार है, कि यदि आप की स्वीकृति हो, और आप मुझे इस घोषणा से मुक्त कर दें, तो मैं पौषधव्रत करके धर्माराधन करूँ। मैं, इसी उद्देश्य से आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।

पहले के राजा।लोग, धार्मिक विचार के होते थे, और वे धर्म-कार्य को महत्व भी देते थे। वे, किसी धार्मिक-कार्य में बाधा नहीं पहुँचाते थे, किन्तु यदि कोई व्यक्ति धर्म-कार्य करने के लिए तय्यार होता था, तो वे उसके मार्ग को और सुगम बना देते थे। राजा दधिवाहन, महारानी अभया के अधीन तो अवश्य था, लेकिन उसकी धर्म भावना नष्ट नहीं हुई थी। इसलिए वह सुदर्शन की प्रार्थना सुन कर प्रसन्न हुआ। वह कहने लगा, कि—मेरे

नगर में तुम ऐसा धार्मिक व्यक्ति है, यह जान कर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। नगर के और लोग तो मेरी घोषणा से प्रसन्न हुए, परन्तु तुम नगर के बाहर जाकर आमोद-प्रमोद करने की अपेक्षा धर्म-कार्य को महत्व देते हो, यह बहुत आनन्द की बात है। मैं तुम को मेरी घोषणा से मुक्त करता हूँ, तथा तुम्हें नगर में रहने की स्वीकृति देता हूँ।

राजा की स्वीकृति पाकर, सुदर्शन बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने, राजा का आभार मान कर उसे धन्यवाद दिया। राजा ने, अपनी इस आज्ञा की सूचना अपने अधिकारियों को भी दे दी, जिससे वे—नगर में रहने के कारण सुदर्शन को न सतावें, न उसके धर्म-कार्य में किसी प्रकार का विघ्न ही डालें।

'महाराजा ने सुदर्शन को कल नगर में रहने की स्वीकृति दी है, और कल पुरुषों में से एक मात्र सुदर्शन ही नगर में रह कर पौषध करेगा' यह समाचार जान कर पंडिता को बहुत प्रसन्नता हुई। वह सोचने लगी, कि कल कार्य साधने का अच्छा अवसर है। नगर में और कोई पुरुष भी न रहेगा, और सुदर्शन धर्म ध्यान करने के लिए एकान्त में भी बैठेगा। उस समय उसको उठा कर महल में ले आना बहुत सरल होगा। मैं, कल उसे अवश्य ही महल में ले आऊँगी। इस प्रकार के विचार से प्रसन्न होती हुई पंडिता, अभया के पास गई। उसने

अभया से कहा, कि कल आपका कार्य हो जावेगा । मैं, कल सुदर्शन को आपके पास ले आऊँगी, और आप से उसकी एकान्त में भेंट करा दूँगी । फिर तो आप उसको अपना बना लेंगी ? पंडिता का कथन सुन कर, प्रसन्न होती हुई अभया ने उत्तर दिया, कि—बस इतना ही तो चाहिये । जब वह मुझे एकान्त में मिल जावेगा, तब में उसको अपना बना ही लूँगी । लेकिन तुम उसे लाओगी कैसे ? पंडिता ने हँस कर उत्तर दिया, कि—जब मैंने त्रियाचरित्र से महाराजा को भी ठग लिया, तब सुदर्शन क्या चीज है ! कहावत भी है कि 'त्रियाचरित्रं पुरुषस्यभाग्यं दैवो न जानाति कुतो मनुष्यः ।' इसके अनुसार जब दैव भी त्रियाचरित्र को नहीं जानता, वह भी उसके भुलावे में पड़ सकता है, तब सुदर्शन की क्या बिसात है कि वह मेरे त्रियाचरित्र में न फँसे ! महाराजा ने उसको कल नगर में रहने की स्वीकृति दी है, और कल वह नगर में ही एकान्त में बैठ कर पोषध करेगा । उस समय मैं, उसे उठा लाऊँगी ।

अभया—क्या धर्मकार्य में बैठे हुए को भी उठा लाओगी ?

पंडिता—कार्य साधने के समय ऐसी बात नहीं देखी जाती । इसके लिए तो अवसर देखा जाता है । यदि धर्म-कर्म का विचार किया जाने लगे, तब तो यह कार्य हो ही नहीं सकता । इसलिए इन बातों का विचार करने की आवश्यकता नहीं है । आप तो

अपना कार्य करने के लिए तय्यार रहिये, मैं अपना काम कर दूंगी ।

यह कह कर, पंडिता हँसने लगी। अभया भी और कुछ नहीं बोली। वह इस विचार से प्रसन्न हुई, कि मेरी सखी कपिला जिसके साथ सम्भोग सहवास करने के लिए लालायित ही बनी रही, और अपने प्रयत्न में असफल रही, उस सुदर्शन के साथ कल मैं आनन्द-पूर्वक संभोग करूँगी, और फिर कपिला से गर्व-पूर्वक यह कहूँगी, कि—देख; मैं त्रियाचरित्र में किस प्रकार कुशल हूँ, तथा जिससे तू हार गई, उसे मैंने किस प्रकार अपने जाल में फँसा कर जीत लिया !

दूसरे दिन सवेरे ही, राजा तथा नगर के सब पुरुष नगर से बाहर चले गये। नगर में, राजमहल के पहरेदारों के सिवा, केवल स्त्रियाँ ही स्त्रियाँ रह गईं, और सुदर्शन रह गया। सुदर्शन, सवेरे उठ कर पौषधशाला में गया। उसने अपने हाथों से पौषधशाला को पूँजा, यानी बुहार कर साफ किया। फिर घास का सन्थारा बिछा कर, पौषधव्रत धारण करके उस पर बैठ गया, और धर्मध्यान करने लगा। दूसरी ओर पंडिता ने—सन्ध्या-समय से कुछ पहले ही—कामदेव की मूर्ति को भी वैसे ही वस्त्र पहनाये जैसे वस्त्र पौषधव्रत के समय पहने जाते हैं, अथवा जैसे वस्त्र उस दिन सुदर्शन ने धारण किये थे। पंडिता, उस मूर्ति को प्रायः

नित्य ही उसी प्रकार के वस्त्र पहनाया करती थी, जैसे वस्त्र सुदर्शन पहना करता था। उसका उद्देश्य यही था, कि अवसर पाकर अपने कौशल के बल से मूर्ति के बदले सुदर्शन को महल में ले आया जावे। इसलिए उस दिन कामदेव की मूर्ति को भी वैसे ही वस्त्र पहनाये, जैसे वस्त्र धारण करके सुदर्शन पौषध व्रत में धर्मध्यान करने के लिए बैठा था। कामदेव की मूर्ति को—पौषध में बैठे हुए सुदर्शन के वस्त्र की तरह के—वस्त्र पहना कर पंडिता, अपनी विश्वस्त सहेलियों के सिर पर वह मूर्ति रखवा, सदा से कुछ अधिक राग-रंग करती हुई, गाजे-बाजे के साथ महल से बाहर नगर में निकली। चलते समय उसने अभया से कहा, कि—आप तय्यार रहिये, मैं अभी थोड़ी ही देर में सुदर्शन को लेकर आती हूँ। अभया ने उत्तर दिया, कि—तुम अपना काम तो करो! मुझे तो तय्यार ही समझो।

गाजे-बाजे के साथ दासियों सहित पंडिता, कामदेव की मूर्ति को सिर पर रखवाकर नगर में चली। वह, नगर के प्रमुख बाजारों में मूर्ति को घुमा कर, जब अन्धेरा हो गया तब जुलूस को लिये हुए उस ओर गई, जिस ओर वह पौषधशाला थी, जिसमें सुदर्शन पौषध करके बैठा था। उसने पहले से ही यह पता लगा लिया था, कि सुदर्शन किस पौषधशाला में और किस स्थान पर बैठा है, तथा किस मार्ग से उसके समीप पहुँचा जा सकता है,। इसलिए

पौषधशाला के समीप पहुँच कर उसने साथ की दासियों से कहा, कि आज इस उत्सव का अन्तिम दिन है, इसलिए अमुक बहन ने, इन कामदेव महाराज की पूजा करने को इन्हें स्वयं के यहाँ आमन्त्रित किया है। तुम सब यहीं ठहरी रहो मैं अभी उन के यहाँ से इन कामदेव महाराज की पूजा कराकर लौट आती हूँ। यदि अपन सब वहाँ चलेंगी, तो वे अधिक रोकेंगी, और इस कारण अधिक विलम्ब होगा। आज, वैसे भी विलम्ब हो गया है। अधिक विलम्ब करना ठीक नहीं, मैं, शीघ्रता से इस देव महाराज को वापस लिये आती हूँ, और फिर अपन सब महल को लौट चलेंगी।

यह कह कर पंडिता ने साथ की सब दासियों को वहीं छोड़ दिया, और स्वयं कामदेव की मूर्त्ति को उन दासियों के सिर पर रखवा कर चली, जिन्हें उसने पहले से ही प्रलोभन दे रखा था, और जो उसकी विश्वस्त साथिनियाँ थीं। वह, मूर्त्ति को सहेलियों के सिर पर रखवाये हुई पौषधशाला में गई। पौषधशाला में, सुदर्शन सेठ अपने सन्थारे पर बैठा हुआ धर्मचिन्तवन कर रहा था। उसको इस बात की आशंका भी न थी, कि यहाँ कोई स्त्री आवेगी, या कोई घटना घटेगी।

पंडिता ने सुदर्शन सेठ से कहा, कि—सेठ, आज तुमने जो नियम लिये हैं, तुम अपने उन नियमों पर दृढ़ रहना। हम कुछ

भी करें, तुम बोलना मत; अन्यथा तुम्हारा नियम भंग हो जावेगा। सेठ से इस तरह कह कर, पंडिता ने साथ की दासियों के सिर पर से कामदेव की मूर्त्ति उतरवाई, और मूर्त्ति को वहीं किसी अप्रसिद्ध स्थान में फेंक कर, सुदर्शन को उठा कर मूर्त्ति के स्थान पर बैठा लिया, और मूर्त्ति की तरह सिर पर रखवा कर चल दी। जहाँ वह साथ की स्त्रियों को छोड़ गई थी, उस स्थान पर आकर पंडिता उन सब से कहने लगी, कि—चलो, जल्दी चलो। बहुत देर हो गई है। आज उत्सव तथा पूजा का अन्तिम दिन है, और महारानी को कामदेव की एकान्त पूजा भी करनी है। इसलिए जल्दी चलो।

दासियों के सिर पर सुदर्शन को बैठाये हुई पंडिता, महल में आई। पंडिता और उसकी साथिनियों का इस तरह का आवागमन प्रायः नित्य का ही था, इसलिए महल के पहरेदारों ने कोई रोक-टोक नहीं की, न इस ओर ध्यान ही दिया, कि दासियों के सिर पर कोई मनुष्य है, या मूर्त्ति। ध्यानस्थ आदमी मूर्त्ति की ही तरह का जान पड़ता है, तथा पंडिता चालाक थी, इसलिए उसने पहरे वालों को बातों के भुलावे में भी डाल दिया। इस तरह वह, सुदर्शन को प्रधान द्वार से ही महल में ले गई। अभया की सम्मति से उसने, महल में एकान्त स्थान का प्रबन्ध पहले से ही कर रखा था। उसने "अब महारानी कामदेव की

एकान्त पूजा करूँगी, वहाँ कोई न चलो' कह कर साथ की दूसरी स्त्रियों को उस स्थान के बाहर छोड़ दिया, और आप अपनी विश्वस्त साथिनियों के सिर पर सुदर्शनको बैठाये हुई उस एकान्त स्थान में गई, जो पहले से ही नियत था। वहाँ उसने अपनी साथिनियों के सिर पर से सुदर्शन को उतरवाकर नीचे बैठा दिया, और फिर किंवाड़ बन्द कर दिये। उस स्थान से बाहर निकल कर, पंडिता ने अपनी साथिनियों को भी बिदा कर दिया। यह करके वह अभया के पास पहुँची। उसने अभया से प्रसन्न होती हुई कहा कि—लो मैंने अपना कार्य पूरा कर दिया। हरिण को जाल में फँसा दिया है, अब आप जाकर उसे अपने नयनबाण का लक्ष्य बना कर कार्य पूरा करो। देखना, कहीं असफल मत रहना, नहीं तो सब प्रयत्न भी व्यर्थ होगा, और कपिला से जो बाजी लगी है, उसके अनुसार आपको मरना भी पड़ेगा। जाओ, विलम्ब मत करो। मैं, आपके इच्छित सेठ को नियत स्थान पर बैठा आई हूँ। आप कहती थीं, कि सुदर्शन को महल में कैसे लाओगी, परन्तु ले आई या नहीं! सुदर्शन तो क्या, मैं अपने कौशल से बड़े-बड़े ऋषि, मुनि और देव, इन्द्र को भी तुम्हारे अधीन कर सकती हूँ।

पंडिता, अभया की धाय थी। उसने, दूध पिला कर और पाल-पोष कर, अभया को बड़ी की थी। इस तरह वह, एक

प्रकार से अभया की माता थी, इसलिए उसका कर्त्तव्य तो यह था, कि वह अभया को सच्चरित्रा रखती, ऐसी बात का प्रयत्न करती, और अभया के मन में जो दुर्भावना उत्पन्न हुई थी, उसे अपने उपदेश से मिटाती। लेकिन स्वार्थ में पड़ी हुई पंडिता ने, लोभवश अपने कर्त्तव्य की किंचित भी उपेक्षा नहीं थी। बल्कि उसने दुराचार के लिए अभया की और भी सहायता की। जब किसी व्यक्ति में स्वार्थ घुस जाता है, और स्वार्थ का आधिक्य होता है, तब ऐसा होना स्वाभाविक ही है। आज भी ऐसी अनेक स्त्रियाँ होंगी, जो अपना मातृ-कर्त्तव्य भूलकर पुत्री या पुत्र को दुराचार में प्रवृत्त करती हों, या सदाचार से दूर पटकती हों।

सुदर्शन को पंडिता महल में ले आई है, यह जान कर अभया को बहुत ही प्रसन्नता हुई। उसने पंडिता के प्रति कृतज्ञता प्रकट की, और उसकी प्रशन्सा करके उसे पुरस्कार भी दिया। वह, मंजन अंजन करके और वस्त्राभूषण पहन कर पहले से ही इस बात की प्रतीक्षा में बैठी हुई थी, कि पंडिता कब लौट कर यह कहे, कि 'सुदर्शन महल में आ गया है' और मैं जाकर सुदर्शन के शरीर का आलिंगन करूँ। इसलिए वह, पंडिता को पुरस्कार देकर सुदर्शन के समीप चली।

१२

कठिन कसौटी

व्रत-नियम का पालन करना उस समय तक तो सरल रहता है, जब तक किसी प्रकार के परिषह नहीं होते; लेकिन परिषह होने पर दुर्बल-हृदय लोगों के लिए व्रत-नियमों पर स्थिर रहना बहुत कठिन है। जिनमें दृढ़ता नहीं है, और जिनकी आत्मा परिषह सहने की क्षमता नहीं रखती है, वे लोग परिषह के कारण व्रत-नियम से पतित हो ही जाते हैं। उस समय, उनके लिए व्रत-नियम पर स्थिर रहना कठिन है। इसीलिए परिषह

को व्रत-नियम की कसौटी कहा जाता है। परिषहों में से प्रतिकूल परिषह सह कर व्रत-नियमों पर स्थिर रहनेवाले तो कई निकल भी सकते हैं, लेकिन अनुकूल परिषह के कारण व्रत-नियम से पतित न होनेवाले लोग बहुत कम निकलेंगे। प्रतिकूल परिषह से मतलब है शारीरिक कष्ट, भूख-प्यास, चलने-फिरने, शीत-ताप के कष्ट आदि। और अनुकूल परिषह से मतलब है धन, स्त्री मान प्रतिष्ठा, खान-पान आदि का प्रलोभन। इन दोनों प्रकार के परिषहों में से प्रतिकूल परिषह के उपस्थित होने पर व्रत-नियम पर स्थिर रहना उतना कठिन नहीं है, जितना कठिन अनुकूल परिषह होने पर व्रत-नियम को सुरक्षित रखना है। लेकिन ऐसे अनेक लोग हुए हैं, और होंगे, जो अनुकूल परिषह होने पर भी अपने व्रत-नियम पर दृढ़ रहे। संसार-त्यागी साधुओं में ही नहीं किन्तु संसार-व्यवहार में रहनेवाले गृहस्थों में से भी ऐसे अनेक हुए हैं, जो अनुकूल परिषह होने पर भी अपने व्रत-नियम पर दृढ़ रहे। इतिहास-प्रसिद्ध दुर्गादास राठोड़, औरंगजेब के बन्दी खाने में कैद था। औरंगजेब की बेगम गुलेनार, बहुत सुन्दरी थी। वह ऐसी सुन्दरी थी, कि कठोर-हृदय औरंगजेब भी उसकी सुन्दरता के कारण उसका दास था, और उसके इशारे पर काम करता था। ऐसी सुन्दरी गुलेनार, रात के समय जब दुर्गादास के पास गई, और उसने दुर्गादास से कहा, कि—यदि तुम मुझे

अपनी प्रेयसी बना लो, तो मैं तुम्हें बन्दीखाने से छुड़ा कर मृत्यु से बचा लूँगी। बल्कि, औरंगजेब को मार कर तुम्हें भारत का बादशाह बना दूँगी। एक सुन्दरी का मिलना, जीवन बचना, और ऐसे राष्ट्र का स्वामित्व मिलना किसको प्रलोभन में न डालेगा! ऐसे बड़े प्रलोभन को ठुकरा कर व्रत-नियम पर स्थिर रहना बहुत ही कठिन है, लेकिन दुर्गादास ने इस प्रलोभन को ठुकरा दिया। उसने प्राण देना तो सहर्ष स्वीकार किया, किन्तु उसके साथ दुराचार में प्रवृत्त होना स्वीकार नहीं किया। यह बात बहुत पुरानी भी नहीं है, किन्तु कुछ ही सौ वर्ष की है। उस समय भारत में मुसलमानी राज्य था, और इस कारण भारत ऐयाशी के चुंगल में बहुत कुछ फँस चुका था। उस समय भी जब भारत में ऐसा पुरुष निकला, तो ढाई हजार वर्ष पहले—जब कि भारत के लोग दुराचार को प्रायः जानते ही न थे, किन्तु महपाप मानते थे, उस समय—यदि ऐसे अनेक गृहस्थ रहे हों—जो इस प्रकार के अनुकूल परिषह होने पर भी अपने व्रत नियम पर दृढ़ रहे—तो क्या आश्चर्य है! ऐसे अनेक लोगों में से, सुदर्शन अनुकूल और प्रतिकूल दोनों प्रकार के परिषह सह कर भी अपने व्रत—नियम पर किस प्रकार दृढ़ रहा, यह बताया जाता है।

सुदर्शन, पौषधशाला में अकेला और धर्मध्यान में निमग्न बैठा

हुआ था। उसने, योग्य स्थान और समय समझ कर, कुछ मर्यादित कायोत्सर्ग किया था। उसको इस बात की किंचित् भी आशङ्का न थी, कि यहाँ कोई आवेगा और मुझे उठा ले जावेगा। सहसा पंडिता और उसकी साथिनियों ने सुदर्शन को घेर लिया, तथा उसे उठा कर महल में ले आई। यह सब होने पर भी सुदर्शन मौन रहा, कुछ भी नहीं बोला। वह सोचता था, कि मैंने कुछ समय तक के लिए इस शरीर का उत्सर्ग कर दिया है, इससे ममत्व त्याग दिया है, इसलिए इस शरीर का कोई कुछ भी करे, मुझे अपने आत्मा को धर्मध्यान से विलग न होने देना चाहिए। इसके सिवा, कायोत्सर्ग करना उपसर्गों को आमन्त्रित करने के लिए ही है। जब मैंने उपसर्गों को आमन्त्रित किया है, तब मुझे अनुकूल या प्रतिकूल जो भी उपसर्ग हों, उन्हें सहर्ष सहना चाहिए, घबराना या भय न खाना चाहिए। ये इस शरीर को उठा कर ले जाती हैं, तो ज्यादा से ज्यादा इसे नष्ट कर डालेंगी। इससे अधिक तो कुछ कर नहीं सकतीं, और शरीर को मैं पहले ही उत्सर्ग कर चुका हूँ। फिर इनके इस कार्य से मेरी क्या हानि है!

इस प्रकार सोच कर, सुदर्शन मौन ही रहा। यदि वह थोड़ा भी बोलता, या किसी प्रकार की चेष्टा करता तो उस दशा में पंडिता या दासियों का यह साहस नहीं हो सकता था, कि वे उसे

उठा कर ले जातीं। कम से कम उन्हें लौकिक अपवाद का भय तो होता ही, और इस कारण वे सुदर्शन को न ले जा सकतीं। इसी प्रकार यदि सुदर्शन, बाज़ार में या महल के द्वार पर भी बोल जाता, तो उस दशा में भी पहरेदार उसकी सहायता करते, और उसे महल में न ले जाने देते। लेकिन वह तो पहले ही ऐसा निश्चय करके बैठा था, कि इस शरीर का कोई कुछ भी करे, मैं उसकी रक्षा का प्रयत्न न करूँगा, न इसकी रक्षा के लिए किसी से सहायता ही माँगूँगा। इस निश्चय के कारण ही वह कुछ भी नहीं बोला, न दासियों या पंडिता से ही यह कहा, कि तुम मुझे कहाँ और क्यों ले जाती हो। वह तो दासियों के सिर पर भी उसी प्रकार धर्मध्यान में मग्न बैठा रहा, और महल में भी वैसा ही बैठा रहा, जैसा पौषधशाला में बैठा था। उसके समीप, पौषधशाला और महल अथवा घास के सन्थारे और दासियों के सिर में कोई अन्तर न था।

पंडिता और उसकी सहेलियाँ, सुदर्शन सेठ को राजमहल के एक सजे हुए एकान्त भाग में—जो अभया की सम्मति से पहले से ही नियत था—बैठा कर, और बाहर से किवाड़ बन्द करके चली गईं। इस तरह की घटना के कारण, मनुष्य के हृदय में अनेक प्रश्न और बहुत-सी शंकाएँ उत्पन्न हो सकती हैं। यह विचार ही ही आता है, कि मैं यहाँ किस उद्देश्य से लाया गया हूँ,

और मुझे क्यों बैठाया गया है। इसी प्रकार यह भय या आशंका होना भी स्वाभाविक है, कि यहाँ मुझ पर किसी प्रकार का अभियोग न लगा दिया जावे, और मैं किसी षड्यन्त्र का शिकार न बन जाऊँ लेकिन सुदर्शन के मन में न तो किसी प्रकार का कोई प्रश्न ही पैदा हुआ, न कोई भय ही। वह तो, पौषधशाला की भाँति धर्म-चिन्तवन ही करता रहा।

जिस स्थान पर सुदर्शन को पंडिता बैठा गई थी, कुछ ही देर बाद उस स्थान का किंवाड़ खुला, और वस्त्राभूषण से सुसज्ज सुन्दरी अभया, सुदर्शन के सामने उपस्थित हुई। सुदर्शन को देख कर, उसके हृदय में एक दूषित प्रेम की लहर दौड़ गई। वह, गद्गद् हो उठी फिर भी त्रियाचरित्र-कुशल होने के कारण उसने आश्चर्य और अनभिज्ञता का भाव दर्शा कर कहा—हैं! यह कौन है, जो रात के समय यहाँ छिप कर बैठा है! तुम कौन हो? अरे यह तो बोलता भी नहीं है! इसकी आकृति से तो जाना जाता है, कि यह नगरसेठ सुदर्शन है! मैंने, नगरसेठ सुदर्शन की जैसी आकृति सुन रखी है, इसकी आकृति भी वैसी ही है। हो सकता है, कि तुम नगरसेठ ही होओ, लेकिन इस समय यहाँ कैसे आये? तुमको तो महाराज ने धर्म-ध्यान के लिए नगर में रहने की स्वीकृति दी थी, फिर तुम धर्म-ध्यान न करके, यहाँ कैसे और किस इच्छा से आये हो? बोलो,

जल्दी बोलो, नहीं तो अभी पहरेदारों को बुलाकर तुम्हें पकड़वाये देती हूँ। यदि तुम ठीक-ठीक यह सब बात मुझ से कह दोगे, तब तो मैं तुम पर प्रसन्न होऊँगी, और तुम्हें क्षमा भी कर दूँगी, अन्यथा भारी से भारी दंड दूँगी।

इस कथन से अभया का यह उद्देश्य था, कि सुदर्शन भय-भीत हो जावेगा, और फिर प्राणों के भय से, मैं जैसा कहूँगी, वैसा ही करेगा। लेकिन अभया के यह कहने पर, सुदर्शन मौन ही बैठा रहा, कुछ भी नहीं बोला। जैसे, उसके कानों में अभया की बात पड़ी ही न हो।

सुदर्शन को मौन देख कर अभया कहने लगी, कि—क्या तुम यह नहीं जानते कि मैं कौन हूँ? मैं, यहाँ की महारानी हूँ। मैं जो चाहूँ, वह कर सकती हूँ। ऐसा होते हुए भी, मैं तुम को बोलने के लिए कहती हूँ, लेकिन तुम बोलते तक नहीं! तुम में ऐसी धृष्टता है! यदि तुम्हारे स्थान पर और कोई होता, तो मैं उसे मृत्यु दंड दिया जाने के लिए कभी से सिपाहियों के हवाले कर चुकी होती, लेकिन तुम नगर सेठ हो, और सच्ची बात तो यह है, कि तुम्हारे प्रति मेरे हृदय में प्रेम है, इसी से मैंने तुम्हारे साथ कोई कड़ा व्यवहार नहीं किया। तुम मेरे महल में आये, इस तुम्हारे अपराध को मैं क्षमा करती हूँ, और इसका एक मात्र कारण यही है, कि मैं तुम्हें चाहती हूँ। तुम्हारे प्रति,

मुझे अनुराग है। इसलिए अब तुम निर्भय होकर बोलो, उठो, और मेरे साथ दाम्पत्य सुख भोगो। मेरी और तुम्हारी जोड़ी भी कैसी अच्छी है! जैसी सुन्दरी मैं हूँ, वैसे ही सुन्दर तुम भी हो, और मैं इस राज्य की महारानी हूँ, तो तुम भी नगर सेठ हो। मैं भी युवती हूँ, और तुम भी युवक हो। तुम कल्प वृक्ष के समान हो, और मैं अमृत-बेल के समान हूँ। ऐसी समान जोड़ी कभी-कभी ही मिला करती है, और आज यह संयोग भी अपने सौभाग्य से ही मिला है। यह स्थान एकान्त भी है, सब तरह की भोग-सामग्री से सुसज्जित भी है, और योगा योग से आज यहाँ महाराजा भी नहीं हैं, न कोई दूसरा पुरुष ही है। इसलिए उठो, देर न करो, इस शुभ संयोग का लाभ लो। मैंने जब से तुम्हारे रूप सौन्दर्य की प्रशन्सा सुनी है, तभी से मेरी इच्छा तुम्हारे साथ प्रेम-सम्बन्ध करने की थी, लेकिन अब तक मेरा और तुम्हारा मिलना ही नहीं हुआ। आज, इच्छा पूर्ण होने का अवसर आया है। इस अवसर के मिलने में मेरा भी सद्भाग्य है, और तुम्हारा भी। मेरा सद्भाग्य तो इससे है, कि मेरी दीर्घकाल की इच्छा पूर्ण होगी, और तुम्हारा सद्भाग्य इससे है, तुमको मुझ ऐसी सुन्दरी और एक महाराजा की महारानी अनायास ही प्राप्त हो रही है; तथा तुम से प्रेमयाचना कर रही है। ऐसे अवसर पर विलम्ब अवांछनीय है, इसलिए प्रेम से बोलो। किसी प्रकार का भय न करो।

अभया की बातों को सुन कर भी सुदर्शन पूर्ववत् मौन ही रहा कुछ नहीं बोला। वह अभया की बातों से समझ गया, कि मुझे यहाँ किस उद्देश्य से लाया गया है; लेकिन उसका तो निश्चय ही था, कि चाहे प्राण भी जावें, तब भी मैं परदारागामी नहीं बन सकता। इसलिए अभया की बातों का, सुदर्शन पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। वह तो अभया की बातों को सुन कर यही सोचता था, कि काम के प्रभाव से यह माता, नीति-धर्म को किस प्रकार भूल रही है! राजा की पत्नी होने के कारण यह प्रजा की माता है, और मैं भी इसकी प्रजा में का एक व्यक्ति हूँ इसलिए मेरी भी माता है, लेकिन कामान्धा होने के कारण यह माता इस सम्बन्ध को भूल रही है, और अपने पुत्र के साथ व्यभिचार करना चाहती है; तथा इस लिए कपट पूर्ण बातें कर रही है। इसने पहले तो इस प्रकार की अनभिज्ञता प्रकट की, कि जैसे मेरे को यहाँ लाया जाने का हाल यह जानती ही नहीं है। परन्तु धीरे २ यह स्वयं ही सब बातें खोल रही है। इसी प्रकार यह स्वयं अमृतबेल बन कर मुझे कल्प वृत्त बनाना चाहती है, और परिणाम निकालना चाहती है विष! एक ओर जिसे अमृतबेल और कल्पवृक्ष कहती है, दूसरी ओर उसी से भयंकर पाप रूपी विष पैदा करना चाहती है; यह इसका कैसा अज्ञान है! यह तो काम से अन्धी बन कर इस तरह के अज्ञान में पड़ रही है, परन्तु मुझे तो अपने और इस माता के

सम्बन्ध तथा स्वयं के व्रत नियमों का ध्यान रखना ही चाहिए। इसकी बातों में न फँस कर, सम्बन्ध और व्रत-नियमों का पालन करना ही चाहिए।

अभया के इतना कहने पर भी जब सुदर्शन कुछ नहीं बोला, किन्तु पहले की ही तरह स्थिर बैठा रहा, तब अभया को कुछ निराशा हुई। वह सोचने लगी, कि इसके सामने तो मेरा सब प्रयत्न निष्फल ही रहा! यह तो बोलता भी नहीं! और मेरी बातों को सुन कर भी इस तरह बैठा है, जैसे पत्थर का बना हुआ हो! यह बनिया है। बनिया डरता भी ज्यादा है, और लोभ में भी ज्यादा फँसता है। इसलिए इसको बड़े से बड़ा भय भी देना चाहिए, और प्रलोभन भी। सम्भव है, कि यह इस उपाय से मेरा कहना मानने को तय्यार हो जावे। लेकिन भय देने से पहले प्रलोभन देना अच्छा होगा। यदि यह प्रलोभन में पड़ कर मेरा कहना मानेगा, तो उस दशा में मेरे साथ आनन्दपूर्वक दाम्पत्य व्यवहार करेगा; और भय से मेरा कहना मानने पर इसका हृदय संकुचित रहेगा, इस में प्रसन्नता न रहेगी।

इस प्रकार विचार कर अभया सुदर्शन को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए फिर प्रयत्न करने लगी। वह, हाव-भाव दिखाती हुई मधुर और नम्र शब्दों में कहने लगी, कि—प्रिय, सुदर्शन, मैं तुम्हें बुद्धिमान समझती थी, और सारा नगर ऐसा ही

मानता है कि तुम बुद्धिमान हो, लेकिन जान पड़ता है, कि इस समय तुम्हारी बुद्धि कुंठित हो गई है। इसी से तुम मेरे कथन को सुन कर भी चुपचाप बैठे हो। मेरे लिए तुम इतना भी नहीं सोचते, कि यह कौन है! मैं, इस राज्य की एक मात्र स्वामिनी हूँ। महाराजा मेरे हाथ में हैं। यदि मैं चाहूँ तो संकेत मात्र से किसी कंगाल को धनसम्पन्न बना सकती हूँ, और धनवान को कंगाल बना कर घर-घर भीख मांगने योग्य कर सकती हूँ। तुम इतना तो सोचो, कि जब मैं तुम्हारे साथ प्रेम सम्बन्ध जोड़ कर तुम्हें अपना बना रही हूँ, और स्वयं तुम्हारी बन रही हूँ तब तुम्हारे लिए किस बात की कमी रह सकती है! मैं, राज्य के अच्छे-अच्छे रत्न तुम्हें प्राप्त करा दूँगी, तुम्हारी प्रतिष्ठा अधिक बढ़ा दूँगी, इतना ही नहीं, किन्तु यदि तुम चाहोगे तो इस विशाल राज्य का स्वामित्व भी तुम्हें प्राप्त हो सकेगा, और तुम यहाँ के राजा बन सकोगे। महाराजा का जीवन भी मेरे हाथ में है, और मृत्यु भी मेरे हाथ में है। यदि मैं चाहूँ, तो एक क्षण में ही उन्हें सदा के लिए समाप्त करके, उनके स्थान पर तुम्हें राजा बना सकती हूँ। तुम इन बातों को नहीं समझते, और चुपचाप बैठे हो, यह तुम्हारी कैसी भूल है! जो हुआ सो हुआ, अब इस तरह की भूल न करो, किन्तु उठ कर मेरे साथ प्रेम-सम्भाषण करो, और यह सेज तय्यार है, इस पर मेरे साथ आनन्द उड़ाओ। तुम, किसी प्रकार का किंचित् भी

भय न रखो । यह न सोचो कि महाराजा को यह रहस्य मालूम हो जावेगा तो न मालूम क्या होगा ! मेरा और तुम्हारा प्रेम-सम्बन्ध मेरे और तुम्हारे सिवा कोई तीसरा किसी भी तरह नहीं जान सकता । तुम इसी प्रकार से विचार लो, कि महल के द्वार पर कैसा कड़ा पहरा लगा हुआ है ! किसी पुरुष का आना तो दूर की बात है, कोई पक्षी भी नहीं आ सकता ! फिर भी मैंने तुम्हें किस प्रकार मँगवा लिया ! इसी तरह भविष्य में भी मेरा और तुम्हारा प्रेम-सम्बन्ध कोई नहीं जान सकेगा । यह बात दूसरी है, कि अपन स्वयं ही इस प्रेम-सम्बन्ध को राजा और रानी के रूप में प्रकट करें, अन्यथा इसका पता किसी को भी नहीं हो सकता । इन सब बातों के साथ ही मैं तुम्हें यह भी विश्वास दिलाती हूँ, कि मैं तुम्हारे साथ के प्रेम-सम्बन्ध को यावज्जीवन निभाऊँगी । कभी और किसी भी दशा में न टूटने दूँगी । साथ ही, मैं तुम्हारी आज्ञाकारिणी भी रहूँगी । इससे अधिक क्या चाहते हो ?

यह कह कर अभया, सुदर्शन के सामने हाथ जोड़ने लगी, उससे अनुनय विनय करने लगी, और प्रेम-सम्बन्ध की भिक्षा चाहने लगी । अनुनय विनय करती हुई अभया, रोने तक लगी, तथा कहने लगी, कि—मैं तुम्हारे सामने इस प्रकार दीनता दिखाती हूँ, तुम्हारे सामने हाथ जोड़ती हूँ, तुम्हारे लिए सब प्रकार की प्रतिज्ञाएँ भी करती हूँ; एवं तुम्हें अपना सर्वस्व समर्पण

करके अपना हृदयेश्वर बनाती हूँ, फिर भी तुम क्यों नहीं बोलते? यदि न बोल कर मेरी परीक्षा करना चाहते हो, तो इस प्रकार कब तक मेरी परीक्षा करते रहोगे? अब तो परीक्षा की सीमा हो चुकी, इसलिए अब मुझ पर दया करो, और मुझे अपना कर हृदय से लगाओ।

अभया द्वारा कही गई इन सब बातों को सुदर्शन, चुपचाप बैठा हुआ सुन रहा था, और उन पर गहराई से विचार भी करता जा रहा था। वह सोचता था, कि यह माता मुझे बुद्धिमान समझती है, फिर भी मुझसे वह कार्य कराना चाहती है, जिसका करना बुद्धिमानों के लिए सर्वथा अयोग्य है। कोई बुद्धिमान, अपनी प्रतिज्ञा भंग करने के लिए तय्यार नहीं हो सकता। फिर मैं प्रतिज्ञा भंग करके, बुद्धिहीनता का परिचय कैसे दूँ! यह अपनी शक्ति का वर्णन करके मुझे सम्पन्न बनाने का कहती है। वैसे तो माता का यह कर्त्तव्य ही है, कि वह पुत्र को सब प्रकार से सुखी बनाने का प्रयत्न करे, उसे सम्पन्न बनावे, लेकिन यह माता-पुत्र के नाते मुझे सम्पन्न नहीं बनाना चाहती, किन्तु दुराचार के बदले सम्पन्न बनाना चाहती है। परन्तु इस तरह की सम्पन्नता, और इस तरह से मिला हुआ धन मेरे किस काम आवेगा। क्या थोड़े से धन के लोभ से, अथवा राज्य के लोभ से मैं अपना शील इसके हाथों बेच दूँ! मुझसे, यह कदापि नहीं हो सकता! यह कहती है, कि मैं महाराजा को मार कर तुम्हें राजा बना

दूँगी। यह ऐसा कर भी सकती हैं, लेकिन इस तरह के राज्य को मैं क्या करूँगा! और ऐसा राज्य मेरे पास कितने दिन ठहर सकेगा! जिस उद्देश्य से यह अपने पति को मार कर मुझे राज्य देगी, क्या उसी उद्देश्य से मुझे मार कर दूसरे को राज्य देने में संकोच कर सकती है! इसे जब विवाहित पति को मार डालने में भी संकोच न होगा, तब जारपति को मारने में संकोच क्यों होगा। यह कहती है, कि मेरा और तुम्हारा प्रेम सम्बन्ध कोई तीसरा कदापि नहीं जान सकता, लेकिन इसका यह कथन भी झूठ है! इसने जिनके द्वारा मुझे उठवा कर मँगवाया है, क्या वे नहीं जानतीं, कि रानी ने दूसरे पुरुष को क्यों मँगवाया है! यह मेरे साथ यावज्जीवन सम्बन्ध निभाने का कहती है, परन्तु इसको यह विचार नहीं होता, कि मेरे इस कथन पर किसी को कैसे विश्वास होगा! यह तो एक साधारण बुद्धि वाला व्यक्ति भी सोच सकता है, कि जो स्त्री—सैकड़ों, सहस्रों, पुरुषों के सम्मुख विवाहित पति से की गई अपनी प्रतिज्ञा ठुकराने के लिए तय्यार है, वह जारपति से की गई प्रतिज्ञा को कब निभा सकती है! इस प्रकार यह माता जो कुछ भी कह रही है, वह स्पष्ट ही कपट है, झूठ है, प्रपंच है, लेकिन इसका विचार इसे नहीं होता। यह ऐसा ही समझती है, कि मैं अपनी इन बातों से दूसरे को छल लूँगी। यह मेरी माता है, और मैं इसका

पुत्र हूँ। इस नाते इसके सामने मुझे हाथ जोड़ने चाहिएँ, और इससे अनुनय-विनय करनी चाहिए, लेकिन यह माता काम के वश होकर इस पद्धति से विपरीति कार्य कर रही है। मनुष्य जब कामवश हो जाता है, तब ऐसा होता ही है! यह तो कामवश होकर विपरीति कार्य कर रही है, परन्तु मुझे इसकी तरह का कार्य न करना चाहिए। राजा की पत्नी होने के नाते भी यह मेरी माता है, और मेरी प्रतिज्ञानुसार परदारा होने के कारण भी मेरी माता है। इसलिए मुझे वही कार्य करना चाहिए,जो पुत्र के लिए उचित हो।

इस प्रकार सुदर्शन, अभया की बातें सुन कर चुपचाप उनकी वास्तविकता पर विचार करता जाता था। अभया के बहुत रोने, अनुनय-विनय करने और प्रलोभन देने पर भी सुदर्शन स्थिर ही बैठ रहा, किंचित् भी विचलित नहीं हुआ। इतने प्रयत्न पर भी जब अभया सुदर्शन को अपने अनुकूल बनाने में असफल रही, तब वह खीज उठी। उसने निश्चय किया, कि अब भय देने के सिवा दूसरा कोई मार्ग इसे वश करने का नहीं है; इसलिए अब भय देने का उपाय ही काम में लाना चाहिए। इस प्रकार सोच कर उसने अपनी आँखें तान लीं, अपने चेहरे को लाल कर लिया, अपने प्रशस्त भाल पर अनेक सळ डाल लिये, और फिर पैर पटक कर हाथ हिलाती हुई सुदर्शन से कहने लगी, कि—अरे

बनिये, मेरे सामने तेरा इतना साहस ! तू कैसा भी हो, फिर भी तू है तो मेरी प्रजा में का ही व्यक्ति ! ऐसा होते हुए भी, मैं तुझ से इस प्रकार अनुनय-विनय कर रही हूँ, तेरे लिए सब कुछ करने को तय्यार हूँ, और स्वयं तेरी बन रही हूँ, लेकिन तू अकड़ता ही जा रहा है ! तुझे इतना अभिमान है ! जानता नहीं कि मैं कौन हूँ ? तुझे, अपने जीवन की भी कुछ पर्वा है या नहीं ? मैं, सन्तुष्ट होने पर तो अमृतबेल की तरह हूँ, लेकिन क्रुद्ध होने पर पैनी तलवार के समान हूँ। मैं तेरे को यह अन्तिम निर्णय सुनाये देती हूँ; कि यदि तू मेरी बात मान लेगा तब तो मैं तेरी हूँ, तेरे लिए सब कुछ करूँगी, और तेरी आज्ञा में रहूँगी, लेकिन यदि तूने बात न मानी, तो फिर तुझे जीवन से हाथ धोना पड़ेगा। सारान्श यह, कि एक ओर तो मैं हूँ; और मेरे साथ ही यह सारा राजपाट तथा तेरा स्वयं का जीवन है, और दूसरी ओर मृत्यु है। तू, इन दोनों में से किस को पसन्द करता है, यह सोच ले। यदि मुझ को अपनावेगा, तब तो तेरा जीवन भी रहेगा, और तू इस राज्य का स्वामी भी बन सकेगा, अन्यथा तुझे शूली द्वारा मरना पड़ेगा।

क्रोध करती हुई रानी, सुदर्शन से इस तरह कह रही थी। उस समय वह, साकार वर्षाऋतु की तरह बन गई थी। उसके पैर पटकने की आवाज़, गम्भीर मेघध्वनि के समान थी। उसके रंग-विरंगे और हिलते हुए वस्त्र, बादलों के समान थे। उसका मुख

विद्युत के समान था। और उसके मुख से निकलनेवाले शब्द, जलधारा की तरह थे। यदि कोई दूसरा व्यक्ति होता, तो वह रानी रूपी वर्षाऋतु से अवश्य ही हार जाता, उसके सामने नतमस्तक हो जाता, और जैसा वह कहती वैसा ही करना स्वीकार कर लेता, लेकिन सुदर्शन सेठ उस मगसेलिया पत्थर के समान था, जिसका वर्णन नन्दी सूत्र में आया है। इसलिए रानी रूपी वर्षा उसका कुछ न बिगाड़ सकी, न उसे पराजित ही कर सकी।

नन्दी सूत्र में एक जगह उदाहरण देते हुए यह आया है, कि एक बार पुष्कलावर्त नाम के मेघ को यह अभिमान हुआ, कि मैं सब शक्ति रखता हूँ, और जो चाहूँ वह कर सकता हूँ। मैं जिस पर भी चाहूँ, विजय प्राप्त कर सकता हूँ। पुष्कलावर्त मेघ को इस प्रकार का अहंकार हुआ है, यह जान कर नारद ने उससे कहा, कि—तेरा यह अभिमान व्यर्थ है। तू एक मगसेलिया (मूंग की समानता वाले) पत्थर का भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता। वह मगसेलिया पत्थर कहता था, कि—'पुष्कलावर्त मेघ मुझे भी पराजित नहीं कर सकता है, तो किसी दूसरे को पराजित करने की तो बात ही अलग है। पुष्कलावर्त मेघ, व्यर्थ ही अभिमान करता है।' इसलिए यदि तेरे को अपने सामर्थ्य का अभिमान है, तो उस मगसेलिया पत्थर को पराजित कर न! तू उसको पराजित कर देगा, तब तो तेरा नाम सार्थक है, अन्यथा तेरा अभिमान व्यर्थ ही है।

नारद का यह कथन सुन कर, पुष्कलावर्त मेघ गर्व करके मगसेलिया पत्थर पर विजय प्राप्त करने के लिए चला। वह सात दिन तक अपनी पूरी शक्ति से मगसेलिया पत्थर पर बरसता रहा, लेकिन उसको न भिगो सका। वह तो वैसा ही बना रहा। बल्कि उसके ऊपर की तथा आसपास की मिट्टी साफ हो गई, जिससे वह पहले की अपेक्षा अधिक चमकने लगा। जब पुष्कलावर्त मेघ थक गया, तब नारद ने उससे कहा, कि—मैंने ठीक कहा था न! तेरा अभिमान व्यर्थ है। इसलिए अब घर जा, और व्यर्थ का श्रम न कर। नारद का यह कथन सुन कर, पुष्कलावर्त मेघ लज्जित होता हुआ लौट आया।

यहाँ इस उदाहरण से यह बताना है, कि जिस प्रकार पुष्कलावर्त मेघ मगसेलिया पत्थर को भिगोने में असमर्थ रहा, उसी प्रकार रानी रूपी वर्षा भी सुदर्शन को उसके ध्येय से विचलित करने में असमर्थ रही। उसका सब परिश्रम व्यर्थ रहा।

सुदर्शन ने सोचा, कि अब मुझे मौन ही न रहना चाहिए, किन्तु इस माता को समझाने का प्रयत्न करना चाहिए। अब मेरा ध्यान भी समाप्त हो गया है, और इस माता को समझाना मेरा कर्त्तव्य भी है। यह कहती है, कि तुम निर्दय हो, इसलिए मुझे अपनी दया का परिचय देना चाहिए। यदि यह माता समझ गई तब तो ठीक ही है, अन्यथा इसके कथनानुसार मैं मृत्यु का

स्वागत तो अवश्य करूँगा ही, लेकिन मृत्यु के भय से—अथवा किसी प्रकार के प्रलोभन से शील भंग नहीं कर सकता।

मुसकराता हुआ सुदर्शन, अभया से कहने लगा, कि—माता, आप अपने मातृधर्म को मत ठुकराइये। आप मेरी माता हैं, और मैं आपका बालक हूँ। नीतिकार, प्रत्येक व्यक्ति के पाँच माता मानते हैं। उन पाँच माता में आपकी गणना सर्व-प्रथम है इसलिए आप बड़ी माता हैं। नीतिकारों ने कहा है, कि—

राजपत्नी गुरुपत्नी, मित्रपत्नी तथैव च।
पत्नीमाता स्वमाता च, पंचैतेमातरः स्मृताः॥

अर्थात्—राजा की स्त्री, गुरु की स्त्री, मित्र की स्त्री, पत्नी की माता और स्वयं की माता. नीतिकार ये पाँच माता कहते हैं।

जो राजा है, जिसने राज्य व्यवस्था और प्रजा की रक्षा का भार अपने पर ले रखा है, वह प्रजा के लिए पिता के समान है। इसलिए उसकी पत्नी—प्रजा के लिए—माता के समान है। इसके सिवा जिस प्रकार प्रजा की रक्षा का प्रयत्न राजा करता है, उसी प्रकार रानी भी—प्रजा की रक्षा का प्रयत्न करती है। जिस प्रकार जन्म देने वाले माता-पिता सन्तान की रक्षा और उसका पालण-पोषण करते हैं, उसी प्रकार राजा और रानी अपनी प्रजा का पालन-पोषण करते हैं। इसलिए राजा और रानी, प्रजा के

पिता माता हैं। आप भी रानी हैं इसलिए मेरी माता हैं, और मैं आप की प्रजा में का एक व्यक्ति हूँ, इसलिए आपका पुत्र हूँ !

दूसरी माता गुरु-पत्नी है। जिसने अपने को पढ़ाया लिखाया और कला सिखा कर व्यवहार के योग्य बनाया है, वह गुरु है, और उसकी पत्नी भी माता है। तीसरी माता, मित्र की पत्नी है। जो समय पर सहायता करता है, तथा बुरे काम से बचा कर अच्छे काम में प्रवृत्त करता है, वह मित्र है। उस मित्र की पत्नी भी माता है। चौथी माता, पत्नी की माता है। स्वयं की जो अर्द्धाङ्गा है, उसकी माता अपनी भी माता है। इन चार माताओं के सिवा, पाँचवीं माता स्वयं को जन्म देने वाली है, लेकिन—जन्म देने वाली माता की अपेक्षा—प्रथम की चार माताओं का विशेष महत्व है, और सब से अधिक महत्व, राजा की पत्नी के नाते जो माता है उसका है। इस प्रकार आप मेरी सब माताओं में बड़ी हैं। फिर भी आप मुझ बालक पर इस प्रकार क्रुध क्यों हो रही हैं, और मुझ से वह कार्य करने के लिए कैसे कह रही हैं, जिसको करने का माता अपने बालक से कदापि नहीं कह सकती। आप जो कुछ कह रही हैं, या करने के लिए तय्यार हैं, वह कार्य न तो आप के योग्य है, न मेरे योग्य। आप मुझ से जिस कार्य की आशा करती हैं, वह कार्य मुझ से कदापि नहीं हो सकता; फिर चाहे आप कुछ भी कहें, या करें। जिस तरह

आपने अपना निश्चय सुना दिया है, उसी तरह मैं भी अपना निश्चय सुनाये देता हूँ, कि चाहे मेरु कांपने लगे, पृथ्वी आधार देना त्याग दे, और सूर्य प्रकाश के बदले अन्धेरा देने लगे, तब भी मैं सदाचार कदापि नहीं त्याग सकता। मैं परदारा-त्याग की प्रतिज्ञा कभी नहीं छोड़ सकता। मैं आप की उन सब आज्ञाओं का पालन करने को तय्यार हूँ, जो माता-पुत्र के सम्बन्ध के विरुद्ध न हों, लेकिन आपकी इस आज्ञा का पालन कदापि नहीं कर सकता, जो इस सम्बन्ध को तोड़नेवाली हो। आप मुझ से जो कुछ आशा करती हैं, या जिस उद्देश्य से आपने मुझे उठा मँगाया है, आपका वह मनोरथ मेरे द्वारा कदापि पूर्ण नहीं हो सकता। आप कहती हैं, कि तुझे दया नहीं आती और तू निर्दय है, परन्तु मेरे में मेरी भी दया है, और आपकी भी। इसी से मैं आपकी आज्ञा अस्वीकार कर रहा हूँ। आपने मुझे जो प्रलोभन दिया है, वह व्यर्थ है। मैं, इस तरह के प्रलोभन में नहीं पड़ सकता। यदि शील नष्ट करने के बदले में मुझे त्रिलोक का राज्य मिलता हो, तो मैं उसे भी ठुकरा दूँगा, लेकिन शील न त्यागूँगा। इसलिए आप अपने इस बालक पर तुष्ट होइये, और अपनी आज्ञा निवारण कर लीजिये। इस पर भी यदि आप अपनी हठ नहीं छोड़ना चाहतीं, तो यह आपकी इच्छा, परन्तु इस कारण अपनी प्रतिज्ञा न तोड़ूँगा। आपने मुझ से कहा है, कि एक

ओर मैं हूँ, और दूसरी ओर मृत्यु है, दोनों में से किसी एक को पसन्द कर ले। इसके उत्तर में मैं यह निवेदन करता हूँ, कि मैं आपको माता के सम्बन्ध से पसन्द करता हूँ, लेकिन किसी अनुचित सम्बन्ध के लिए कदापि पसन्द नहीं कर सकता। इस के लिए यदि आप मुझे मृत्युदण्ड देना चाहती हैं, तो आप जैसा भी चाहें, मुझे दण्ड दें। मेरे शरीर पर आपका पूर्ण अधिकार है। आप जब मेरी माता हैं, तब आपको मेरे शरीर पर स्वाभाविक ही सब अधिकार प्राप्त हैं। आप इस शरीर की चाहे रक्षा करें, अथवा इसे नष्ट करें। इसमें मुझे न तो किसी प्रकार की आपत्ति ही हो सकती है, न शरीर नष्ट होने से मेरी कोई हानि ही है। मेरी हानि तो शील नष्ट करने पर है, जिसे मैं किसी भी दशा में नष्ट नहीं कर सकता। अन्त में मैं आपसे यही निवेदन करता हूँ, कि आप अपने दूषित विचारों को बदल दें। ऐसा करने में ही कल्याण है।

सुदर्शन का यह उपदेश पूर्ण कथन, अभया को ज़रा भी नहीं रुचा। बल्कि, सुदर्शन के मुँह से स्वयं के लिए 'माता' शब्द सुन कर तो वह और भी क्रुद्ध हो उठी। यद्यपि सुदर्शन ने जो कुछ कहा था वह ठीक ही था, लेकिन जिस प्रकार सन्निपात के रोगी को पथ्य आहार भी अपथ्य आहार का फल देता है, उसी प्रकार सुदर्शन की बातें भी कामन्धा अभया के लिए क्रोध

बढ़ाने का ही कारण हुई। सुदर्शन का कथन समाप्त होते ही वह तमक कर कहने लगी, कि—तू माता किसको कहता है, और यह उपदेश किसे देता है, इसका विचार कर। मैं कपिला नहीं हूँ, जो तेरे वाग्जाल में फँस जाऊँ। तू कपिला के यहाँ से—स्वयं को नपुंसक कह कर—निकल भागा, लेकिन मेरे यहाँ से, किसी भी तरह बच कर नहीं जा सकता। मेरे यहाँ से, या तो मेरा कहना मान कर घर को जीवित लौट सकता है; या बन्दी बन कर शूली लगने के लिए ही जा सकता है। मैं तुझसे एक बार फिर यही कहती हूँ, कि तू मेरा कहना मान ले। इसी में तेरा कल्याण है। अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है। यदि तूने मेरा कहना न माना, तो मैं सिपाहियों को बुला कर अभी तुझे शूली लगवा दूँगी। सिपाहियों द्वारा पकड़वाने के पश्चात् चाहे तू मेरी बात मानना स्वीकार भी कर लेगा, तब भी मैं तुझे कदापि न छुड़ाऊँगी। फिर तेरे को छुड़ा कर, मैं स्वयं को महाराजा और जनता की दृष्टि में कलंकित नहीं कर सकती। फिर तो तुझे शूली पर चढ़ना ही होगा। इसलिए समझ, और मेरा कहना मान ले।

सुदर्शन के स्थान पर यदि कोई दूसरा पुरुष होता, तो सम्भवतः वह एकान्त स्थान में अभया ऐसी सुन्दरी को पाकर स्वयं ही पतित हो जाता। कदाचित रानी के रूप-सौन्दर्य और हाव-भाव आदि से बच जाता, तो उसके द्वारा दिये गये प्रलोभन में पड़ कर

पतित हो जाता। और इससे भी पतित न होता, तो मृत्यु-भय के कारण पतित होने से शायद ही बचता। लेकिन सुदर्शन, इन सब बातों के होने पर भी दृढ़ ही बना रहा। पतित नहीं हुआ।

रानी की बातों को सुन कर सुदर्शन ने समझ लिया, कि यह मोहान्ध है; इसको किसी प्रकार का उपदेश देना, या समझाने का प्रयत्न करना व्यर्थ है। इस प्रकार विचार कर, वह चुप ही रहा। कुछ भी नहीं बोला। रानी, बार बार कहना मानने के लिए कहती थी, लेकिन सुदर्शन कुछ भी उत्तर नहीं देता था। इसलिए वह उत्तरोत्तर उसी प्रकार चिढ़ती जाती थी, जैसे जुआरी आदमी दाँव हार कर चिढ़ता जाता है। उसने, सुदर्शन को अपने आधीन करने के लिए सब प्रयत्न कर लिये। कोई भी उपाय बाकी न रखा। अपनी शक्ति भर सब प्रयत्न करने पर भी जब सुदर्शन उसके आधीन नहीं हुआ, तब उसने सुदर्शन को एक अन्तिम चेतावनी और दी। उसने कहा, कि—अब भी मान जा, नहीं तो सिपाहियों को बुला कर उनके हाथ पकड़वा दूँगी, और इसी समय शूली पर चढ़वा दूँगी। जब उसकी इस चेतावनी का भी सुदर्शन पर कोई असर नहीं हुआ, और सुदर्शन पूर्व की भांति ही बैठा रहा, तब अभया बाघिन की तरह विफर उठी। उसने अपने हाथों से अपने शरीर के वस्त्र नोच डाले, अपने गालों और स्तनों पर नख के चिह्न बना लिये, तथा-यह करके-भय का घंटा बजा कर महल

रक्षक सैनिकों को आवाज दी। भय का घंटा और रानी की आवाज सुन कर, पहरे पर खड़े हुए सिपाही तत्क्षण उसी स्थान पर दौड़ आये। उन्होंने देखा, कि रानी अस्त-व्यस्त दशा में खड़ी है, और वहीं पर एक आदमी चुपचाप बैठा है। सिपाहियों को देखते ही उन पर रानी क्रोध जताती हुई कहने लगी, कि—तुम लोग किस तरह का पहरा देते हो ? पहरे पर तुम लोगों के होते हुए भी, यह दुष्ट यहाँ कैसे चला आया ? देखो, यह बैठा है ! इस दुष्ट को पकड़ो। इसने मेरा सतीत्व नष्ट करने का प्रयत्न किया था। यह मेरे शरीर पर टूटपड़ा था। इसने मेरे वस्त्र और मेरे शरीर को नोच डाला है। यह तो मैं वीरपुत्री और वीरनारी थी, इसी से इस दुष्ट से अपने सतीत्व की रक्षा कर सकी। यदि कोई दूसरी स्त्री होती, तो यह अवश्य ही उसका शील नष्ट कर डालता। जान पड़ता है, कि इसने आज अपनी दुर्भावना पूर्ण करने का अवसर देखा। इसने महाराजा की अनुपस्थिति से लाभ उठाना चाहा, और इसीलिए यह जार पुरुष किसी प्रकार तुम लोगों की दृष्टि बचा कर मेरे महल में घुस आया। देखो न, इसने मेरे शरीर और मेरे वस्त्रों की क्या दशा की है ! मैं, बडी कठिनाई से इसके पंजे से छूट कर भय का घंटा बजा सकी हूँ अब विलम्ब क्यों करते हो ? इसको पकड़ो, और ले जाकर शूली लगा दो। मैंने प्रण किया है, कि इस दुष्ट को जब तक शूली न मिल जावेगी, तब तक मैं अन्न जल ग्रहण न करूँगी।

अभया सोचती थी, कि इस दुष्ट को जब शूली लगाई जावेगी, तभी इसे पता लगेगा, कि रानी की बात न मानने का क्या फल मिला ! मैं, क्षत्राणी हूँ। यह अपने मन में स्वयं को बड़ा शीलवान समझता है, लेकिन इसका यह समझना थोड़ी ही देर में मिट जावेगा। इसको यह पता नहीं है, कि रानी ने कपिला से क्या प्रतिज्ञा की है, और वह प्रतिज्ञा पूर्ण न होने पर रानी को मरना होगा। कपिला से मैंने जो प्रतिज्ञा की थी, मेरी वह प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं हुई। मैंने कपिला की तो भर्त्सना की थी, लेकिन जिस कार्य को न कर सकने के कारण मैंने कपिला की भर्त्सना की थी, वह कार्य मैं स्वयं भी न कर सकी। अब मैं कपिला को मुंह कैसे बताऊँगी ! लेकिन जब यह शूली चढ़ा दिया जावेगा, तब मैं कपिला से कह सकूँगी, कि इससे ज्यादा तो और क्या किया जा सकता है ! उसने मेरा कहना नहीं माना, तो मैंने उसे शूली लगवा दी ! इस तरह अब प्रतिज्ञा पूर्ण न होने के कारण मुझे मरना न पड़ेगा।

रानी का कथन सुन कर पहरे वाले सिपाही, रानी द्वारा बताई गई अपनी असावधानी के लिए भयभीत हुए। इन बेचारों को क्या मालूम, कि यह पुरुष रानी के लिए ही उठा कर लाया गया था, लेकिन इसने रानी के कथनानुसार कार्य नहीं किया, इसलिए इस पर इस तरह का आरोप लगाया गया है, और इसके

साथ ही हमें भी असावधान रहने का अपराधी ठहराया जाता है। वे तो यही सोचते थे, कि हम लोग इस प्रकार की सावधानी से पहरा दे रहे हैं, फिर भी यह किस ओर से किस तरह घुस आया! हम लोगों की दृष्टि से बच कर यह महल में घुस आया है, और इसने महारानी पर बलात्कार करने की चेष्टा की है, इसलिए इसको कठोर से कठोर दंड मिलना चाहिए। जिसमें भविष्य में कोई दुष्ट ऐसा करने का साहस न करे।

इस प्रकार सोचते हुए सिपाहियों ने रानी की आज्ञानुसार सुदर्शन को पकड़ लिया; और कटुशब्द कहते हुए उससे पूछने लगे, कि—तू कौन है, तथा यहाँ किस तरह और क्यों आया? सिपाही लोग सुदर्शन से बार-बार ऐसा ही पूछने लगे, लेकिन सुदर्शन पूर्व की भाँति मौन ही बना रहा, कुछ भी नहीं बोला। तब अभया सिपाहियों पर क्रोध करके उनसे कहने लगी, कि—यह बोलेगा क्या! घटनास्थल पर अभियुक्त का पकड़ा जाना ही अभियोग की साक्षी है। इसलिए इसको ले जाकर शूली लगा दो।

यह कह कर, रानी वहाँ से चल दी। रानी के जाने के पश्चात, सिपाहियों के सरदार ने सुदर्शन के मुँह की ओर देख कर उसे पहचान लिया, और वह अपने साथियों से कहने लगा, कि—ये तो नगरसेठ हैं! ये यहाँ कैसे आ गये! कल उन्हें महाराजा

ने धर्म ध्यान करने के लिए नगर में रहने की स्वीकृति दी थी, और इस समय इनका वेश भी वही है, जो धर्म ध्यान करने के समय का होता है, इससे यह तो स्पष्ट है, कि ये धर्म ध्यान करने के लिए बैठे थे, लेकिन आश्चर्य यह है, कि ये यहाँ कैसे बैठे हैं! सारा नगर इनको विश्वस्त तथा सदाचारी मानता है। इनके सदाचार की सब प्रशन्सा करते हैं। इनको बुरे मार्ग पर जाते हुए न तो देखा ही गया, न सुना ही गया है। ऐसी दशा में सहसा यह विश्वास नहीं होता, कि ये महारानी के साथ व्यभिचार करने के लिए अपनी दृष्टि से बचकर महल में आये हों! जो आदमी छोटी-छोटी चोरी करता रहता है, उसके लिए तो यह माना भी जा सकता है, कि इसने बड़ी चोरी करने का साहस किया होगा; लेकिन जो छोटी चोरी भी नहीं करता है, वह साहस भी बड़ी चोरी का कैसे करेगा! इसके अनुसार ये नगरसेठ यदि किन्हीं दूसरी स्त्रियों के साथ दुराचार करते होते, तब तो यह भी कहा जा सकता, कि ये महारानी के साथ दुराचार करने के लिए आये होंगे, लेकिन जो न तो कभी पर स्त्री की ओर देखते ही हैं, न पर स्त्री की बात ही करते हैं, उनने एकदम से महारानी के साथ दुराचार करने के लिए महल में घुस आने, और महारानी का सतीत्व नष्ट करने का प्रयत्न किया हो, यह बात समझ में नहीं आती। परन्तु यह प्रश्न तो बाकी रह ही जाता है, कि फिर ये महल

में आये कैसे और किसलिए ? इस प्रश्न का उत्तर इन्हीं से पूछना चाहिए।

सिपाहियों का सरदार, सुदर्शन सेठ से पूछने लगा, कि— सेठजी यद्यपि हम लोग आप पर विश्वास करते हैं, और आपको सारा नगर सदाचारी मान रहा है, फिर भी आप पर रानी ने जो अभियोग लगाया है, वह आपने सुना ही है। इसलिए हम आप से पूछते हैं, कि आप यहाँ कैसे और क्यों आये ? वास्तविक बात क्या है, यह हमें बताने की कृपा कीजिये, जिसमें हम आपको शूली लगने से बचा सकें।

सिपाहियों के सरदार के इस प्रश्न पर भी, सुदर्शन कुछ नहीं बोला। वह सोचता था, कि ये लोग मुझ से वास्तविक बात पूछ रहें हैं; लेकिन इन से मैं वास्तविक बात कहूँ तो किस तरह ! राजा की पत्नी होने के नाते अभया मेरी माता है, और मैं उसको अपनी जबान से माता कह चुका हूँ इसलिए भी मेरी माता है। यदि वास्तविक बात प्रकट करूँगा, तो मेरी अभया माता का अपमान होगा, लोगों की दृष्टि में वह हल्की मानी जावेगी, और सम्भव है कि राजा भी उसे कोई दण्ड दे। इस प्रकार मेरे बोलने से, उस पर सब ओर से आपत्ति आ जावेगी। जिसको मैं माता मानता हूँ, उस पर मेरे कारण किसी प्रकार की आपत्ति आवे या उसका अपयश हो, यह मेरे लिए उचित नहीं है। पुत्र का यह

कर्त्तव्य नहीं है, कि वह माता को किसी प्रकार के संकट में डाले; किन्तु यह कर्त्तव्य है, कि स्वयं पर सब आपत्ति लेकर भी माता की रक्षा करे। इसलिए मुझ को चुप ही रहना चाहिए; चाहे मुझे सब संकटों का—यहाँ तक कि प्राण-नाश का—सामना भी क्यों न करना पड़े। अभया-माता के कथन से प्रकट है, कि यह सब आग कपिला की लगाई हुई है। यद्यपि कपिला ने कोई बात प्रकट न करने की प्रतिज्ञा की थी, लेकिन ज्ञात पड़ता है, कि अभया से उसने उसके यहाँ की घटना की बात प्रकट कर दी है, और इस प्रकार प्रतिज्ञा तोड़ डाली है। परन्तु मुझे तो उसके विरुद्ध भी कुछ न कहना चाहिए। उसने अपनी प्रतिज्ञा तोड़ दी, इस कारण, मुझे अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना ही चाहिए। इसके सिवा, मैंने कपिला को भी माता माना है, इसलिए उसकी प्रतिष्ठा की रक्षा करना भी मेरा कर्त्तव्य है।

सिपाहियों के सरदार ने सुदर्शन से कई बार पूछा, परन्तु सुदर्शन ने अपना मौन भंग नहीं किया। तब वह सिपाहियों से कहने लगा, कि ये तो कुछ भी नहीं बोलते! ऐसी दशा में सच्ची बात कैसे जानी जा सकती है! इनके न बोलने से तो 'मौनं सम्मति लक्षणम्' के अनुसार यही माना जा सकता है, कि महारानी द्वारा इन पर लगाया गया अभियोग ठीक है, और ये स्वयं पर लगे हुए अभियोग के विरुद्ध कुछ नहीं कह सकते।

यद्यपि ये सेठ धार्मिक और सदाचारी माने जाते हैं, परन्तु मन के परिणाम सदा समान नहीं रहते; इसलिए सम्भव है कि इनके मन में महारानी के प्रति बुरी भावना आई हो, और इसलिए ये महल में घुस आये हों। इसके सिवा, बहुत से धर्म ढोंगी बगुलाभक्त की तरह के होते हैं, जो बाहर से तो कुछ दिखाते हैं, लेकिन भीतर से कुछ और होते हैं। इन सेठ के विषय में अपन निश्चय-पूर्वक कुछ भी नहीं कह सकते। हो सकता है, कि इस घटना के पीछे कोई रहस्य हो, और यह भी हो सकता है, कि ये बुरे विचार से ही महल में आये हों। अभी तक तो, महारानी की बातों से और उनका शरीर देखने से इसी बात की पुष्टि होती है, कि ये बुरे विचारों से ही महल में आये। अपन इस विषयक कोई निर्णय नहीं कर सकते, इसलिए यही अच्छा होगा, कि इनको महाराजा के सामने उपस्थित कर दिया जावे। महाराजा इनके अपराध के विषय में आप ही निर्णय कर लेंगे। यदि महारानी की आज्ञानुसार अपन इनको शूली लगवा दें, और फिर कोई दूसरा रहस्य प्रकट हुआ, तो अपन उपालम्भ के पात्र होंगे। इसके सिवा, सम्भव है कि महाराजा के पूछने पर ये बोलें, और शूली से बच जावें।

सिपाहियों ने, सरदार की बात स्वीकार की। सरदार की आज्ञानुसार सिपाही लोग, सुदर्शन को बन्दी बना कर दधिवाहन के पास नगर से बाहर ले चले।

१३

अभियुक्त सुदर्शन

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥

अर्थात्—चाहे लोग निन्दा करें या स्तुति, चाहे लक्ष्मी आवे या चली जावे; लेकिन नीति निपुण धीर पुरुष न्याय मार्ग से ज़रा भी इधर-उधर नहीं होते।

भर्तृहरि के इस कथनानुसार, धीर पुरुष, मानापमान, सुख-दुःख हानि लाभ और जीवन-मृत्यु की अपेक्षा नहीं करते, किन्तु अपना ध्येय ही सिद्ध करना चाहते हैं। वे, न तो अनुकूल परिस्थिति के प्रलोभन में पड़ कर ही अपना ध्येय विस्मृत होते हैं, न प्रतिकूल परिस्थिति से घबरा कर ही! वे, अपने ध्येय के सन्मुख ऐसी सब बातों की उपेक्षा करते हैं, अपितु उन्हीं साधनों की ओर ध्यान देते हैं, जो उनके ध्येय की सिद्धि में सहायक हैं। सुदर्शन सेठ का एक ध्येय तो शीलपालन था, और दूसरा ध्येय था जिसे माता कहा, उस अभया की प्रतिष्ठा की रक्षा करना। प्रथम ध्येय को न त्यागने के कारण उसे बन्दी बनना पड़ा, यह बात तो पिछले प्रकरण में बताई ही जा चुकी है। अब यह देखते हैं, कि दूसरे ध्येय को न त्यागने पर उसे किस प्रतिकूल परिस्थिति का सामना करना पड़ा, और कैसी प्रतिकूल पिरिस्थति से बचने के लिए भी उसने अपना ध्येय नहीं त्यागा।

सरदार की आज्ञानुसार, सिपाही लोग सुदर्शन सेठ को पकड़ कर, राजा के सामने उपस्थित करने के लिए नगर से बाहर दधिवाहन के डेरे में ले गये। दधिवाहन, सो रहा था। सिपाहियों ने राजा के अंग रक्षकों द्वारा राजा को जगा कर सूचित किया, कि— नगर सेठ सुदर्शन इस समय महल में मिले, इसलिए उनको पकड़ कर लाया गया है। अंग रक्षकों द्वारा यह समाचार सुन कर,

दधिवाहन को बहुत ही आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा कि—नगरसेठ तो बहुत प्रतिष्ठित और सदाचारी है। वह मेरे महल में किसी बुरे विचार से गया भी हो, तब भी सहसा यह बात मानने में नहीं आ सकती। हो सकता है, कि इस घटना के पीछे कोई रहस्य हो। मुझे इस विषयक निर्णय किये बिना, आवेश में आकर कोई आज्ञा न देनी चाहिए। इसी प्रकार जब तक उस पर कोई अभियोग प्रमाणित न हो जावे, तब तक उसके सम्मान को भी धक्का न लगने देना चाहिये।

राजा ने, इस प्रकार सोच कर आज्ञा दी, कि प्रातःकाल तक सुदर्शन सेठ को सम्मानपूर्वक रखा जावे, और सवेरे मेरे सामने लाया जावे। सवेरे, वास्तविकता का निर्णय करके कोई आज्ञा दूँगा।

प्रातः काल होने पर; दधिवाहन स्वयं ही सुदर्शन के पास गया। वह, सुदर्शन पर न तो क्रुद्ध ही हुआ, न उसने कोई कड़ा शब्द ही कहा। किन्तु उसने सुदर्शन से पूछा, कि—सेठजी, तुम रात के समय महल में कैसे मिले? मैं तुम्हारा विश्वास करता हूँ, और तुम हो भी विश्वस्त आदमी, इसलिए यह तो नहीं कहा जा सकता कि तुम किसी बुरे विचार से महल में गये होओगे, फिर भी मैं जानना चाहता हूँ, कि तुम महल में कैसे और किस उद्देश्य से गये थे।

राजा का यह प्रश्न सुन कर भी, सुदर्शन चुप ही रहा। कुछ भी नहीं बोला। राजा ने कई बार पूछा, लेकिन सुदर्शन की ओर से कोई उत्तर नहीं मिला। तब राजा सोचने लगा, कि यह तो कुछ भी नहीं बोलता। इसका न बोलना सन्देह तो अवश्य उत्पन्न करता है, लेकिन किसी निर्णय पर नहीं पहुँचाता। इसलिए महल में चल कर इस विषयक खोज करनी चाहिए। सम्भव है, कि वहाँ पहुँचने पर वास्तविकता का पता लग जावे।

राजा दधिवाहन, महल में आया। सुदर्शन को भी महल में लाया गया। कौमुदी महोत्सव का अवसर व्यतीत हो जाने से, नगर-निवासी पुरुष भी नगर में आ गये। नगर के प्रायः सभी लोगों को यह मालूम हो गया, कि आज रात को सुदर्शन सेठ रानी के महल में पकड़ा गया है। यह खबर सुनकर, लोग इस विषय में तरह-तरह की बातें कहने लगे। कोई तो कहता था, कि नगरसेठ सुदर्शन ऐसा आदमी नहीं है, कि वह किसी बुरे-विचार से महल में गया हो। हो सकता है, कि इस घटना के पीछे कोई रहस्य हो। कोई कहता था कि राजा को नगरसेठ से अपनी हानि दिखी होगी, नगरसेठ प्रजा का पक्ष लेते हैं यह राजा को बुरा लगा होगा, इसलिए सम्भव है, कि राजा ने सेठ पर झूठा अभियोग लगाया हो। कोई कहता था, कि सुदर्शन परघर तो जाता ही नहीं है, ऐसी दशा में वह राजा के महल में जावे यह कैसे सम्भव है! इस प्रकार

लोग अनेक प्रकार की बातें करते थे।

राजा दधिवाहन, महल में आया। वह, अभया के भवन में गया। उसने देखा, कि अभया अस्त-व्यस्त दशा में पड़ी हुई लम्बे-लम्बे श्वास ले रही है? राजा को देख कर, अभया उठ खड़ी हुई। राजा ने उससे पूछा, कि—आज यह क्या बात है? कुशल तो है न? राजा का यह प्रश्न सुन कर, अभया रौद्ररूप धारण करके कहने लगी, कि—हाँ यही कुशल है, कि मेरा सतीत्व बच गया। सतीत्व बचने के सिवा, और तो उस दुष्ट बनिये ने मेरी सब दुर्दशा कर डाली है। यह देखो मेरे कपड़े फाड़ डाले हैं, तथा मेरे गाल और मेरे स्तन नोच डाले हैं। वह तो मेरा सतीत्व भी नष्ट कर डालता, लेकिन आपके प्रताप से मैं अपने सतीत्व की रक्षा कर सकी हूँ, और उस दुष्ट को सिपाहियों द्वारा पकड़वा सकी हूँ, उसके लिए मैंने यह प्रण किया है, कि अब इस संसार में या तो वही रहेगा या मैं ही रहूँगी; और जब तक वह जीवित है, तब तक अन्नजल ग्रहण न करूँगी। जब यह सुन लूँगी, कि उस अत्याचारी को प्राणदण्ड मिल गया, और वह इस संसार में नहीं है, तभी मुझे सन्तोष होगा और मैं अन्नजल लूँगी। मुझे आश्चर्य तो यह है, कि आपके राज्य में ऐसे-ऐसे दुष्ट बसते हैं; और उन्हें आपने प्रतिष्ठा प्रदान कर रखी है। आपने उस लम्पट को नगरसेठ बना रखा है, लेकिन उस दुराचारी को इसका किंचित् भी विचार नहीं

हुआ। उसने देखा, कि आज महल में रानी अकेली है, इसलिए वह न मालूम किस तरह महल में घुस आया, और बलात्कार के लिए उसने मुझ पर आक्रमण कर दिया। सम्भव है, कि उसके इस कार्य में पहरेदारों का भी सहयोग हो, और उन्होंने कुछ पाकर उसे सब भेद बताया हो, तथा महल में आने दिया हो। इस बात की पुष्टि इससे भी होती है, कि मैंने सिपाहियों को आज्ञा दी थी, कि इस दुष्ट को शूली लगा दो लेकिन उन्होंने मेरी इस आज्ञा का पालन नहीं किया, किन्तु उसे आपके पास ले गये। देखती हूँ, कि अब आप क्या करते हैं! यदि आपने मुझ पर बलात्कार क़रने वाले उस बनिये को प्राणदण्ड दिया तब तो ठीक है, अन्यथा मैं भूखी-प्यासी आत्म हत्या कर डालूँगी। उस दुष्ट के जीवित रहते, मैं किसी को अपना मुँह न दिखाऊँगी।

रानी की बातों को सुन कर, राजा और भी आश्चर्य में पड़ गया। वह कुछ निश्चय न कर सका, कि वास्तविक बात क्या है। एक ओर तो उसे सुदर्शन के सदाचार पर विश्वास था, और दूसरी ओर रानी उस पर भीषण अभियोग लगा रही थी; इसलिए वह असमंजस में पड़ गया। उसने रानी से पूछा, कि—यह कब की बात है? और उस समय तुम्हारी सब दासियाँ कहाँ गई थी? राजा के इन प्रश्न के उत्तर में रानी कड़क कर कहने लगी, कि—क्या मैं वर्ष दो वर्ष की बात कह रही हूँ! आज रात को

ही तो बात है। रात के समय कामदेव के पूजोत्सव और कौमुदी महोत्सव के कारण थकी हुई सब दासियाँ भी सो रही थीं, और मैं भी सो रही थी। उस समय सोते में ही आपके उस दुष्ट नगरसेठ ने मुझ पर आक्रमण किया, और मेरा सतीत्व नष्ट करना चाहा। धिक्कार है मुझको, जो मुझे आप ऐसे राजा की रानी बनना पड़ा। जिसके राज्य में एक बनिया भी इस प्रकार का दुःसाहस कर सकता है। जो अपनी पत्नी का सतीत्व बचाने में भी असमर्थ है, और जो अपनी पत्नी पर बलात्कार करने वाले अपराधी को भी जीवित देखता है, उस राजा की पत्नी बनना पड़ा यह मेरे दुर्भाग्य की ही बात है। आप ऐसे कायर राजा की पत्नी होने के बदले, यदि मैं किसी गरीब की स्त्री होती तो वह भी या तो मेरे अपराधी को ही मृत्यु के हवाले कर देता, या स्वयं ही उस से लड़ कर मर जाता। लेकिन आप राजा होकर भी अपनी स्त्री के अपराधी को अब तक दण्ड न दे सके!

यह कह कर, अभया रोने लगी। वहीं खड़ी हुई पण्डिता भी अभया की बातों में नमक मिर्च लगाती जाती थी, और राजा को जोश दिलाती जाती थी। अभया और पण्डिता की बातें सुन कर, असमंजस में पड़ा हुआ राजा सोचने लगा, कि—जिस को मैं तथा नगर के सब लोग सदाचारी मानते हैं, उस सुदर्शन पर किये गये इस भीषण आरोप की सत्यता कैसे

जानी जावे! यदि मैं रानी की बातों से आवेश में आकर बिना निर्णय किये ही सुदर्शन को दण्ड दूँ, तो यह अनुचित होगा। ऐसा करने से अन्याय होने का भी भय है, और प्रजा द्वारा विद्रोह होने का भी भय है। क्योंकि प्रजा को सुदर्शन प्राणों के समान प्रिय है। दूसरी ओर यदि रानी के कथनानुसार सुदर्शन ने अपराध किया हो, और फिर भी मैं उसे दण्ड न दूँ, रानी की बातों की उपेक्षा कर दूँ, तो यह भी अन्याय ही होगा, और लोगों में मेरी निन्दा भी होगी। लेकिन प्रश्न यह है, कि इस घटना की सत्यता कैसे जानी जावे? सुदर्शन पहले तो कुछ नहीं बोला लेकिन अब सम्भव है, कि पूछने पर वह बोले और सब बात कह दे। यह बात दूसरी है कि वह बोले ही नहीं, लेकिन यदि बोलेगा, तो सच्ची बात ही कहेगा। झूठ तो कभी भी न बोलेगा। इसलिए चल कर फिर उसी से पूछना चाहिए।

इस प्रकार सोच कर राजा, फिर सुदर्शन के पास आया। उसने, रानी द्वारा लगाया गया अभियोग सुदर्शन को सुना कर उससे पूछा, कि—यह बात कहाँ तक सत्य है? मैं तुम पर विश्वास करता हूँ। मैं रानी की बात पर तो सन्देह भी कर सकता हूँ, लेकिन तुम्हारी बात पर कदापि सन्देह नहीं कर सकता। इसलिए तुम कहो, कि वास्तविक बात क्या है।

सुदर्शन से राजा ने इस तरह कई बार पूछा, लेकिन सुदर्शन कुछ

भी नहीं बोला, वह तो अपने इसी विचार पर दृढ़ रहा कि अभया माता के सम्मान की रक्षा और उसे कष्ट से बचाने के लिए मुझे कुछ न बोलना चाहिए ! फिर चाहे मुझे शूली पर ही क्यों न चढ़ना पड़े ।

राजा ने, सुदर्शन को सब तरह का आश्वासन भी दिया। उससे यह भी कहा, कि सच्ची बात कह दोगे तो अपराधी होने पर भी मैं तुम्हें क्षमा कर दूँगा, और यदि रानी का अपराध होगा तो उसे दंड दूँगा। इस प्रकार का आश्वासन देने के साथ ही उससे यह भी कहा, कि तुम्हारे न बोलने से रानी द्वारा तुम पर लगाया गया अभियोग सच्चा माना जावेगा और तुम्हें अपराध का दंड भोगना होगा, जो प्राण दंड तक हो सकता है। इस प्रकार राजा ने सभी प्रयत्नों द्वारा सुदर्शन से घटना की वास्तविकता जाननी चाही, लेकिन उसे सफलता न मिली। राजा ने अपने प्रधान आदि को भी सुदर्शन के पास भेजा, और प्रधानादि ने भी सुदर्शन को सब तरह से समझाया लेकिन परिणाम कुछ न निकला। अन्त में राजा ने अपने मन्त्रियों की सलाह से यह मार्ग निकाला, कि इस मामले में-प्रजा में के कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों को डाला जावे, और उन से सम्मति ली जावे; कि सुदर्शन अपराधी है या नहीं ? सम्भव है कि उनसे सुदर्शन सब बात कह दें, जिससे घटना पर कुछ प्रकाश पड़े। कदाचित सुदर्शन ने उन से भी कुछ न कहा, तो उस दशा में सुदर्शन पर

लगे हुए अभियोग के विषय में उन से भी सम्मति ले लेंगे, और जब वे भी सुदर्शन को अपराधी स्वीकार करलें, तब सुदर्शन को दंड देना ठीक होगा।

राजा ने, प्रजा में से कुछ प्रतिष्ठित पुरुषों को बुला कर उन्हें समस्त बातों से परिचित किया, और उन से कहा, कि—इस मामले में आप लोग भी प्रयत्न करें। सम्भव है, कि आप लोगों के प्रयत्न, से सुदर्शन बोले, और इस कारण इस घटना के विषय में किसी निर्णय पर पहुँचा जा सके।

राजा द्वारा नियुक्त प्रजा के प्रतिनिधि लोग, सुदर्शन सेठ के पास गये। वे सुदर्शन से कहने लगे, कि—सेठजी, हम लोग जानते हैं, कि आप सदाचारी हैं। आप, दूसरे के घर तक नहीं जाते, और पर-स्त्री मात्र को माता मानते हैं, इसलिए आप रानी पर बलात्कार करने के लिए उनके महल में गये हों यह कदापि सम्भव नहीं। फिर भी आपके लिए कहा जाता है, कि आप रानी के महल में से मिले हैं, और आप पर रानी सतीत्व-हरण के प्रयत्न का अभियोग लगा रही है। ऐसी दशा में आप का यह कर्त्तव्य हो जाता है, कि आप स्वयं पर लगाये गये इस अभियोग का प्रतिवाद करें। इसलिए वास्तविक बात क्या है, यह हम से प्रकट करें, जिसमें हम इस विषय में कुछ निर्णय कर सकें, और राजा से कुछ कह सकें।

प्रतिनिधियों के इस कथन का भी, सुदर्शन ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह, मौन ही रहा। तब वे प्रतिनिधि सुदर्शन से कहने लगे, कि—आप तो हमारी बात का कुछ भी उत्तर नहीं देते! आपका चुप रहना यह प्रकट करता है, कि आप स्वयं पर लगाये गये अभियोग के विरुद्ध कुछ नहीं कह सकते। आप, अपना मौन भंग करके वास्तविक बात प्रकट करिये। कदाचित अभियोग के अनुसार आप से अपराध हुआ भी होगा, तब भी सारी प्रजा साथ है, इसलिए महाराजा से क्षमा दिलाई जा सकती है, और यदि आपने अपराध ही नहीं किया है, तब तो महाराजा आपका कर ही क्या सकते हैं! मानव-स्वभाव में कभी-कभी दुर्बलता भी आ जाती है। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी अपने आत्म-निग्रह से गिर जाते हैं, तो आप तो गृहस्थ हैं। इसलिए धर्म के कथनानुसार आप से अपराध होना, असम्भव या आश्चर्य की बात नहीं है। किन्तु जिससे कभी कोई अपराध नहीं हुआ है, उस व्यक्ति से यदि कोई अपराध हो भी जावे, तो वह अपराध क्षम्य माना जाता है। इसके अनुसार यदि आप से अपराध हुआ भी होगा, तो वह क्षम्य ही माना जावेगा। इसलिए आप सच्ची बात प्रकट करिये। आप यदि इसी तरह मौन रहे, तो आप अपराधी माने जावेंगे, और आपके मौन रहने पर हम लोग आपकी कुछ भी सहायता न कर सकेंगे, [illegible]

राजा आपको शूली लगाने का दंड देगा। आप, हम नागरिकों के प्राण स्वरूप हैं। हम नहीं चाहते, कि आपके जीवन का इस प्रकार अन्त हो। साथ ही, हमारे लिए यह भी असह्य होगा, कि हमारे नगरनायक पर इस तरह का कलंक लगे, और उन्हें दंड मिले। इसलिए हम लोगों से बातचीत करिये, मौन न रहिये। हम जानते हैं, कि आप त्यागी हैं। आप को जीवन की भी अपेक्षा नहीं है, इसलिए आप यह सोचते होंगे, कि यदि राजा ने शूली का दण्ड दिया तब भी कोई हर्ज नहीं। लेकिन यह बात केवल प्राणों तक ही सीमित नहीं है, किन्तु इसके साथ प्रतिष्ठा का भी सम्बन्ध है। जीवन का अन्त होना उतना बुरा नहीं है, जितना बुरा प्रतिष्ठा को कलंक लगना है। आप यदि न बोले तो आपके जीवन की हानि तो होगी ही, साथ ही प्रतिष्ठा को भी कलंक लगेगा; और आपकी स्त्री तथा आपके पुत्र दुःखी हो जावेंगे। राजा जब आपको शूली दे देगा, तब आपकी सम्पत्ति भी न छोड़ेगा। उस दशा में आपकी स्त्री, और आपके बच्चों की क्या दशा होगी! कदाचित राजा ने इतनी कठोरता का व्यवहार न किया, तब भी आपकी स्त्री और आप के पुत्रों को इस घटना के कारण जीवन भर लज्जित तो होना ही पड़ेगा। वे अपना मस्तक कभी भी ऊँचा न कर सकेंगे, न कुछ कह ही सकेंगे। आपके न रहने पर, उन की दुर्दशा हो जावेगी। इसलिए आप चुप न रह कर, सब बात हम से कह दीजिये।

प्रजा के प्रतिनिधियों ने, इस प्रकार सुदर्शन का मौन भंग करने के लिए बहुत प्रयत्न किया, अनेक प्रकार की बातें कहीं, लेकिन उनके प्रयत्नों का सुदर्शन पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। वह तो मौन रहकर पूर्व की भांति यही सोचता था, कि मैं अपने प्राणों, अपनी प्रतिष्ठा या स्त्री बच्चों की रक्षा के लिए ऐसा कोई कार्य नहीं कर सकता, जिसके कारण मेरी माता पर कोई संकट आवे। मैं इन सबकी अपेक्षा माता का महत्व अधिक समझता हूँ। माता को संकट से बचाने के लिए और माता की प्रतिष्ठा बचाने के लिए, अपने प्राणों का बलिदान करना, अपनी प्रतिष्ठा की उपेक्षा करना, या अपने स्त्री-बच्चों के भविष्य की चिन्ता न करना, कुछ अनुचित नहीं है। एक ओर मेरे प्राण हैं, मेरी पतिष्ठा है, तथा मेरी स्त्री एवं मेरे बालकों का भविष्य है और दूसरी ओर मेरी माता के प्राण हैं, उसकी प्रतिष्ठा है, तथा उसका भविष्य है। इन दोनों में से माता के प्राण, माता की प्रतिष्ठा और माता के भविष्य की ही अपेक्षा करूँगा ❀। शूली का दंड होगा, इस भय से मुझे भीत न होना चाहिए। मेरा शूली पर चढ़ना, शील रक्षा के लिए और माता के हित के लिए होगा। शील और मातृहित में मेरे प्राण लग जावें, इससे अधिक प्रसन्नता की बात दूसरी क्या हो सकती है! प्राणों

❀ सुदर्शन का यह विचार परहित-चिन्तन की पराकाष्टा है, अत्युच्च आदर्श है। —सम्पादक

का इससे ज्यादा सदुपयोग और क्या हो सकता है ! एक कवि ने कहा ही है—

धनानि जीवितश्चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत् ।
सन्निमितो वरं त्यागो विनाशे नियते सति ॥

अर्थात्—बुद्धिमान लोग, धन और प्राण दूसरे के हित के लिए त्याग देते हैं। धन और प्राण का नाश तो अवश्य ही होगा, इसलिए सद्कार्य के निमित्त इनका त्याग अच्छा है।

मेरे लिए भी, माता के हित में प्राणों का उत्सर्ग श्रेयस्कर होगा। मैं, आस्तिक हूँ। मुझे इस बात पर विश्वास है, कि आत्मा अमर है, और उसे अपने कृत्य का फल मिलता ही है। ऐसी दशा में यदि मुझे दूसरे के हित के लिए अपने प्राण त्यागने भी पड़ें, तो उससे मेरी कोई हानि न होगी। मेरे कथन पर राजा को भी विश्वास है, और प्रजा को भी। इसलिए मेरे द्वारा वास्तविक बात प्रकट होने पर, किसी न किसी रूप में माता को कष्ट अवश्य ही होगा। इसलिए प्राणान्त होने तक भी, मुझे वास्तविक बात प्रकट न करनी चाहिए, और झूठ तो मैं किसी भी दशा में बोल हो नहीं सकता।

प्रजा के प्रतिनिधियों के अनेक प्रयत्न करने पर भी जब सुदर्शन कुछ नहीं बोला, तब वे लोग सुदर्शन से कहने लगे, कि—हम तो चाहते थे, कि किसी प्रकार आपके शरीर की भी हानि न हो,

आप पर लगा हुआ कलंक भी मिट जावे, आपकी प्रतिष्ठा को भी धक्का न लगे, आपके बाल-बच्चों को भी कष्ट में न पड़ना पड़े, और इन सब बातों के साथ ही हम नगर के लोगों को आप ऐसे नगर-नायक का आधार बना रहे। इसी उद्देश्य से हम आपके पास आये, और आप से सब बातें पूछ रहे हैं। दूसरी ओर महाराजा भी यह चाहते हैं, कि आपके विषय में किसी प्रकार अन्याय न हो। आप पर उनकी पूर्ण कृपा भी है, और न्यायशील होने से वे इस घटना की वास्तविकता भी जानना चाहते हैं। लेकिन आप तो इतना आग्रह अनुरोध करने पर भी कुछ नहीं बोलते! यह आप की हठ, प्रत्येक दृष्टि से हानिप्रद है। हम, आप से एक बार फिर यह कहना उचित समझते हैं, कि आप इस पर प्रकाश डालने के लिए वास्तविक बात हम लोगों से कह दें।

प्रजा के प्रतिनिधियों का यह अन्तिम प्रयत्न भी जब निष्फल रहा, तब वे लोग रुष्ट होकर सुदर्शन के पास से चले आये। नगर के बहुत से दूसरे लोग भी राजमहल में और उसके आस-पास यह जानने के लिए घूम रहे थे, कि सुदर्शन सेठ किस अपराध के कारण पकड़ा गया है, और सुदर्शन सेठ का क्या कहना है। प्रतिनिधियों द्वारा उन्हें यह ज्ञात हुआ, कि सुदर्शन पर, रानी-पर बलात्कार करने के प्रयत्न का अभियोग है, लेकिन इस सम्बन्ध में

सुदर्शन कुछ भी नहीं बोलता है। इसलिए सम्भव है, कि राजा उसे प्राण दण्ड दे। प्रतिनिधियों द्वारा ज्ञात हुई यह बात थोड़ी ही देर में सारे नगर में फैल गई, तथा नगर के लोग तरह-तरह की बातें करने लगे।

१४

निर्णय

सत्पुरुष झूठ तो किसी भी दशा में बोलते ही नहीं हैं, लेकिन वैसा सत्य भी नहीं बोलते, जिससे किसी दूसरे की कोई हानि होती हो। वे लोग, दूसरे की हानि करने वाले सत्य को भी झूठ ही मानते हैं। उनका सिद्धान्त है, कि—

सच्चे सु या अणवज्जं वयंती ।

अर्थात्—जिससे किसी को पीड़ा न हो, वही वचन सत्य है।

योग-दर्शन के भाष्य में वेदव्यासजी ने कहा है—

> एषा सर्व भूतोपकारार्थं प्रवृत्ता न भूतोपघाताय,
> यदि चैव मप्यभि धीय माना, भूतोपघाताय
> परैवस्यात् न सत्यं भवेत् ॥

अर्थात्—सत्य के द्वारा सब जीवों के उपकार में प्रवृत्त होना चाहिए, किसी के अपकार में प्रवृत्त न होना चाहिए. सत्य के उपयोग में, इस प्रकार की बुद्धिमानी रखना आवश्यक है, जिसके द्वारा किसी की घात या किसी की कोई हानि हो, वह सत्य 'सत्य' नहीं है किन्तु असत्य ही है।

मनुस्मृति में भी कहा है—

> सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्नब्रूयात सत्यमप्रिय ।

अर्थात्—प्रिय सत्य बोलो, अप्रिय सत्य भी मत बोलो।

इस प्रकार जिस सत्य बोलने से दूसरे की हानि हो, सभी सैद्धान्तिकों ने उस सत्य की निन्दा की है, और उस सत्य को भी झूठ ही माना है। तब झूठ की तो, निन्दा की ही है। उसे तो किसी भी दशा में, यहाँ तक कि चाहे प्राण जाने लगें तब भी न अपनाने योग्य कहा है। अब प्रश्न यह होता है, कि जिससे दूसरे को दुःख होता हो—दूसरे का अहित होता हो—वह सत्य कहना भी महापुरुषों के लिये निषिद्ध है, और झूठ बोलना भी पाप है, तब ऐसे अवसर पर किस मार्ग का अवलम्बन लेना?

इसका उत्तर यह है, कि ऐसी ही स्थिति का नाम धर्मसंकट है। इस प्रकार के धर्मसंकट को हृदय की सहायता से पार कर सकने वाला व्यक्ति ही, सत्य का पालन कर सकता है।

इस प्रकार के धर्मसंकट के समय दो ही मार्ग हैं। पहला मार्ग दृढ़तापूर्वक यह कह देना है, कि मैं अमुक बात जानता हूँ, परन्तु कहूँगा नहीं। दुसरा मार्ग—मौन रहना, या कुछ बताने से इनकार करना (दोनों में से समयानुसार जो ठीक हो) विद्वानों के मत से उचित मार्ग है। इस विषयक कोई निर्णय करने के लिए यह ध्यान रखना चाहिए, कि जिस सत्य के कहने पर एकान्त रूप से अथवा अपेक्षाकृत दूसरे की हानि हो, दूसरे की घात हो, वह सत्य भी झूठ है। वही सत्य-सत्य है, जिसके साथ अहिंसा तथा दया हो, और जिसमें किंचित् भी स्वार्थ-भावना अथवा कलुषित बुद्धि न हो, किन्तु अधिक से अधिक स्वार्थ त्याग किया गया हो।

महल में पकड़ा जाने के पश्चात्, सुदर्शन भी ऐसे ही धर्म-संकट में पड़ गया था। लोगों के पूछने पर यदि वह वास्तविक बात कहता, तो लोग उसकी बात पर विश्वास करते थे, इस कारण अभया तथा उसकी सहायिकाओं की प्रतिष्ठा भी जाती थी और अभया, पंडिता, कपिला आदि को दंड भी भोगना पड़ता था जो प्राणंत दंड तक हो सकता था। और यदि वह वास्तविकता

के विरुद्ध कुछ कहता था, तो झूठ होता था। इस प्रकार सुदर्शन धर्मसङ्कट में पड़ गया था, लेकिन वह बुद्धिमान था, इसलिए वह इस धर्मसङ्कट में अधिक समय तक नहीं रहा। उसने अपनी बुद्धि द्वारा यह निर्णय कर लिया, कि इस समय मुझे मौन ही रहना चाहिए। उसने सोचा, कि मेरे बोलने से अनेकों की हानि होती है, और न बोलने से केवल मेरी ही हानि होती है। स्वयं की हानि करके दूसरे का हित करना, या बचाना महत्पुरुषों का मार्ग है। मुझे, महापुरुषों द्वारा आचरित यही मार्ग पकड़ना चाहिए। इस प्रकार विचार कर, उसने मौन रहने का ही निर्णय किया। वह अपने इस निर्णय पर कहाँ तक दृढ़ रहा आदि बातें आगे ज्ञात होंगी।

अनेक प्रयत्न किये जाने पर भी जब सुदर्शन कुछ नहीं बोला, तब प्रजा के प्रतिनिधि लोग, उसके पास से लौट कर राजा के सामने आये। राजा ने उन लोगों से पूछा, कि—आप लोग किस निर्णय पर पहुँचे हैं? उन लोगों ने उत्तर दिया, कि—हमने इस इस प्रकार प्रयत्न किया, लेकिन सुदर्शन कुछ भी नहीं बोलता, किन्तु वह बिलकुल मौन है। यह सुन कर राजा ने उन लोगों से फिर यह प्रश्न किया, कि—एक ओर तो सुदर्शन रात के समय महल में से पकड़ा गया है, और रानी उस पर अभियोग लगा रही है। दूसरी ओर सुदर्शन कुछ भी नहीं बोलता।

मैंने भी उससे वास्तविक बात जानने का बहुत प्रयत्न किया तथा मेरे प्रधानों और आप लोगों ने भी अपनी शक्ति भर सब प्रयत्न किये, लेकिन सुदर्शन कुछ बोलता ही नहीं है। ऐसी दशा में यह कैसे कहा जा सकता है, कि उस पर लगाया गया अभियोग गलत है! बल्कि वह नगर में धर्मध्यान करने के लिए रहा था, और इसी के वास्ते—उसके चाहने पर–मैंने उसे नगर में रहने की स्वीकृति भी दी थी। लेकिन उसने धर्मध्यान के बहाने यहाँ रह कर ऐसा अपराध किया है, और धर्मध्यान का बहाना लेने के कारण उसका अपराध अधिक भयंकर होजाता है। इस सम्बन्ध में आप लोगों का क्या विचार है? आप लोगों की दृष्टि में भी सुदर्शन अपराधी है, या नहीं?

राजा द्वारा किये गये इस प्रश्न के उत्तर में प्रजा के प्रतिनिधिगण कहने लगे, कि—जब सुदर्शन ही स्वयं पर लगे हुए अभियोग के विरुद्ध कुछ नहीं कहता है, किन्तु स्वयं पर लगे हुए अभियोग को सुन कर भी चुप है, तब हम लोग यह कैसे कह सकते हैं, कि वह निरपराधी है! यदि वह कुछ बोलता, तब तो अपराधी होने पर भी हम लोग उसके लिए आप से यह प्रार्थना करते कि आप उसे क्षमा कर दें, परन्तु जब वह बोलता ही नहीं हैं, तब 'मौनं सम्मति लक्षणम्' सिद्धान्त के अनुसार यही माना जा सकता है, कि उसे अपराध स्वीकार है; और इस कारण विवश

हो कर हमें भी यही कहना होता है, कि सुदर्शन अपराधी है।

इस प्रकार प्रजा के प्रतिनिधियों को सहमत कर के, राजा ने घटनाक्रम पर प्रकाश डालते हुए यह निर्णय दिया, कि—

“सुदर्शन, पाँच अपराधों का अपराधी है। उसका पहला अपराध यह है, कि उसने स्वयं के पद, स्वयं की प्रतिष्ठा,और स्वयं पर रखे जाने वाले विश्वास के विरुद्ध कार्य किया। दूसरा अपराध यह है,कि उसने धर्म के नाम पर नगर में रहने की स्वीकृति ली,और इस प्रकार धर्म के नाम से मुझे ठगा। उसका तीसरा अपराध यह है कि वह अनुचित रीति से रात के समय महल में प्रविष्ट हुआ। उसका चौथा अपराध यह है, कि जो उसके लिए माता के समान आदरणिया थी, उस महारानी अभया का सतीत्व नष्ट करने का असफल प्रयत्न किया। और उसका पाँचवाँ अपराध यह है, कि उसने मेरे द्वारा किये गये प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया, और राजाज्ञा की उपेक्षा की। सुदर्शन को अपराधी ठहराने में, प्रजा के प्रतिनिधिगण भी सहमत हैं। मैं, प्रजा के प्रतिनिधियों एवं अपने मन्त्रियों की सम्मति से सुदर्शन को इन पाँच अपराधों का अपराधी ठहराता हूँ, और आज्ञा देता हूँ कि—

‘ऊपर कहे गये पाँच अपराधों के अपराधी सुदर्शन को प्राणान्त दण्ड दिया जावे। यानि उसे शूली पर चढ़ा दिया जावे। यद्यपि इस दंड के साथ ही उसकी सम्पत्ति राज्य के अधिकार में कर

लेनी चाहिए, लेकिन उसकी पूर्वसेवाओं को लक्ष्य में रख कर उसकी सम्पत्ति उसके पुत्रों के लिए रहने दी जाती है।'

मैं सुदर्शन के लिए प्राणान्तदंड की आज्ञा देता हूँ, फिर भी उस पर यह कृपा दर्शाना उचित समझता हूँ कि यदि शूली पर चढ़ाया जाने से पहले वह सब बातें कह देगा, या कोई दूसरी बात ज्ञात होगी, तो इस आज्ञा पर पुनर्विचार भी किया जा सकेगा।"

१५

पति पर विश्वास

सा भार्या या शुचिर्दक्षा, सा भार्या या पतिव्रता ।
सा भार्या पतिप्रीता, सा भार्या सत्यवादिनी ॥

अर्थात्—पत्नी वही है, जो पवित्र है, चतुर है, पतिव्रता है, पति से प्रीति रखती है, और सत्य बोलती है ।

पति का पत्नी पर और पत्नी का पति पर पूर्ण विश्वास होना आवश्यक है । जिन पति-पत्नी में परस्पर पूर्ण विश्वास है, उन्हीं का दाम्पत्य जीवन सुखी माना जाता है । इसके विरुद्ध जिन

में पारस्परिक विश्वास नहीं है, उनका दाम्पत्य जीवन भी सुखी नहीं, किन्तु दुःखी रहता है। जब पति, पत्नी को सन्देह की दृष्टि से देखता है, अथवा पत्नी, पति पर विश्वास नहीं रखती किन्तु सन्देह रखती है, तब आपस में कलह क्लेश होना स्वाभाविक ही है। उस दशा में, दोनों में से कोई भी स्वयं को सुखी नहीं मानता, किन्तु दोनों ही अपने को दुःखी ही मानते हैं। दोनों ही, अपने-अपने लिए नारकीय यातना अनुभव करते हैं। जो विवाह की ग्रन्थि में बँध चुके हैं, एक दूसरे को अपना-अपना प्रेम समर्पण कर चुके हैं, उन में यदि किसी प्रकार का भेद या सन्देह रहा, एक को दूसरे का विश्वास न रहा, तब नारकीय यातना का अनुभव होना भी स्वाभाविक ही है और जहाँ ऐसा है, वहाँ के लिए यही कहा जा सकता है, कि ये दोनों शरीर से तो विवाह—बन्धन में बँधे हैं, लेकिन हृदय से तो अलग—अलग ही हैं। तथा जहाँ, भेद है, वहाँ प्रेम नहीं रह सकता। इस प्रकार अविश्वास के कारण, दाम्पत्य प्रेम का स्थान कलह ले लेता है। आज-कल इस प्रकार का पारस्परिक अविश्वास अधिक देखा जाता है, और इसका प्रमाण पति-पत्नि का अलग-अलग अपना-अपना ताला कुंजी रखना है। पति की पेटी, कोठा या सम्पत्ति अलग है, और पत्नी की अलग। पति, पत्नी पर विश्वास नहीं करता, और पत्नी पति पर। ऐसा अविश्वास कहीं कहीं तो इस

सीमा तक बढ़ा हुआ है कि खाने-पीने की चीजें भी ताले में रखी जाती हैं, और पत्नी ऐसी वस्तुएँ तभी पाती है, जब पति ताले में से निकाल कर देता है। जहाँ—रुपये पैसे तो दूर रहे—खाने-पीने की सामग्री के लिए भी एक को दूसरे का विश्वास नहीं है, वहाँ चरित्र विषयक विश्वास तो हो ही कैसे सकता है! और उस दशा में, क्लेश होना स्वाभाविक ही है। पति-पत्नी में परस्पर कैसा विश्वास होना चाहिए, इसके लिए सुदर्शन और मनोरमा का पारस्परिक विश्वास आदर्श है। सुदर्शन राजमहल में पकड़ा गया, उसे शूली पर चढ़ा देने के लिए राजा ने आज्ञा भी दे दी, फिर भी मनोरमा को अपने पति पर कैसा विश्वास था, यह बात इस प्रकरण से ज्ञात होगी।

सुदर्शन सेठ राजमहल में पकड़ा गया है, और उस पर रानी के साथ बलात्कार करने का अभियोग लगाया गया है, तथा इस सम्बन्ध में सुदर्शन कुछ भी नहीं बोलता है आदि समाचार सारे नगर में फैल ही गये थे। सुदर्शन सेठ की पत्नी मनोरमा ने भी, पति के पकड़े जाने आदि का समाचार सुना। ऐसा समाचार सुन कर साधारण स्त्री का अधीर हो उठना और रुदन विलाप करना स्वाभाविक है, लेकिन मनोरमा साधारण स्त्री न थी, किन्तु धर्म जानने वाली श्राविका थी। इसलिए यह समाचार सुन कर वह सोचने लगी, कि मेरे पति तो कल पौषध व्रत धारण करके बैठे थे,

फिर वे महल में कैसे पकड़े गये ! मुझ को, पति पर पूर्ण विश्वास है। वे सदाचारी हैं। उन्होंने आज तक कभी परदारा गमन नहीं किया, न कर ही सकते हैं। वे पूर्ण धार्मिक हैं। मुझ को उनकी धार्मिकता एवं उनके सदाचार पर ऐसा दृढ़ विश्वास है, कि चाहे कोई कितना भी कहे, मैं इस बात को नहीं मान सकती, कि मेरे पति में दुराचार या परदारा गमन की भावना भी आई हो। लेकिन प्रश्न यह होता है, कि फिर वे राजमहल में पकड़े कैसे गये, और उन पर बलात्कार का अभियोग कैसे लगा ? इस प्रश्न का समाधान करने के लिए मैं तो यही कहूँगी, कि इस घटना के पीछे कोई रहस्य है। पराये घर जाने के त्यागी मेरे पति रानी के लिए रात के समय महल में गये हों, और पर-स्त्री मात्र को माता मानने के व्रती होते हुए भी उन्होंने रानी पर बलात्कार करने की चेष्टा की हो, ऐसा कदापि नहीं हो सकता। मेरे पति, अपने व्रत-नियमों का उल्लंघन कदापि नहीं कर सकते। फिर भी पति राजमहल में पकड़े गये, यह आश्चर्य की बात है ! परन्तु मुझे यह अशुभ समाचार सुन कर अधीर न होना चाहिए किन्तु इस बात पर दृढ़ विश्वास रखना चाहिए, कि सत्य की सदा जय है। सत्य त्रिकाल में अबाधित है। सत्य, न तो कभी दब ही सकता है, न उसे कोई दबा ही सकता है। मेरे पति सच्चे हैं। इसलिए उनका कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। मैं पति का दर्शन अभी

करूँगी जब उन पर लगा हुआ कलङ्क दूर होगा। जब बादल होने पर प्रकाशित सूर्य की तरह पति पर से कलङ्क रुपी बादल हट जावेगा, और सत्य रुपी सूर्य प्रकाशित होगा तभी मैं अपनी आँखों से पति को देखूँगी। इससे पहले पति का दर्शन कदापि नहीं कर सकती। जिस पर इस तरह का कलङ्क लगा हो, उस पति की पत्नी रहने की अपेक्षा विधवा रहना अच्छा है। इस समय मुझे अपने मन को, दूसरी ओर से हटा कर परमात्मा के ध्यान में ही लगा देना चाहिये। जिसमें मुझे नगर के लोग सता भी न सकें, उनके द्वारा पति के विरुद्ध कही जानेवाली बातें भी मुझे न सुननी पड़े, और पति पर लगा हुआ मिथ्या कलङ्क दूर होने में भी धर्म से सहायता पहुँचे।

इस प्रकार विचार कर मनोरमा अपने पुत्रों सहित परमात्मा के ध्यान में बैठ गईं। उसके मातृभक्त बालक भी, माता की तरह धर्मध्यान करने के लिए बैठ गये। उधर कुछ लोगों ने विचार किया, कि सेठानी के पास चल कर, उसको भी सेठ के पकड़े जाने आदि का समाचार सुनाना चाहिए। उस बेचारी को क्या पता होगा, कि उसका पति कहाँ और किस तरह पकड़ा गया है। यह समाचार सुनकर यदि वह सेठ के पास जावे, तो सम्भव है कि उसके कहने-सुनने पर सेठ कुछ बोले, तथा इस कारण सेठ शूली से बच जावे।

इस प्रकार सोच कर कुछ लोग, सुदर्शन सेठ के घर गये। वहाँ उन्होंने देखा, कि सेठ के नौकर चाकर द्वार पर बैठे हैं। जो लोग सेठानी को सुदर्शन के पकड़े जाने का समाचार सुनाने के लिए गये थे, उन लोगों ने नोकरों से पूछा, कि—सेठानी कहाँ हैं। नौकरों ने उत्तर दिया; कि—वे धर्म ध्यान में बैठी हैं। वे लोग कहने लगे, कि—बेचारी मनोरमा को सम्भवतः यह पता नहीं है, कि उसका पति पकड़ा गया है, और अब उसे न मालूम क्या सजा दी जावेगी। यह कहते हुए उन लोगों ने नौकरों से कहा, कि—तुम जाकर सेठानी से कह दो, कि तुम्हारे पति राजमहल में पकड़े गये हैं, और उन पर, रानी पर बलात्कार करने का अभियोग लगाया गया है। नौकरों ने उत्तर दिया, कि—यह समाचार सेठानी ने पहले ही सुन लिया है, और इस समाचार को सुनकर ही वे धर्मध्यान करने के लिए बैठी हैं। नगर के लोगों ने कहा, कि—सेठानी से कह दो, कि यह समय धर्म ध्यान में बैठने का नहीं है, किन्तु पति को बचाने के लिए प्रयत्न करने का है। सेठ, स्वयं पर लगे हुए अभियोग के विषय में कुछ भी नहीं बोलते हैं; और जब तक सेठ स्वयं न बोलें, तथा स्वयं को निरपराधी बताने के लिए वास्तविक बात प्रकट न करें, तब तक वे दण्ड से कैसे बच सकते हैं। उन पर जो अभियोग लगाया गया है, वह ऐसा भयंकर है, कि उसके लिए प्राणान्त दण्ड भी दिया

जा सकता है। इसलिए सेठानी से कहो, कि वे चल कर सेठ को समझावें, जिसमें वे सब बात प्रकट कर दें और उनके प्राण बच जावें।

नगर के लोगों का यह कथन सुन कर, नौकर लोग घर में सेठानी के पास गये। कुछ ही देर में नौकर लोग वापस लौट आये, और उन्होंने नगर के लोगों से कहा कि सेठानी तो धर्मध्यान में इस तरह मग्न है, कि उन्होंने हमारी बात का कुछ भी उत्तर नहीं दिया। हमने, आप लोगों द्वारा कही गई सब बातें उन्हें सुना दीं, परन्तु वे धर्मध्यान में ही लगी रहीं। यह सुनकर नगर के लोग कहने लगे कि यह तो बहुत ही आश्चर्य की बात है, कि पति पर तो इस तरह का संकट है, और पत्नि धर्मध्यान में बैठी है! पति को बचाने का प्रयत्न तक नहीं करती! हम लोग तो सेठ की रक्षा हो इस उद्देश्य से—यहाँ आये, परन्तु सेठानी को अपने पति की किंचित् भी चिन्ता नहीं है! वह इतना भी नहीं समझती कि मेरा सुहाग चला जावेगा, मैं विधवा हो जाऊँगी, या मेरे बालकों की दुर्दशा हो जावेगी!

इस प्रकार कहते हुए नगर के लोग, सुदर्शन सेठ के यहाँ से चले गये। मनोरमा, उसी प्रकार परमात्मा के ध्यान में तल्लीन बैठी रही। उधर राजसभा में राजा ने यह निर्णय दिया, कि सुदर्शन अपराधी है, अतः उसे शूली लगा दी जावे। राजा का यह निर्णय सुनाने के लिये, सुदर्शन को राजसभा में लाया गया। सुदर्शन,

उस समय भी प्रसन्न ही था! उसके मुख पर न तो भय था, न ग्लानि ही। कर्मचारियों ने सुदर्शन को राजा का वह निर्णय सुनाया जिसमें सुदर्शन को अपराधी ठहरा कर शूली दी जाने की आज्ञा दी गई थी। राजा की यह आज्ञा सुन कर सभा में उपस्थित और सब लोग तो काँप उठे, लेकिन सुदर्शन उसी प्रकार धीर और प्रसन्न बना रहा। मुझे शूली लगाई जावेगी, यह बात सुन कर भी उसे किसी प्रकार का दुःख नहीं हुआ। वह तो यही सोचता था, कि राजा ने जो आज्ञा दी है वह उचित ही है। ये उन्हीं बातों के आधार पर निर्णय दे सकते हैं, जो इनके जानने में आवें। जो बात इनकी जानकारी में हो नहीं है, उसके विषय में तो यह कुछ विचार कर ही कैसे सकते हैं! राजनीति इसीलिए अपूर्ण है, कि उसमें प्रकट बातों के आधार पर ही निर्णय दिया जाता है। यदि ऐसा न हो, तो राजनीति अपूर्ण कही ही क्यों जावे!

राजाज्ञा सुनाई जा चुकने पर, प्रजा के प्रतिनिधि एवं कर्मचारीगण सुदर्शन से कहने लगे, कि—देखो, महाराजा कैसे दयालु हैं, और आप पर इनकी कृपा है! आपके लिए शूली लगाई जाने की आज्ञा दे चुकने पर भी यह सुविधा रखी है, कि यदि आप वास्तविक बात कह देंगे या कोई दूसरी बात ज्ञात होगी, तो महाराजा अपनी आज्ञा पर पुनर्विचार करेंगे। अब तक जो कुछ हुआ सो हुआ, लेकिन अब आप महाराजा द्वारा प्रदान की गई सुविधा

का लाभ उठावें, और वास्तविक बात प्रकट कर दें। ऐसा करने पर, महाराजा अपनी आज्ञा पर पुनर्विचार करेंगे और सम्भव है, कि आपको शूली न देंगे।

राजसभा में उपस्थित लोगों ने इस तरह सुदर्शन से बहुत कुछ कहा, लेकिन उनका कथन व्यर्थ हुआ। सुदर्शन कुछ भी नहीं बोला। अन्त में सब लोग चिढ़ गये, और राजा ने भी रुष्ट होकर सिपाहियों को यह आज्ञा दी, कि-इसको यहाँ से ले जाओ तथा मेरी आज्ञा का पालन करो। राजा की आज्ञानुसार सिपाही, लोग सुदर्शन को राजसभा से ले गये। प्रजा के प्रतिनिधिगण, तथा रजकर्मचारी आदि भी अपने अपने घर गये।

अभया को दासियों द्वारा यह मालूम हुआ, कि सुदर्शन को शूली लगाने की आज्ञा दी गई है। यह समाचार सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुई, और अपने मन में कहने लगी, कि अन्त में तो मेरी ही बात रही, मेरा कहना न मानने के कारण उस धर्म ढोंगी को वही दण्ड मिला है, जो दण्ड मैं दिलाना चाहती थी। अब थोड़ी ही देर में उसे शूली पर चढ़ा दिया जावेगा, और तब उसे मेरा कहना न मानने के लिए पश्चाताप होगा। इस प्रकार सोचती और प्रसन्न होती हुई अभया, अपने कृत्य के लिए गर्व करने लगी।

प्रजा के प्रतिनिधियों द्वारा, नगर के अन्य लोगों को भी राजा की आज्ञा का समाचार मालूम हुआ। यह समाचार सुन कर, प्रजा

को बहुत ही दुःख हुआ। वह कहने लगी, कि वास्तविक बात क्या है यह तो कौन जाने, लेकिन जो पिता के समान सब लोगों का रक्षक था, वह नगरसेठ आज शूली पर चढ़ा दिया जावेगा तथा आज उससे हमारा वियोग हो जावेगा, यह हमारे लिए बड़े दुर्भाग्य की बात है। इसी प्रकार कोई कुछ कहने लगा, और कोई कुछ कहने लगा। कोई कहता था, कि सुदर्शन बोलता नहीं है, इससे जाना जाता है, कि उसने अवश्य ही अपराध किया होगा। कोई कहता था, कि वह नहीं बोला यह भी एक तरह से अच्छा ही हुआ। यदि वह बोलता भी, तो रानी के कथन के सामने उसके कथन को कौन सत्य मानता! कोई कहता था कि राजा है तो न्यायी और सुदर्शन पर कृपालु। यदि उसके हृदय में सुदर्शन के प्रति स्थान न होता, तो वह शूली की आज्ञा देने के पश्चात सुदर्शन के लिए किसी प्रकार की उपेक्षा न रखता। इसी प्रकार वह, प्रजा में से कुछ लोगों को बुला कर सुदर्शन को अपराधी ठहराने में उनकी सम्मति न लेता। कोई कहता था, कि राजा को न्याय पर विश्वास है, तो क्या सुदर्शन के सदाचार पर विश्वास नहीं है? राजा के न्याय के विषय में भी सन्देह किया जा सकता है, परन्तु सुदर्शन के सदाचार के विषय में सन्देह को कोई कारण नहीं है फिर भी सुदर्शन [illegible] और क्या बात हुई, इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता।

कुछ लोगों ने सोचा, कि अब फिर मनोरमा के पास चल कर उससे कहना चाहिए, कि राजा ने तुम्हारे पति को शूली पर चढ़ाये जाने का हुक्म दे दिया है, फिर भी पुनर्विचार की सुविधा रखी है। इसलिए तुम चल कर सुदर्शन से कुछ कहो सुनो, जिसमें वह बोल जावे, और शूली से बच जावे।

इस प्रकार विचार कर, कुछ लोग फिर सुदर्शन के घर गये। वहाँ मनोरमा, पूर्व की ही भाँति धर्मध्यान में बैठी पाई। उन लोगों ने, सुदर्शन के नौकरों द्वारा मनोरमा के पास राजा की आज्ञा का समाचार भेज कर कहलाया, कि अब तो चल कर सुदर्शन को समझाओ, जिसमें वे बोल जावें, और उनके प्राण बच जावें। धर्मध्यान करने के लिए तो सारी आयु है ही लेकिन यह अवसर फिर नहीं मिलना है। पहले इस-स्वयं को विधवा बनाने वाली दुर्घटना को रोकने का प्रयत्न कीजिये, नहीं तो फिर आप धर्मध्यान में ही रह जावेंगी, पति को खो बैठेंगी।

लोगों द्वारा कही गई यह बात, मनोरमा से कहने के लिए सुदर्शन के नौकर मनोरमा के पास गये। कुछ ही देर में वे वापस लौट आये, और उन्होंने आये हुये लोगों से कहा, कि—हमने आप लोगों द्वारा कही गई बातें सेठानी को सुनाईं, लेकिन वे तो इस तरह ध्यान में मग्न बैठी हैं, कि जैसे हमारी बात सुनता भी न

चाहती हो। उन्होंने, हमारे द्वारा कही गई आप लोगों की बात का कोई उत्तर नहीं दिया।

नौकरों से यह सुन कर, उन लोगों में से कोई तो कहने लगा, कि—सेठानी को आज ही धर्मध्यान करना सूझ पड़ा है! पति तो मरने जा रहा है और आप धर्मध्यान करने बैठी है! कोई कहने लगा, कि सेठ के विषय में तो अपन जानते हैं, कि सेठ का आचरण अच्छा है, लेकिन सेठानी के विषय में अपने को क्या मालूम कि उसका आचरण कैसा है! पति तो शूली पर चढ़ाया जानेवाला है फिर भी वह धर्मध्यान करने बैठी है, इससे तो यही पाया जाता है कि उसके हृदय में पति के प्रति प्रेम नहीं है। कोई कहता था, कि पति के प्रति प्रेम होता, तो इस तरह बैठी ही क्यों रहती! सेठ के प्राण बचें इसलिए अपन लोग तो दौड़ भाग कर यहाँ आये हैं, लेकिन सेठानी को अपने पति के विषय में जरा भी चिन्ता नहीं है। हृदय में पति के प्रति प्रेम हो या न हो, लौकिक व्यवहार के लिए तो उसे पति के प्राण बचाने का प्रयत्न करना ही चाहिये था! कोई कहता था, कि ऐसा प्रयत्न करने से सेठानी की हानि ही है, उसको लाभ क्या है! शायद इस तरह के प्रयत्न से सेठ बच जावे, तो सेठानी के मार्ग का काँटा बना ही रहेगा। सेठ को शूली लगे, इसमें सेठानी की हानि क्या! सेठानी, इसे अपने लाभ की बात समझती है। सेठानी युवती है, और सेठ के न रहने पर वह सब

धन की स्वामिनी होकर इच्छित पुरुष के साथ आनन्द भोग कर सकेगी। फिर वह सेठ को बचा कर अपने मार्ग को बाधा क्यों रहने दे!

इस प्रकार इस तरह की बातें करते हुए वे लोग वहाँ से चले गये। सेठानी, परमात्मा के ध्यान में ही बैठी रही।

१६

शूली का सिंहासन

बल दो प्रकार के होते हैं; एक तो भौतिक, और दूसरा आध्यात्मिक। दृश्यमान जगत् में जो बल दिखाई देता है, वह भौतिक बल है। शारीरिक बल, शस्त्र बल, सैन्य बल धन बल, यन्त्र बल आदि, भौतिक बल हैं। इन सब बल की गणना, भौतिक शक्ति में है। आध्यात्मिक शक्ति, भौतिक शक्ति, से परे है। भौतिक और आध्यात्मिक शक्ति में से आध्यात्मिक शक्ति का महत्व अधिक है। आध्यात्मिक शक्ति के सामने, भौतिक शक्ति

तुच्छ एवं नगण्य है। भौतिक शक्ति की सीमा है, लेकिन आध्यात्मिक शक्ति की कोई सीमा नहीं है। भौतिक शक्ति अपनी ही तरह की दूसरी शक्ति से अथवा आध्यात्मिक शक्ति से टकराकर व्यर्थ हो जाती है, लेकिन आध्यात्मिक शक्ति अव्यर्थ है। वह, प्रत्येक काल और प्रत्येक क्षेत्र में अबाधित है। भौतिक शक्ति द्वारा सम्पादित कार्य का परिणाम तत्काल या परम्परा-पर हानिप्रद भी हो सकता है, लेकिन आध्यात्मिक शक्ति द्वारा सम्पन्न कार्य का परिणाम किसी भी समय अथवा किसी के भी लिए हानिप्रद नहीं होता। इस प्रकार चाहे जिस दृष्टि से देखा जावे, भौतिक बल से आध्यात्मिक बल ही बढ़ कर है। इसलिऐ प्रत्येक व्यक्ति को उचित है, कि वह आध्यात्मिक बल प्रकट करे। आध्यात्मिक बल से इहलौकिक कल्याण भी है, और पारलौकिक कल्याण भी है। लेकिन आध्यात्मिक बल तभी प्रकट किया जा सकता है, जब भौतिक बल त्यागा जावे। आध्यात्मिक बल उसी में ठहर सकता है, जिसने भौतिक बल त्याग दिया हो। जिसके समीप जितना भौतिक बल है, या जो भौतिक बल पर जितना विश्वास करता है अथवा भौतिक बल से जितना काम लेता है, वह आध्यात्मिक बल से उतना ही दूर है। आध्यात्मिक बल तो तभी आता है, जब भौतिक बल पर से विश्वास हटाया जावे, उससे सहायता नहीं ली जाय, और उसका त्याग किया जाता है। जो भौतिक बल की

ओर से सर्वथा निर्बल बन जाता है, उसको किंचित् भी सहायता नहीं लेता, न उस पर विश्वास ही करता है, वही आध्यात्मिक बल प्राप्त कर सकता है। जहाँ भौतिक बल का सद्भाव है, वहाँ आध्यात्मिक बल का अभाव है, और जहाँ आध्यात्मिक बल का सद्भाव है, वहाँ भौतिक बल का अभाव है। ये दोनों बल परस्पर विरोधी हैं, इसलिए कोई भी व्यक्ति स्वयं में इन दोनों में से किसी एक ही बल को रख सकता है।

आध्यात्मिक बल को रामबल या परमात्मिक शक्ति भी कहा जाता है। जिसमें यह बल है, वह व्यक्ति किसी प्रकार की सांसारिक इच्छा—कामना नहीं करता, न इस बल के द्वारा कोई सांसारिक कार्य ही कराना चाहता है। वास्तव में जिसको किसी प्रकार की सांसारिक कामना है, उसमें यह बल हो ही नहीं सकता। यह बल तो उसी में होता है, जो सांसारिक कामना से निवृत्त हो गया है, और जिसने अपने शरीर तक का ममत्व त्याग दिया है। ऐसे व्यक्ति में आध्यात्मिक बल आप ही आप प्रकट हो जाता है, तथा फिर उसका कोई कार्य शेष भी नहीं रहता। आध्यात्मिक बल, कहीं बाहर से नहीं आता। प्रत्येक आत्मा में अनन्त बल-वीर्य है, परन्तु वह बल-वीर्य भौतिक वस्तु की कामना के आवरण से ढका रहता है। यह आवरण जैसे-जैसे हटता है आध्यात्मिक बल वैसे ही वैसे प्रकट होता है, और जिसमें पूर्ण आध्यात्मिक बल

प्रकट हो जाता है, भौतिक बल उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

सुदर्शन सेठ अपना भौतिक बल उसी समय से त्याग चुका था, जब से वह पौषध व्रत धारण करके पौषधशाला में बैठा था। इसी कारण पंडिता द्वारा उठाये जाने पर भी वह कुछ नहीं बोला, न उसने किसी भौतिक शक्ति का ही प्रयोग किया। पश्चात राज महल में रानी के अनुचित प्रयत्न पर, सिपाहियों द्वारा पकड़ा जाने पर, राजा एवं दूसरे लोगों द्वारा पूछताछ की जाने पर, और शूली की आज्ञा सुनाई जाने पर भी वह निर्बल ही बना रहा कुछ भी नहीं बोला, न उसने कोई शारीरिक प्रयत्न ही किया। वह, भौतिक बल त्याग कर सर्वथा निर्बल बन गया था। देखना है, कि इस निर्बल बनने का क्या परिणाम हुआ, और उसकी रक्षा किस प्रकार हुई।

राजा की आज्ञानुसार सुदर्शन को शूली चढ़ाने का समय और स्थान नियत किया जाकर नगर में यह घोषणा कराई गई, कि सुदर्शन सेठ ने अमुक अपराध किया है, इसलिए महाराजा की आज्ञानुसार उसको अमुक समय अमुक स्थान पर शूली दी जावेगी; सब लोग देखने के लिए उपस्थित हों। यह घोषणा होते ही नगर में हाहाकार मच गया। सब लोग यही कहने लगे, कि आज यह नगर विधवा की तरह अनाथ हो जावेगा! दीन दुःखियों का दुःख सुनने, मिटाने वाला कोई न रहेगा। इस तरह कहते हुए

लोग बहुत ही विकल हुए, लेकिन अन्त में विवश यह कह कर चुप रहते थे, कि जब सुदर्शन बोलता ही नहीं है, तब कोई क्या कर सकता है ?

नियत समय से पूर्व सुदर्शन सेठ को वे वस्त्र पहनाये गये, जो शूली पर चढ़ाये जाने वाले व्यक्ति को पहनाये जाते थे। फिर सिपाही लोग सुदर्शन को बाजार में होते हुए उस स्थान के लिए ले चले, जो शूली देने के लिए नियत था। सुदर्शन के आगे-आगे वह बाजा भी बजता जाता था, जो शूली के अपराधी के आगे लोगों को ज्ञात करने के लिए बजा करता था, सारे नगर में यह बात मालूम हो ही गई थी, कि सुदर्शन सेठ को अमुक समय पर शूली दी जावेगी, इसलिए बाजे की ध्वनि सुनकर सब लोग सुदर्शन को देखने के लिए दौड़े। शूली पर लगाये जाने वाले अपराधी के वेश में सुदर्शन को देखकर, नगर के स्त्री-पुरुषों में त्राहि-त्राहि मच गई। कोई सुदर्शन को निरपराधी ठहरा-कर, उसे शूली दी जाने की आज्ञा को अन्याय ठहराता था। कोई सुदर्शन के विषय में दी गई राज की आज्ञा उचित बताता था। कोई सुदर्शन को—न बोलने के कारण-मूर्ख कहता था। कोई अभया की निन्दा करता था, और कोई मनोरमा की निन्दा करता था। कोई सुदर्शन के रूप सौन्दर्य एवं उसकी युवावस्था पर दया खाता था। कोई सुदर्शन की पत्नी एवं उसके पुत्रों के भविष्य की चिन्ता करता था, और कोई शूली की

जाने की प्रथा की ही निन्दा करता था। इस प्रकार बाजार में कोलाहल मचा हुआ था। नगर के चौराहे और तिराहे पर सुदर्शन को मध्य में खड़ा करके सिपाही लोग राजा का वह निर्णय सुनाते जाते थे, जिसके अनुसार सुदर्शन को शूली लगाने के लिए ले जाया जा रहा था। जिससे लोगों को यह ज्ञात हो जावे कि सुदर्शन को शूली क्यों दी जाती है, और भविष्य में कोई व्यक्ति इस तरह का अपराध न करे।

शूली पर चढ़ने के लिए जाते हुए सुदर्शन के साथ, जुलूस की तरह स्त्री-पुरुषों की भीड़ थी। सुदर्शन को लिए हुए सिपाही लोग जैसे-जैसे आगे बढ़ते जाते थे, साथ के स्त्री-पुरुषों की संख्या भी वैसे ही वैसे बढ़ती जाती थी। भीड़ के लोगों में से कोई तो कहता था, कि यह सेठ बड़ा ही धर्म ढोंगी था। जब राजा की आज्ञानुसार सब लोग नगर से बाहर जाने लगे थे, तब हमने इससे भी चलने के लिए कहा था, लेकिन इसने धार्मिकता का ढोंग बताने के लिए उत्तर दिया, कि कल चातुर्मास की अन्तिम पक्ष-तिथि है, अतः पौषध करके प्रतिक्रमण करूँगा। इस तरह धर्म की ओट लेकर नगर में रहा, और रात के समय रानी से दुराचार करने के लिए राजमहल में गया। ऐसे लोगों से हम लोग ही अच्छे हैं, जो धर्म का ढोंग भी नहीं करते और पर-स्त्री के लिए दूसरे के घर में भी नहीं घुसते। कोई कहता था, कि यह कैसा

मूर्ख है ! शूली लगने जा रहा है, फिर भी कुछ नहीं बोलता। कोई कहता था, कि बोले भी किस तरह ! जब अपराध किया है, तब किस मुँह से बोले ! कोई कहता था, कि इसकी पत्नी कैसी निठुर है, जो लोगों के कहने पर भी पति को समझाने के लिए नहीं गई। कोई कहता था, कि उसको इस तरह के पति की आवश्यकता नहीं है। वह तो चाहती है, कि इस तरह के धर्म-ढोंगी पति से छुटकारा मिले तो अच्छा है। कुछ लोग इस सम्बन्ध में मौन थे, और कुछ लोग कहते थे, कि सेठ न मालूम किस उद्देश्य से चुप है, तथा शूली चढ़ने जा रहा है। बोलने पर सेठ शूली से बच सकता है, फिर भी यह क्यों चुप है, इस बात को अपन नहीं जानते। ऐसी दशा में इसको या मनोरमा की निन्दा करने का अपने को क्या अधिकार है ! इस प्रकार लोग भिन्न-भिन्न तरह की बातें करते थे। कोई सुदर्शन की निन्दा करता था, कोई मनोरमा की निन्दा करता था, और कोई राजा या रानी की निन्दा करता था। लेकिन अधिकान्श लोग सुदर्शन की निन्दा करने वाले और उसे मूर्ख कहने वाले ही थे। सब लोगों की बातें सुन कर भी सुदर्शन उसी तरह चुप, शान्त और प्रसन्न था, जिस प्रकार वह पौषध में पंडिता द्वारा उठा कर महल में आने पर रानी की बातें सुन कर; और राजा, मन्त्री एवं प्रजा के प्रतिनिधियों के आग्रह पर, तथा शूली लगाये जाने की आज्ञा

सुन कर चुप शान्त एवं प्रसन्न था। वह तो यही सोचता था, कि यद्यपि मेरे चुप रहने के कारण बहुत लोग मेरी निन्दा करते हैं, मुझे अपराधी समझते हैं, तथा इसी कारण मेरे को शूली चढ़ाने के लिए ले जाया जा रहा है लेकिन इन सब बातों के कारण मुझे अपने निश्चय पर से विचलित न होना चाहिये, अधिकान्श लोगों की बातों के कारण मुझे वह कार्य कदापि न करना चाहिए, जो स्वयं के निश्चय और धर्म के विरुद्ध हो।

सुदर्शन को लिये हुए सिपाही लोग, सुदर्शन के घर के सामने गये। वे सुदर्शन के घर के सामने इस विचार से ठहर गये, कि जिसमें सुदर्शन के घर के लोग सुदर्शन से अन्तिम भेंट कर लें। उनके हृदय में भी सुदर्शन के प्रति स्नेह था। इसलिए वे सुदर्शन के घर के सामने कुछ देर तक ठहरे रहे, लेकिन सुदर्शन को देखने के लिए न तो मनोरमा ही निकली, न उसके पुत्र ही निकले। लोगों ने मनोरमा के पास बहुत सन्देश भेजे, परन्तु मनोरमा तो यह निश्चय करके परमात्मध्यान में बैठी ही रही कि मैं अपने पति का दर्शन तभी करूँगी, जब उन पर लगा हुआ कलंक दूर होगा। जब तक उन पर कलंक लगा हुआ है, तब तक मैं पति का मुँह कदापि न देखूँगी। मेरा और पति का सम्बन्ध, सत्य तथा धर्म के नाते है। जब तक दोनों सत्य और धर्म पर हैं, तभी तक दोनों का सम्बन्ध भी है, लेकिन जब सत्य-धर्म

नहीं है तब पति-पत्नी सम्बन्ध भी नहीं है। पति पर जो कलंक लगा हुआ है वह यदि सही है, तब तो मेरा तथा उनका कोई सम्बन्ध ही नहीं रहा, और इस कारण मैं उनका मुँह देखूँगी भी क्यों! ऐसी दशा में मुझे यही मानना चाहिये, कि मेरे पति को शूली नहीं दी जा रही है, किन्तु अधर्म-असत्य को शूली दी जा रही है, जो बुरा नहीं है। और यदि मेरे पति में सत्य-धर्म विद्यमान है, तो उन को कदापि शूली नहीं लग सकती। क्योंकि सत्य-धर्म के होते हुए भी उनको शूली लगना सत्य-धर्म को शूली लगना होगा, लेकिन सत्य-धर्म को कोई शूली नहीं लगा सकता। फिर मैं पति के विषय में किसी प्रकार की चिन्ता क्यों करूँ! यदि पति में असत्य-अधर्म होगा तब तो उनको शूली से कोई बचा नहीं सकता, और सत्य-धर्म होगा तो कोई शूली पर चढ़ा नहीं सकता। इसलिए मैं पति का दर्शन तभी करूँगी, जब उनका सत्य-धर्म प्रकट होगा, और उन पर लगा हुआ कलंक दूर होगा।

जब सुदर्शन के घर का कोई भी मनुष्य सुदर्शन को देखने के लिए नहीं निकला, तब सिपाही लोग सुदर्शन को लेकर आगे बढ़े। उस समय भी किसी ने तो मनोरमा की निन्दा की, और किसी ने सुदर्शन के लिए यह कहा, कि सेठानी के साथ इसका व्यवहार ही ऐसा रहा होगा, इसी से वह अन्तिम वार भी इसका मुँह देखने के लिए नहीं निकली, न अपने पुत्रों को ही आने दिया।

सुदर्शन के साथ के स्त्री-पुरुष इसी प्रकार की अनेक बातें करते जाते थे।

सुदर्शन को लेकर सिपाही लोग उस स्थान पर गये, जो सुदर्शन को शूली दी जाने के लिए नियत था, और जहाँ शूली गड़ी हुई थी। वहाँ सुदर्शन को शूली के समीप खड़ा कर दिया। सब दर्शक लोग चारों ओर ऊँचे-ऊँचे स्थानों पर खड़े होकर यह देखने लगे, कि सुदर्शन को किस तरह शूली पर चढ़ाया जाता है। सब दर्शकों को शान्त करके एक उच्च कर्मचारी ने सुदर्शन तथा दर्शकों को राजा का वह निर्णय सुनाया, जिसमें सुदर्शन पर लगाये गये अभियोगों का वर्णन था, और सुदर्शन को शूली पर चढ़ाने की आज्ञा दी गई थी। यह आज्ञा सुना कर उस राज कर्मचारी ने सुदर्शन से कहा, कि—महाराजा की आज्ञानुसार हम तुम से यह कहते हैं, कि तुम अपना मौन भंग करके इस घटना के विषय में कुछ कहो जिससे महाराजा अपनी आज्ञा पर फिर विचार करें। राज्य के उच्चाधिकारी ने सुदर्शन से ऐसा तीन बार कहा, परन्तु सुदर्शन कुछ भी नहीं बोला; किन्तु मौन ही बना रहा। दर्शकों में से भी अनेकों ने सुदर्शन से बोलने के लिए आग्रह किया, लेकिन सुदर्शन चुप ही बना रहा।

राज्य के उच्चाधिकारी और दर्शकों के कहने पर भी जब सुदर्शन कुछ नहीं बोला, तब उच्चाधिकरी ने सुदर्शन से कहा,

कि—जब तुम बोलते ही नहीं, तब तुम्हें महाराजा की आज्ञानुसार शूली पर चढ़ना ही होगा। इसलिए तुम शूली पर चढ़ने के लिए तय्यार हो जाओ। शूली पर चढ़ाने से पहले तुम्हें कुछ समय अपने इष्ट का स्मरण करने एवं अपने कृत्य के लिए पश्चात्ताप करने को दिया जाता है। तुम थोड़े समय में अपने कृत्य के लिए पश्चात्ताप और अपने इष्ट का ध्यान स्मरण कर लो।

अधिकारी का यह कथन सुन कर, सुदर्शन सेठ ने सागारी सन्थारा किया। उसने अपने मन में कहा कि—हे प्रभो, मैं तेरी साक्षी से यह निश्चय करता हूँ, कि यदि मैं जीवित रहा तब तो मेरे जो व्रत नियम पहले से हैं वे हैं ही, लेकिन यदि मर गया तो उस दशा के लिए मैं अठारह पापों का तीन करण तीन योग से सदा के लिए त्याग करता हूँ, और संसार के सभी जीवों को मित्र मानता हूँ। मेरे हृदय में किसी के भी प्रति वैर नहीं है। मेरी जिस अभया माता की कृपा से मुझे शूली पर चढ़ाया जा रहा है, उसके प्रति भी मेरे हृदय में वैर नहीं है, किन्तु उसे मैं मेरे पर उपकार करने वाली मानता हूँ। उसी की कृपा से, आज मैं तीन करण तीन योग से अठारह पापों का इस प्रकार त्याग कर सका हूँ। इसलिए मैं तेरे से यही चाहता हूँ, कि मेरे हृदय में अभया या और किसी के प्रति किंचित् भी वैर न आवे। मैं सभी को अपना मित्र मानूँ।

इस तरह अठारह पापों का त्याग करके और सब जीवों से क्षमा माँग कर, सेठ ने चिरपरिचित नवकार मन्त्र का ध्यान किया। सुभग के भव में भी सेठ ने नवकार मन्त्र के ध्यान में ही अपने प्राण त्यागे थे, और इस भव में भी उसने—शूली चढ़ने से पहले—नवकार मन्त्र का ही ध्यान किया। उसके हृदय में किसी के प्रति न तो वैर भाव ही था, न राग द्वेष ही था। सुदर्शन सेठ के नवकार-मन्त्र के ध्यान और उसके साथ लगी हुई सत्य-शील की शक्ति से देवताओं के आसन कम्पित हो उठे। उन्होंने अपने अवधिज्ञान द्वारा देखा तो उन्हें ज्ञात हुआ, कि सुदर्शन सेठ को शूली पर चढ़ाया जा रहा है। यह जानकर उन लोगों ने सोचा, कि जिसके हृदय में किसी के प्रति वैर नहीं है तथा नवकार मन्त्र का ऐसा अखण्ड ध्यान है, जिसने पूर्वभव में भी नवकार मन्त्र के ध्यान में ही शरीर त्यागा था, जो शीलवान है, और शील भङ्ग न करने के कारण ही जिसे शूली दी जा रही है, उस सुदर्शन की रक्षा अवश्य ही करनी चाहिये। यदि हमने ऐसा न किया, तो हमारी गणना पतितों में होगी।

इस प्रकार सोच कर देवों ने सुदर्शन की रक्षा का निश्चय कर लिया। राज्य के उच्चाधिकारी ने सुदर्शन को—अपने इष्ट का ध्यान करने के लिए—जो समय दिया था, वह समय समाप्त होते ही राजा के सुभटों ने सुदर्शन को शूली पर बैठाने के लिए

उठाया। सुदर्शन को शूली पर बैठाया जा रहा है, यह देखकर लोग हाहाकार करने लगे। हाहाकार से उत्पन्न कोलाहल के बीच राजा के सिपाहियों ने सुदर्शन को शूली पर रखा, लेकिन उन्होंने जैसे ही सुदर्शन को शूली पर रखा, वैसे ही शूली के स्थान पर सिंहासन प्रकट हो गया, तथा शूली पर रखा जाने के बदले सुदर्शन सिंहासन पर रखा गया, और देवता लोग उस पर चवँर छत्र करके कहने लगे, कि—हे शील पालनेवाले, आपकी जय हो! आपने प्राण देना तो स्वीकार किया, लेकिन परदारा गमन करना स्वीकार नहीं किया, इसलिए आपकी जय हो! शील पालन के साथ ही आपने मैत्री भावना का भी अनुपम परिचय दिया। जिसके प्रपंच के कारण आपको शूली दी जा रही थी उसके प्रति भी आपके हृदय में द्वेष भी नहीं है, आप उसे भी उपकार करनेवाली मानते हैं, इसलिए आपकी जय हो! जिस परिस्थिति में पड़ने पर बड़े-बड़े ऋषि मुनियों को भी शील बचाना कठिन है, उस कठिन परिस्थिति में भी अपने शील की रक्षा की, इसके लिए आपको अनेक धन्यवाद हैं। आप ऐसे शील पालने वालों के प्रताप से ही हम लोगों के आसन दृढ़ हैं। आपने शील की रक्षा करके हम देवों के लिए एक उत्तम आदर्श उपस्थित किया है। इसलिए हम पुनः-पुनः यही कहते हैं, कि आपको धन्य है और आपकी जय हो।

सुदर्शन को शूली पर बैठाया जा रहा है, यह देख कर दर्शक लोग हाहाकार कर रहे थे, और सोच रहे थे, अभी सुदर्शन का मस्तक फाड़ कर शूली निकल जावेगी; लेकिन उन्होंने जब यह देखा, कि सुदर्शन शूली के बदले सिंहासन पर बैठा है तथा उस पर चवँर छत्र हो रहे हैं और देवगण उसकी महिमा कर रहे हैं, तब उन्हें आश्चर्य सहित अत्यधिक प्रसन्नता हुई। वे सब लोग, हर्ष पूर्वक सुदर्शन का जय जय कार-करने लगे। उन लोगों में से कोई तो कहने लगा, कि सुदर्शन को लोग अब तक अपराधी जानते थे और न बोलने के कारण मूर्ख कहते थे, लेकिन सुदर्शन अपराधी नहीं है और उसके न बोलने में क्या रहस्य था, यह अब प्रकट हो गया। सुदर्शन पर लगा हुआ कलंक रूपी राहु अब दूर हुआ। अब सब को ज्ञात हो गया कि सुदर्शन निरपराधी एवं शीलवान है। कोई कहने लगा, कि हम तो पहले ही जानते थे, कि सुदर्शन सदाचारी है और वह रानी के महल में कदापि नहीं जा सकता; उस पर रानी के महल में जाने और रानी पर बलात्कार करने का जो अभियोग लगाया गया है, वह झूठा है। अन्त में हमारा यह कथन सही निकला, और सत्य की जय हुई। कोई कहता था, कि यह सब अभया का फैलाया हुआ त्रियाचरित्र था। सेठ ने उसकी बात न मानी होगी, इसी से उसने सेठ पर अभियोग लगा कर राजा द्वारा उसके लिए शूली की आज्ञा दिलाई होगी।

प्रसन्न होते हुए लोग, इस तरह अनेक प्रकार की बातें करते थे। कोई सुदर्शन की प्रशन्सा करता था, और कोई मनोरमा की। कोई कहता था, कि सुदर्शन को अपने सत्य पर कैसा दृढ़ विश्वास है, कि अन्त तक सत्य के ही सहारे रहा; और कोई कहता था कि मनोरमा को अपने पति पर कैसा विश्वास है कि सब लोगों के इतना कहने पर भी वह परमात्मध्यान में ही बैठी रही। इसी प्रकार कोई रानी के लिए यह कहता था, कि रानी कैसी दुष्टा तथा दुराचारिणी है, कि उसने इस तरह के शीलवान पुरुष पर भी झूठा कलङ्क लगा कर उसे शूली दिलाने का प्रयत्न किया; और कोई राजा के लिये कहता था, कि राजा बिलकुल ही रानी के आधीन और उसका दास है, तभी तो उसने रानी के कथन पर विश्वास करके ऐसे पुरुष के लिए शूली पर चढ़ाने की आज्ञा दे दी। कोई-कोई यह भी कहता था, कि जब सुदर्शन किसी की निन्दा नहीं करता है, तब अपन किसी की निन्दा क्यों करें।

शूली के स्थान पर सिंहासन और देवों द्वारा सुदर्शन की महिमा देख कर, वहाँ उपस्थित राजकर्मचारी भी आश्चर्यचकित हुए। उन्होंने तत्क्षण यह समाचार राजा के पास भेजा, और राजा से यह पुछवाया, कि अब क्या करना चाहिये ! कर्मचारियों द्वारा भेजा गया—शूली का सिंहासन बनने, सुदर्शन के वचने और देवों द्वारा सुदर्शन की महिमा का—समाचार सुनकर राजा को

भी बहुत आश्चर्य हुआ। उसके हृदय में अनेक प्रकार के विचार होने लगे। वह उसी समय दौड़ा हुआ उसी स्थान पर आया और हाथ जोड़ कर सुदर्शन से कहने लगा, कि—हे महानुभाव, मेरा अपराध क्षमा करो। मैंने, आप ऐसे सत्पुरुष को शूली पर चढ़ाने की आज्ञा दी, यह मेरा अपराध है। मैंने केवल ऊपर की ही बातें देख कर आप को अपराधी ठहरा दिया। मैं अज्ञानी वास्तविक बात को जानता भी कैसे! परन्तु अन्त में सत्य उसी प्रकार प्रकट हुआ जिस प्रकार बादलों को चीरकर सूर्य प्रकाशित होता है। आपके लिए शूली का सिंहासन बन गया, और देवों ने आपकी महिमा की, इसलिए अब कौन कह सकता है कि आप शीलवान नहीं हैं! लेकिन इससे पहले आपके मौन रहने के कारण, मैंने और मेरे साथ दूसरों ने यही माना कि आप अपराधी हैं। इस प्रकार अज्ञान के कारण मेरे से यह अपराध हुआ है। आप मेरा यह अपराध क्षमा करो। यह संसार ऐसा ही है। इसमें रहने वालों के लिए महापुरुषों का कहना है, कि—

असइतु मणुस्सेहिं मिच्छादंडो पउजई।
अकारिणोत्थ वज्झेज्जा मुच्चई कारओ जणो॥

अर्थात्—संसार में रहनेवाले मनुष्यों द्वारा अनेक बार मिथ्यादण्ड (अनर्थदण्ड) भी दिया जाता है, अनेक निरपराधियों को मार डाला

जाता है, और अनेक अपराधियों को छोड़ दिया जाता है, दण्ड नहीं दिया जाता।

राजा को देखकर, उसका आदर करने के लिए सुदर्शन सिंहासन पर से नीचे उतरने लगा था, लेकिन राजा ने उससे कहा, कि आप सिंहासन पर ही बैठे रहिये, जिसमें सब लोग अच्छी तरह से आपका दर्शन करके अपने नेत्र सफल कर सकें, और अपने पापों का पश्चात्ताप कर सकें। इस प्रकार कह कर राजा दधिवाहन ने सुदर्शन को सिंहासन से नीचे नहीं उतरने दिया।

शूली मिटकर सिंहासन हो जाने आदि बातें देखकर, कुछ लोग दौड़े हुए सुदर्शन के घर गये। उन्होंने सुदर्शन के नौकरों द्वारा मनोरमा के पास सब समाचार की सूचना भेजी। मेरे पति को दी जाने वाली शूली सिंहासन बन गई है तथा मेरे पति बच गये हैं, यह जान कर मनोरमा को जो प्रसन्नता हुई उसका वर्णन कौन कर सकता है! उसने परमात्मा को धन्यवाद देते हुए कहा कि—हे प्रभो, तेरी ही कृपा से मेरे पति पर लगा हुआ कलङ्क दूर हुआ है। यद्यपि मैं जानती थी, कि मेरे पति सर्वथा निरपराधी हैं और वे पर-स्त्री मात्र को माता मानते हैं, लेकिन न मालूम किन अज्ञात कारणों से उन पर यह कलङ्क लगा था। तेरी कृपा से पति पर लगा हुआ कलङ्क मिट गया। मुझे पति के बच जाने से उतनी प्रसन्नता नहीं है, जितनी प्रसन्नता उन पर लगा हुआ

कलङ्क मिट जाने से है। क्योंकि हाड़-माँस से बना हुआ यह शरीर नाश तो होगा ही परन्तु किसी प्रकार के कलङ्क के साथ इसका नष्ट होना बुरा है!

इस प्रकार परमात्मा को धन्यवाद देकर मनोरमा ने अपने पुत्रों से कहा, कि—पुत्रो! तुम्हारे पिता को जिस शूली पर चढ़ाया जा रहा था वह शूली सिंहासन बन गई है, और देवगण तुम्हारे पिता की महिमा कर रहे हैं। इसलिए चलो, अपन भी चल कर उनका दर्शन करें और उन्हें समारोह-पूर्वक घर लावें।

पुत्रों सहित मनोरमा उठ खड़ी हुई। उसने, पति का दर्शन करने के लिए जाने की तय्यारी की। उसकी सखी सहेलियाँ तथा उसके पड़ोस की स्त्रियाँ भी उसके साथ हुईं। सब स्त्रियाँ मंगल गीत गाती हुई उसी स्थान पर आईं, जहाँ सुदर्शन सेठ सिंहासन पर बैठा हुआ था, और राजा उससे अपने अपराधों की क्षमा मांग रहा था। मनोरमा को देख कर सब लोग, उसकी और सुदर्शन सेठ की जय-जय बोलने लगे। भीड़ ने, मनोरमा के लिए सुदर्शन के सिंहासन तक मार्ग कर दिया। पुत्रों सहित मनोरमा अपने पति के सामने गई। सुदर्शन ने मनोरमा और अपने पुत्रों को तथा मनोरमा और उसके पुत्रों ने सुदर्शन को देखा। उन सब के हृदय में प्रेम का सागर उमड़ पड़ा। सुदर्शन और मनोरमा को देख कर वहाँ उपस्थित लोग कहने-लगे, कि आज यह स्थान एक

प्रकार का तीर्थस्थान बन गया है। अब तक इस स्थान पर लोगों को शूली ही शूली दी गई, ऐसा आनन्द कभी नहीं आया। इस सीता-राम की तरह की मनोरमा-सुदर्शन की जोड़ी की कृपा से ही यहाँ पर यह आनन्द हुआ है। यह आनन्द प्राप्त कराने में सुदर्शन और मनोरमा का समान उपकार है। मनोरमा सुदर्शन की अर्द्धाङ्गा है। आधा अङ्ग सिंहासन पर रहे और आधा नीचे रहे यह ठीक नहीं है, इसलिए देवी मनोरमा को भी सुदर्शन के समीप सिंहासन पर बैठाना चाहिए।

राजा ने लोगों के इस कथन का समर्थन किया, और मनोरमा से सुदर्शन के समीप सिंहासन पर बैठने की प्रार्थना की। राजा की प्रार्थना और लोगों के अनुरोध से मनोरमा, सुदर्शन के समीप सिंहासन पर बैठी। सिंहासन पर बैठी हुई इस जोड़ी को लोग धन्यवाद देने लगे, और दोनों का जय-जयकार करने लगे। उस समय लोगों के हृदय में अपूर्व उत्साह था। वह दृश्य देखने के लिए देवगण भी विमानों में बैठे हुए आकाश में मंडरा रहे थे, और सुदर्शन की जय बोल रहे थे।

१७

सुदर्शन की उदारता

आत्मार्थं जीवलोकऽस्मिन् , को न जीवति मानवः ।
परं परोपकारार्थं, यो जीवति स जीवति ॥

अर्थात्—इस लोक में स्वयं के लिए कौन जीवित नहीं रहता ! अपने लिए तो सभी जीवित हैं; परन्तु वास्तव में जीवित वही है, जो दूसरे का उपकार करने के लिए जीता है ।

उदार पुरुष, स्वयं को प्राप्त वस्तु का उपयोग केवल स्वयं ही नहीं करते, किन्तु उसका लाभ दूसरे को भी देते हैं । यह बात

दूसरी है, कि वह वस्तु ऐसी न हो जिसका लाभ दूसरे को दिया जा सके, अन्यथा वे स्वयं को प्राप्त वस्तु का लाभ सभी को देते हैं। उनके द्वारा दिये जानेवाले उस लाभ को कोई स्वयं ही न ले तो इसका तो वे कर ही क्या सकते हैं, लेकिन उदार पुरुषों की चेष्टा तो यही रहती है, कि मुझे जो अच्छी वस्तु प्राप्त हुई है उसका लाभ मैं दूसरे को भी दूँ। भगवान तीर्थङ्कर या साधु लोग जो ज्ञान प्राप्त करते हैं वह अपने आत्मकल्याण के लिए ही, फिर भी वे अपने उस ज्ञान को केवल अपने ही लिए गोप कर नहीं रखते किन्तु उसका लाभ सभी जीवों को देने का प्रयत्न करते हैं। वे, सभी का कल्याण चाहते हैं, किसी का बुरा तो चाहते ही नहीं। जिसके हृदय में उनके प्रति शत्रुता का भाव है, जिसने उनके साथ शत्रुतापूर्ण व्यवहार किया है, वे ज्ञानी पुरुष उसका भी कल्याण ही चाहते हैं। क्योंकि वे किसी जीव को अपना शत्रु तो मानते ही नहीं। उदार पुरुषों का यह स्वभाव ही होता है।

सुदर्शन भी उदार-प्रकृति का व्यक्ति था। उसने अपने पद, अपनी प्रतिष्ठा और अपनी सम्पत्ति का लाभ तो दूसरों को दिया ही, लेकिन धार्मिक कृत्य द्वारा उसे आध्यात्मिक शक्ति विषयक जो अनुभव हुआ, उसे भी उसने गोप कर नहीं रखा किन्तु उसका भी लाभ सब को दिया, और सब को यह भी बताया कि यह शक्ति कैसे प्रकट की जा सकती है। इतना ही नहीं किन्तु उसने उन

लोगों के लिए उदारता का ही व्यवहार किया, जिनके करण उसको शूली पर लगाया गया था। कपिला, पंडिता तथा अभया के कृत्य एवं षड्यन्त्र का ही यह परिणाम था, कि राजा ने सुदर्शन को शूली पर चढ़ाने की आज्ञा दी थी। उन लोगों का यह अपराध कैसा भयङ्कर था! लेकिन सुदर्शन ने उनके लिए भी उदारता का ही व्यवहार किया। कपिला, पंडिता और अभया आदि में से, लोगों की जबान पर केवल अभया का ही नाम था क्योंकि प्रकट में अभया के ही कारण सुदर्शन को शूली पर चढ़ना पड़ा था। लोग यही जानते थे, कि अभया ने ही सुदर्शन को शूली दिलाई है। राजा भी ऐसा ही समझता था। सुदर्शन को शूली मिलने में कपिला और पंडिता आदि भी कारण रूप हैं, यह बात लोगों को ज्ञात न थी। सुदर्शन ने यह अप्रकट बात तो प्रकट की ही नहीं, लेकिन जिसका नाम प्रकट हो चुका था उस अभया के लिए भी अनुपम उदारता का ही परिचय दिया।

सुदर्शन के समीप मनोरमा को बैठा कर उपस्थित लोगों ने सुदर्शन से यह प्रार्थना की, कि अब आप अपने मुख से उपदेशप्रद दो शब्द सुनाने की कृपा कीजिये, तथा यह बतलाइये कि आप किस निश्चय पर थे, जिससे बहुत कहने-सुनने पर भी आप कुछ नहीं बोले और अन्त में शूली का सिंहासन बन गया। हम लोगों के मन में आपका वह निश्चय और आपके हृदय की वह प्रबल

भावना जानने की बहुत ही उत्कण्ठा है। अतः आप हमारी यह इच्छा पूर्ण करने का कष्ट कीजिये।

राजा तथा अन्य लोगों की इस प्रार्थना को स्वीकार करके सुदर्शन कहने लगा, कि—प्रिय भाइयो और बहनो !

आप लोग मुझ से मेरी भावना और मेरा वह निश्चय जानना चाहते हैं, जिसके अनुसार मैं शूली पर चढ़ने तक भी मौन रहा, लेकिन मेरी समझ में नहीं आता कि इस सम्बन्ध में मैं आप लोगों से क्या कहूँ, और वह निश्चय तथा वह भावना किस प्रकार व्यक्त करूँ। उस निश्चय तथा भावना का ज्ञान हृदय को है, लेकिन हृदय के जीभ नहीं है, और जिसमें बोलने की शक्ति है वह जीभ उस निश्चय तथा उस भावना को जानती नहीं है। ऐसी दशा में मैं उस निश्चय और भावना को प्रकट करूँ तो कैसे ! यद्यपि मन की सहायता से वाणी उस निश्चय और भावना को कह सकती है, फिर भी वाणी में यह शक्ति नहीं है कि वह मन तथा आत्मा के अनुभव को पूरी तरह व्यक्त कर सके। भगवान तीर्थङ्कर भी ज्ञान में जो कुछ देखते हैं, वह वाणी द्वारा पूरी तरह कह नहीं सकते, किन्तु उसका अनन्तवाँ भाग ही कहने में आता है। जब भगवान तीर्थङ्कर की वाणी में भी यह शक्ति नहीं है, तब मुझ पामर की बाणी में यह शक्ति कहाँ से हो सकती है कि हृदय और आत्मा के अनुभव को पूरी तरह कह सके। मेरे हृदय और मेरे

आत्मा का अनुभव आपके जानने में तभी आ सकता है, जब आप स्वयं भी अनुभव करें। वह वस्तु तो स्वयं के अनुभव से ही जानने योग्य है, किसी से सुनकर जानने में नहीं आ सकती, न कोई अपने अनुभव को पूरी तरह व्यक्त करने में समर्थ ही है। ऐसा होते हुए भी मैं आपको वे सैद्धान्तिक बातें सुनाता हूँ, जिनकी सहायता से आप भी उस निश्चय और वैसी ही भावना को अपने में पैदा कर सकते हैं, जो निश्चय और जिस भावना को आप मेरे से सुनना चाहते हैं, अथवा जिसके कारण आप सब मेरा सम्मान कर रहे हैं। आप लोग इस समय मेरा जो सम्मान कर रहे हैं, वह इस हाड़ माँस से बने शरीर के कारण नहीं कर रहे हैं, किन्तु उस निश्चय और भावना के कारण ही कर रहे हैं। मुझे यह बात पहले से मालूम न थी, कि मैं शूली से बच जाऊँगा और शूली भी सिंहासन बन जावेगी। मैं तो यही सोचता था, कि मुझे शूली द्वारा प्राण त्याग करने होंगे। फिर भी मैं अपने निश्चय और अपनी भावना पर दृढ़ रहा, तथा सब के कहने पर भी कुछ नहीं बोला। मैं इसी विचार से कुछ नहीं बोला, कि मेरे बोलने से किसी को कष्ट होगा। मैंने यह निश्चय किया था, कि मेरा यह भौतिक शरीर भले ही नष्ट हो जावे लेकिन इसकी रक्षा के लिए किसी दूसरे को कष्ट न होने दूँगा। यद्यपि मेरे मौन रहने के कारण मुझे अनेक प्रकार के अपवाद सुनने पड़े, फिर भी मैं अपने निश्चय से

विचलित नहीं हुआ। इस दृढ़ता का ही यह प्रताप है, कि मेरे पर लगा हुआ सब कलङ्क भी मिट गया, और मैं शूली से भी बच गया।

मुझे गुरु द्वारा धर्म की यह शिक्षा मिली है, कि शरीर और आत्मा दोनों भिन्न हैं। शरीर जड़ है और आत्मा चैतन्य है। शरीर के लाभ-हानि से आत्मा का कोई सम्बन्ध नहीं है। आत्मा को तो सत्य शीलादि सद्गुणों से ही लाभ हो सकता है, और इन सद्गुणों का अभाव तथा इनके विरोधी दुर्गुणों का सद्भाव ही आत्मा की हानि करनेवाला है। यदि सत्यशीलादि सद्गुणों का पालन करते हुए शरीर नष्ट भी हो जावे तब भी आत्मा को तो लाभ ही है, लेकिन इन गुणों को नष्ट करके शरीर की रक्षा करने पर आत्मा को हानि ही उठानी पड़ेगी। भौतिक और आध्यात्मिक शक्ति में से आध्यात्मिक शक्ति ही प्रबल है, और उसी का अधिक महत्व है; परन्तु भौतिक शक्ति की तरह आध्यात्मिक शक्ति प्रत्यक्ष नहीं है। इसलिए लोग अदृश्य शक्ति को भूल कर दृश्य शक्ति में पड़ रहे हैं, और उसी पर विश्वास करते हैं; अदृश्य शक्ति पर विश्वास नहीं करते। इस भूल के कारण ही आत्मा को बार-बार जन्म-मरण करना पड़ता है, तथा अनेक यातनाएँ भोगनी होती हैं। आत्मा जबतक अपनी इस भूल को नहीं निकालता, अदृश्य शक्ति पर विश्वास नहीं करता और सत्यशीलादि सद्गुणों को नहीं अपनाता, तब तक इसका कल्याण नहीं होता, वह

मोक्ष की ओर ऊर्ध्वगामी नहीं होता, किन्तु संसार में भटकता रहता है। इस बात को समझ कर जिनसे आत्मा का कल्याण है उन सद्गुणों को अपनाना, और जिनसे आत्मा को हानि उठानी पड़ती है उन दुर्गुणों को त्यागना; इसी का नाम धर्म है।

गुरु की कृपा से मैं इस धर्म को समझा हुआ था, और मुझे इस पर ऐसा दृढ़ विश्वास था कि मैंने शूली पर चढ़ना तो स्वीकार किया, लेकिन इस धर्म को नहीं त्यागा। यानी सत्य और शील नष्ट नहीं होने दिया। इस धर्म पालन से ही अदृश्य शक्ति द्वारा शूली के स्थान पर सिंहासन प्रकट हो गया। अदृश्य शक्ति द्वारा जो सहायता प्राप्त हुई, उस सहायता की मैंने आकांक्षा भी नहीं की थी। यदि मैं आकांक्षा करता, तब तो मेरा सब धर्म पालन व्यर्थ हो जाता। क्योंकि, कामना सहित किया गया धर्म कार्य प्रायः व्यर्थ होता है। मैंने कोई कामना नहीं की थी। उस निष्काम धर्म पालन का ही यह प्रताप है, कि शूली का सिंहासन बना, तथा आप सब लोग मेरा सम्मान कर रहे हैं। इसलिए मैं आप सब लोगों से भी निष्काम धर्म पालन के लिए कहता हूँ, और यह कहता हूँ कि भौतिक दृश्य शक्ति को ही न देखो, उसी को महत्व न दो, किन्तु अदृश्य आध्यात्मिक शक्ति पर विश्वास करके उसे महत्व दो; तथा सत्य शील का इस तरह पालन करो कि चाहे प्राण भी जावें, लेकिन सत्यशील को कदापि न जाने दो।

सुदर्शन सेठ का यह उपदेश सुनकर सब लोग बहुत प्रसन्न हुए। जो लोग धर्म और ईश्वर पर विश्वास करते थे वे तो प्रसन्न हुए ही, लेकिन जिन लोगों को ईश्वर और धर्म पर विश्वास नहीं था, जो लोग ईश्वर और धर्म की निन्दा करके आत्मा का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते थे, वे लोग भी सुदर्शन का उपदेश सुन कर ईश्वर और धर्म पर विश्वास तथा आत्मा का अस्तित्व स्वीकार करने लगे। जो लोग पहले सुदर्शन को धर्मढ़ोंगी कह कर उसे बुरा बताते थे, वे लोग भी सुदर्शन की बड़ाई करते हुए अपने कथन और विचारों के लिए पश्चात्ताप करने लगे।

राजा आदि सब उपस्थित लोगों ने सुदर्शन से प्रार्थना की, कि अब आप घर को पधारिये। लोगों की यह प्रार्थना सुन कर सुदर्शन ने सोचा, कि मैंने पर घर जाने का जब त्याग नहीं किया था उस समय मुझे कपिला के कपटजाल में फँसना पड़ा। उस घटना पर से मैंने पर-घर जाने का त्याग कर दिया, लेकिन इस त्याग पर भी मैं शान्ति पूर्वक न रह सका, और जब मैं धर्मध्यान में बैठा था उस समय मुझे अभया के प्रपंच में फँसना पड़ा। इस प्रकार यह संसार ही ऐसा है, कि इसमें रहने वाले को किसी भी प्रकार शांति नहीं मिलती। इस संसार में रहने वाले से, किसी न किसी रूप में दूसरे जीवों को कष्ट होता ही है। इसी बात को दृष्टि में रख कर महात्मा लोग संसार त्याग कर संयम

लेते हैं, और फिर संसार में न आना पड़े इसका प्रयत्न करते हैं। वे सोचते हैं कि—

अवश्यं यातार, श्चिरतर मुषित्वाऽपि विषया।
वियोगे को भेद, स्त्यजति न जनो यत्स्वयममून्॥
व्रजन्तः स्वातंत्र्या, दतुल परितापाय मनसः
स्वयं त्यक्त्वा ह्येते, शम सुख मनन्तं विदधति॥

अर्थात्—विषयों को चाहे जितने दिन तक भोगें, एक दिन वे अवश्य छूट ही जावेंगे। ऐसी दशा में हम स्वयं ही क्यों न त्याग दें! विषय हमको छोड़ें और हम विषयों को छोड़ें इन दोनों में यह अन्तर है, कि जब विषय हमको छोड़ेंगे तब हमें बड़ा दुःख होगा, लेकिन यदि हम स्वयं विषयों को छोड़ देंगे, तो हम को अनन्त सुख शान्ति प्राप्त होगी।

इसी सिद्धान्त को दृष्टि में रख कर महात्मा लोग संयम लेते हैं। मुझे भी संयम मार्ग अपनाना है, और इस मार्ग को अपनाने पर मेरी आत्मा का कल्याण भी है, लेकिन अभी जो लोग मेरे सहारे हैं, उनको आश्वासन देना, तथा मेरे पर संसार का जो कार्य भार है उससे निवृत्त होना आवश्यक है। इसलिए मुझे एक बार घर जाना चाहिए, और सब व्यवस्था करके फिर संयम लेना चाहिए।

इस प्रकार विचार कर सुदर्शन ने राजा आदि का अनुरोध स्वीकार कर लिया। वह सब के साथ नगर में चलने के लिए

सिंहासन से नीचे उतरने लगा, लेकिन वहाँ उपस्थित लोगों ने सुदर्शन से कहा कि आप सिंहासन से नीचे मत उतरिये, किन्तु सिंहासन पर बैठे रहिये। इस सिंहासन को इसी तरह ले चलेंगे, जिसमें सब लोग अच्छी तरह से आपका दर्शन कर सकें।

लोगों ने सुदर्शन से अत्यधिक अनुरोध किया, और सुदर्शन को सिंहासन पर बैठे रहने के लिए विवश कर दिया। लोगों के आग्रह से सुदर्शन तो सिंहासन पर बैठा रहा, लेकिन मनोरमा सिंहासन पर से उतर कर अपनी सखियों के साथ हो गई। जिस सिंहासन पर सुदर्शन बैठा हुआ था, सुदर्शन सहित वह सिंहासन कुछ लोगों ने उठा लिया, और सब लोग जयजयकार करते हुए नगर की ओर चले। साथ में जो स्त्रियाँ थीं, वे भी मंगल गीत गाती जाती थीं। उस समय का मनोहर दृश्य देख कर देवगण भी प्रसन्न हो रहे थे।

जब सुदर्शन का घर समीप आया, तब मनोरमा आगे निकल कर अपने घर आई। उसने सोचा, कि आज अनायास ही इन सब लोगों का मेरे यहाँ आगमन हो रहा है। यदि मैंने इन लोगों का उचित सत्कार न किया, तो मैं गार्हस्थ्य धर्म से पतित मानी जाऊँगी। इस प्रकार सोच कर मनोरमा ने, अपनी सखियों और दासियों की सहायता से लोगों के स्वागत–सत्कार एवं बैठने आदि का सब प्रबन्ध किया। सुदर्शन को लेकर जब वह जुलूस

सुदर्शन के घर पहुँचा, तब मनोरमाने थाल में मंगल द्रव्य लेकर सब का स्वागत किया। सुदर्शन के साथ सब लोग सुदर्शन के घर गये। सुदर्शन का स्वच्छ तथा पवित्र घर देख कर राजा आदि सभी लोगों को बहुत प्रसन्नता हुई। सब लोग मनोरमा की प्रशन्सा करते हुए कहने लगे, कि जिस घर में मनोरमा ऐसी श्राविका हो, वह घर इस तरह स्वच्छ रहे और उस घर की चीजें व्यवस्थित हों इसमें आश्चर्य ही क्या है! कोई कहता था, कि स्वर्ग को बहुत सुन्दर कहा जाता है, और उसकी प्रशन्सा की जाती है, लेकिन स्वर्ग में इस घर से अधिक सुन्दरता क्या होगी! कोई कहता था, कि केवल सुन्दरता ही न देखो, किन्तु इस घर का महत्व भी देखो। सुन्दरता में तो स्वर्ग इस घर से बढ़कर भी हो सकता है, लेकिन महत्व की दृष्टि से बेचारा स्वर्ग इस घर की समता नहीं कर सकता। स्वर्ग में रहने वाले लोग ऐसी करणी नहीं कर सकते, जैसी करणी इस घर में रहने वाले ने की है। शील पालनेवालों में शिरोमणि सुदर्शन सेठ इसी घर में जन्मे तथा बड़े हुए हैं, और उन्होंने इसी घर में शील पालन का अभ्यास किया है। इसलिए इस घर की समता स्वर्ग भी नहीं कर सकता। स्वर्ग तो ऐसा स्थान है, जहाँ पुण्य क्षय होता है। पुण्य का उपार्जन वहाँ नहीं हो सकता। इसी प्रकार मोक्ष के लिए कीजानेवाली धर्मकरणी भी पूर्णतया स्वर्ग में नहीं की

जा सकती। ये सब काम तो इस मनुष्यलोक में ही हो सकते हैं। इसके लिए देवताओं को भी मनुष्यलोक में ही आना पड़ता है इसलिए इस घर की तुलना में स्वर्ग तुच्छ ही है।

आपस में इस तरह बातचीत करते हुए लोग सुदर्शन के घर की प्रशन्सा कर रहे थे, और उसे तीर्थस्थान मान कर उसके सामने स्वर्ग को भी तुच्छ बता रहे थे। दूसरी ओर प्रिय वचनों से सब का स्वागत करके और सब को यथा स्थान बैठा कर मनोरमा ने सब का उचित सत्कार किया, तथा सब का आभार माना।

यह सब हो चुकने पर जब लोग अपने-अपने घर जाने के लिए तय्यार हुए तब राजा दधिवाहन ने सुदर्शन से कहा कि—आप मेरी एक प्रार्थना स्वीकार करने की कृपा कीजिये। यद्यपि आपके यहाँ किसी प्रकार की कमी नहीं है, न मैं आपको कुछ देने के योग्य ही हूँ, फिर भी मेरी यह इच्छा है कि आप मुझसे जो कुछ भी चाहें, वह माँगें। जिससे मेरा मनस्ताप कम हो। आप मुझ से जो कुछ भी माँगेंगे, वह मैं अवश्य ही दूँगा। यदि आप मेरा राज्य या मेरा शरीर माँगेंगे, तो मैं वह भी दूँगा। आप मेरी यह इच्छा पूर्ण करके मुझे कृतार्थ कीजिये।

राजा दधिवाहन ने सुदर्शन से इस प्रकार कहा, और बहुत अनुनय-विनय की। दधिवाहन की इस प्रार्थना के उत्तर में सुदर्शन ने कहा, कि—आपकी कृपा से मुझे किसी भी वस्तु की आवश्यकता

नहीं है, फिर भी आप कहते हैं इसलिए आपका सम्मान रखने के वास्ते मैं एक बात माँगता हूँ। आपके अनुरोध पर ही मैंने माँगना स्वीकार किया है इसलिए मुझे विश्वास है, कि मैं जो कुछ माँगूँ वह देने में आपको कोई संकोच न होगा।

दधिवाहन—निःसन्देह मुझे कोई संकोच न होगा। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि यदि आप मेरा राज्य या मेरा शरीर माँगेंगे तो मैं वह देने में भी विलम्ब न करूँगा। हाँ, मैं उन अपराधियों को तो अवश्य न छोड़ूँगा, जिनके कारण आपको शूली पर चढ़ना पड़ा था।

दधिवाहन के इस उत्तर के प्रत्युत्तर में सुदर्शन ने कहा, कि—मेरे लिए अपराधी तो कोई है ही नहीं। जिनके कारण अथवा जिनके कहने पर से आपने मुझे शूली का दण्ड दिया था, उन्हें आप अपराधी मानते हैं, परन्तु मैं उन्हें अपना उपकारी मानता हूँ। उसके लिए मैं यह सोचता हूँ, कि उन्होंने मेरे शील की परीक्षा की है और मुझे शील पर अधिक दृढ़ किया है। अब तक मैं स्वयं के लिए यह नहीं जानता था कि मैं शील का पालन किस सीमा तक कर सकता हूँ, लेकिन इस कसौटी से मुझे यह बात मालूम हो गई। इसलिये मैं उन सब का उपकार मानता हूँ, जिन्होंने मेरे शील की परीक्षा की, मुझ पर जिन लोगों का ऐसा उपकार है, आप उन लोगों को दण्ड देने का विचार त्याग

दें, और मैं आपसे यही मांगता हूँ, कि मुझ से सम्बन्धित इस घटना के कारण मेरी अभया माता को किसी प्रकार का कष्ट न होने दें; किन्तु अब तक आप उनका जो आदर करते रहे हैं, वैसा ही आदर करते रहें। उनके प्रति स्वयं में किसी प्रकार का दुर्भाव न आने दें। मैं आप से केवल यही चाहता हूँ, और कुछ नहीं चाहता।

सुदर्शन का यह कथन सुन कर राजा दधिवाहन कुछ देर के लिए विचार में पड़ गया, और फिर कहने लगा, कि—आपकी इस अपूर्व उदारता के लिए आप को अनेक धन्यवाद हैं! आप ऐसा उदार दूसरा कौन होगा! जिसने आप पर मिथ्या अभियोग लगा कर आपके लिए शूली का दण्ड दिलवाया, उसके लिए भी मुझे वचन बद्ध करके आप ऐसा चाह रहे हैं, यह आपकी महान् उदारता है। आपके प्रति मुझे पहले से ही पूर्ण विश्वास था, लेकिन कुल्टा अभया ने ही बहुत छल-कपट फैला कर आपको दंडित करने के लिए मुझे उत्तेजित किया था। इसलिए मैं तो उसे कठोर दण्ड देने का विचार कर रह था, परन्तु जब आप स्वयं ही अपने प्रति अपराध करनेवाली अभया के लिए ऐसा कह रहे हैं, तब मैं आपकी आज्ञा मान कर आपको प्रसन्न करने के लिए उसको क्षमा क्यों न कर दूँ! मैंने आप से पहले ही यह प्रतिज्ञा कर ली है कि आपकी आज्ञा का अवश्य ही

पालन करूँगा; तदनुसार मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इस घटना के सम्बन्ध में मैं अभया से न तो कुछ कहूँगा, न उसे कोई दण्ड ही दूँगा, किन्तु उसके प्रति पूर्ववत व्यवहार रखूँगा ।

दधिवाहन के यह कहते ही वहाँ उपस्थित लोग धन्य-धन्य कहने के साथ ही सुदर्शन एवं दधिवाहन का जय-जयकार करने लगे। उसी समय वहाँ उपस्थित एक नागरिक खड़ा होकर कहने लगा, कि—आज अपन सब जिस प्रसङ्ग के कारण यहाँ एकत्रित हैं, उस प्रसङ्ग के विषय में मैं भी आप सब लोगों को अपने दो शब्द सुनाना चाहता हूँ। मैं आशा करता हूँ, कि आप लोग मेरे टूटे—फूटे शब्दों को श्रवण करने की कृपा करेंगे ।

उस नागरिक का यह कथन सुन कर सब लोग उसकी बात सुनने के लिए शान्त हो गए। सब लोगों को शान्त देखकर वह नागरिक कहने लगा, कि—

प्रिय भाइयो और आदरणीया बहनो !

महापुरुष सुदर्शन को शूली पर चढ़ते और शूली का सिंहासन बनते देखा ही है। जितनी शीघ्रता से शूली सिंहासन बन गई उतनी शीघ्रता से तो नहीं, लेकिन कुछ समय मिलने पर शूली को तोड़ताड़ कर उसकी सामग्री से सिंहासन बनाने का कार्य एक चतुर कारीगर भी कर सकता है। इसलिए अपन लोगों को केवल इसी बात पर ध्यान न देना चाहिए कि शूली का सिंहासन

बन गया, किन्तु इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि शूली इस प्रकार सिंहासन बनी कैसे ! उस कारण पर विचार करो, केवल कार्य ही न देखो। मेरी समझ से, सेठ को दी गई शूली सिंहासन के रूप में बदल जाने, सेठ के बच जाने और देवों द्वारा सेठ की महिमा होने का कारण है सेठ की नम्रता और दयालुता। इन दो गुणों के कारण ही, सेठ के लिए शूली भी सिंहासन बन गई। ये दो गुण ऐसे हैं, कि जहाँ ये दो गुण हैं, वहाँ दूसरे सब गुण भी विद्यमान रहते ही हैं। यद्यपि इन दोनों में से बड़ा गुण तो दयालुता ही है, लेकिन वह नम्रता की अपेक्षा रखता है। जिस प्रकार रत्न को नम्र स्वर्ण ही पकड़ सकता है, जिसमें नम्रता नहीं है उस सोने में रत्न नहीं जड़ा जा सकता, उसी प्रकार दयालुता भी नम्र व्यक्ति में ही रहती है। जिसमें नम्रता नहीं है, उसमें दयालुता भी नहीं रह सकती। इस प्रकार दयालुता को आधार देनेवाली नम्रता ही है, और दयालुता अन्य गुणों को आधार देती है। जिसमें दयालुता है, उसी में सत्य भी रह सकता है, और शील भी। जिसमें दयालुता नहीं है, उसमें सत्य-शील भी नहीं रह सकते। इस प्रकार नम्रता और दयालुता सब गुणों से बढ़कर हैं, और जहाँ ये दो गुण हैं वहाँ सभी गुण हैं।

इन दो गुणों के होने से ही इनमें शीलादि दूसरे गुण आये हैं, तथा वह भावना हुई जो इन्होंने अपने को सुनाई और जिसके

कारण शूली का सिंहासन बना। इसलिए अपने को केवल सिंहासन ही न देखना चाहिए, किन्तु उसके कारण स्वरूप दया और नम्रता को अपनाना चाहिए। ऐसा करने पर ही अपन अपने आत्मा का कल्याण कर सकते हैं, तथा उस मार्ग के पथिक हो सकते हैं जिस मार्ग के पथिक सुदर्शन सेठ हैं। आप लोगों के सामने मुझे मेरे हृदय के ये भाव ही प्रकट करने थे, अधिक कुछ नहीं कहना है।

यह कह कर वह नागरिक चुप हो गया। नागरिक के चुप होने पर लोगों ने उसके कथन का समर्थन किया, और सुदर्शन सेठ की जय बोलते हुए अपने-अपने घर को गये। घर जाते हुए लोगों का सुदर्शन और मनोरमा ने प्रेम-पूर्वक आभार माना। सब लोगों के चले जाने पर राजा दधिवाहन ने भी सुदर्शन से बिदा माँगी। सुदर्शन ने, प्रिय शब्दों में राजा दधिवाहन को सन्तोष देकर बिदा किया।

१८

अभया का अन्त

जो व्यक्ति दूसरे का बुरा करना चाहता है, उसका स्वयं का बुरा हो जाता है। कहावत ही है, कि—जो दूसरे के लिए खड्डा खोदता है, वह स्वयं ही खड्डे में गिर जाता है। मकड़ी दूसरे जानवरों को फँसाने के लिए जाल बनाती है, लेकिन उसकी मृत्यु उसी जाल द्वारा भी होती है, इस प्रकार जो दूसरे का बुरा चाहता है, उसका स्वयं का बुरा होता है। दूसरे के लिए की गई बुराई, स्वयं के ही सामने आती है। दूसरे के

लिए उत्पन्न किया गया अनिष्ट, स्वयं के लिए अनिष्ट बन जाता है। इसी के अनुसार दूसरे के लिए की गई भलाई भी स्वयं के लिए ही होती है। अर्थात् दूसरे के लिए की गई भलाई या बुराई, उस दूसरे के लिए तो हो या नहीं, किन्तु स्वयं के लिए ही होती है। इसी कारण सज्जन लोग किसी के साथ किसी भी प्रकार का दुर्व्यवहार नहीं करते, किन्तु सभी के साथ सद्व्यवहार ही करते हैं। वे जानते हैं, कि दूसरे का व्यवहार अपने लिए अच्छा या बुरा परिणाम देनेवाला नहीं हो सकता, किन्तु स्वयं का व्यवहार ही अच्छा या बुरा परिणाम देनेवाला हो सकता है। इसी बात को दृष्टि में रखकर वे उस व्यक्ति के प्रति भी सद्व्यवहार ही करते हैं, उस का भी भला करते हैं, जिसने उनके साथ दुर्व्यवहार किया है। सुदर्शन का अहित करने में अभया ने किसी प्रकार की कमी नहीं रखी थी। उसने अपनी ओर से तो सुदर्शन को शूली पर चढ़वा ही दिया था। कोई अपराध न होने पर भी शूली चढ़वाना, इससे अधिक दुर्व्यवहार दूसरा क्या हो सकता है! लेकिन सुदर्शन ने इस तरह का दुर्व्यवहार करनेवाली अभया का भी हित ही चाहा। उसको भी अभय करने के लिए राजा को वचनबद्ध किया। इस प्रकार सुदर्शन ने अपनी ओर से तो अभया का भला ही किया, परन्तु अभया को स्वयं द्वारा दूसरे के प्रति किया गया दुर्व्यवहार कैसे शान्ति लेने दे सकता था! नियमानुसार उसके द्वारा सुदर्शन

के लिए किया गया दुर्व्यवहार, किसी न किसी रूप में उसके सामने आना ही चाहिए था। इसलिए यह देखना है, कि अभया के लिए स्वयं का दुष्कृत्य किस प्रकार का दुष्फल देनेवाला हुआ, और उसके साथ ही पंडिता को भी उसके कृत्य का क्या परिणाम भोगना पड़ा।

अभया ने भी यह सुना, कि सुदर्शन को शूली पर चढ़ा दिया गया था, लेकिन उसके लिए शूली भी सिंहासन बन गई, देवों ने उसकी महिमा की, सब नगर के लोग भी उसकी महिमा कर रहे हैं, महाराजा भी वहाँ गये हैं और उनने भी उस से क्षमा माँगी है। सब लोग उसकी प्रशन्सा करते हुए मेरी यह कह कर निन्दा कर रहे हैं, कि अभया महान् दुराचारिणी और निर्लज्जा है, जिसने सुदर्शन ऐसे शीलवान पुरुष को भी भ्रष्ट करना चाहा, और जब वह भ्रष्ट नहीं हुआ तब उसपर झूठा कलङ्क लगाकर राजा से उसे शूली पर चढ़ाने की आज्ञा दिला दी। यह समाचार सुनकर अभया सोचने लगी कि—सुदर्शन के बच जाने से महाराजा को भी मेरे दुष्कृत्य का समाचार ज्ञात हो गया है, इसलिए अब वे वहाँ से लौट कर मुझे न मालूम क्या कहेंगे, और मेरे को न मालूम कैसा दण्ड देंगे। मैंने अब तक अपना जीवन सम्मानपूर्ण रीतिसे बिताया है, लेकिन अब यह भेद खुल जाने पर भी यदि मैं जीवित रही, तो

फाँसी डालकर उसने आत्म-हत्या कर ली। यह भी कहा जाता है, कि अभया महल से गिर कर मरी थी। किसी भी तरह से मरी हो, लेकिन उसने आत्म-हत्या ही की। यद्यपि मरने से पहले उसने किसी रूप में अपने दुष्कृत्य के लिए पश्चात्ताप किया था और उसकी दूसरी करणी भी अच्छी थी इससे वह नरक में तो नहीं गई, हुई तो देवी, लेकिन सुदर्शन ऐसे महापुरुष पर झूठा कलङ्क लगाने, पर-पुरुष वंछने एवं आत्म-हत्या करने आदि पापों के कारण उच्च श्रेणी की देवी नहीं हुई, किन्तु जंगल में रहने वाली नीच व्यन्तरी देवी हुई। अभया, व्यन्तरी देवी के रूप में उत्पन्न होकर जंगल में रहने लगी।

पंडिता ने भी सुदर्शन के लिए शूली का सिंहासन बन जाना आदि समाचार सुना। वह भी घबराई,और अब क्या करना चाहिए, दौड़ी हुई अभया के महल में आई। लेकिन अभया तो पहले ही मर चुकी थी! अभया को मरी हुई देखकर पंडिता के छक्के छूट गये। उसने सोचा, कि सुदर्शन ने महाराजा से सब हाल कह दिया होगा, इसलिए महाराजा को यह मालूम ही हो गया होगा, कि सुदर्शन को रानी के महल में पंडिता ही लाई थी। यह जानने से महाराजा मुझ पर क्रुद्ध होंगे ही। दूसरे वह रानी मर गई है, इसलिए इसकी मृत्यु का अपराध भी मेरे ही सिर मढ़ा जावेगा। तीसरे अब तक मुझे रानी का सहारा था, लेकिन अब वह सहारा भी नहीं रहा।

इन कारणों से यदि अब मैं यहाँ रही, तो मेरी दुर्दशा हो जावेगी। इसलिए यहाँ से भाग निकलना ही अच्छा है।

इस तरह सोचकर पण्डिता, चम्पा से भाग निकली। चम्पा से भागकर वह पाटलीपुत्र—जो अब पटना कहा जाता है—पहुँची। वह राज-परिवार में रह चुकी थी, इसलिए बात-चीत में भी कुशल थी, और अभया की धाय थी, इस कारण त्रिया-चरित्र में भी बढ़ कर थी। इन सब के साथ ही वह दिखने में भी अच्छी थी। इसलिए उसे हरिणी नाम की एक वेश्या ने अपने यहाँ रख लिया। पंडिता, हरिणी के यहाँ रह कर उस की वेश्या-वृत्ति में सहायता करने लगी और अपना जीवन बिताने लगी।

राजा दधिवाहन, सुदर्शन सेठ के यहाँ से अपने महल में आया। उसने सोचा कि यद्यपि अभया का अपराध भयंकर एवं अक्षम्य है, तथापि जब महापुरुष सुदर्शन ने उसका अपराध क्षमा कर दिया है और अभया को किसी प्रकार का दण्ड न देने किन्तु उसके साथ पूर्ववत व्यवहार रखने के लिए मुझे भी वचन बद्ध कर लिया है, तब उससे इस सम्बन्ध में कुछ भी कहना अनुचित है। अब तो मेरे लिए यही उचित है, कि मैं उसके साथ पहले की ही तरह का व्यवहार रखूँ। मैंने सुदर्शन को शूली पर चढ़ाने की आज्ञा दी उसके बाद की घटनाओं पर विचार करने से यही पाया जाता है, कि अभया सुदर्शन को अपना

जारपति बनाना चाहती थी। इसी उद्देश्य से उसने किसी प्रकार सुदर्शन को अपने महल में बुलवाया, लेकिन जब सुदर्शन ने उसकी यह इच्छा पूर्ण करना स्वीकार नहीं किया, तब उसने सुदर्शन पर झूठा कलंक लगाकर उसे पकड़वा दिया। अब अभया का सारा भेद खुल गया है; इसलिए वह स्वयं ही लज्जित हो रही होगी। जो अपने कृत्य के लिए स्वयं ही लज्जित हो रहा हो, उससे अधिक कुछ कहना अनुचित है, और उस दशा में तो और भी अनुचित है, जब कि सुदर्शन ने उसको अपनी माता मानकर उसके लिए अभय माँगा है। इसलिए अब मुझे अभया से उसके कृत्य के विषय में एक शब्द भी न कहना चाहिए, किन्तु उसको धैर्य देना चाहिए। जिससे मैंने सुदर्शन को जो वचन दिया है, उसका ठीक तरह से पालन हो।

इस प्रकार विचार कर राजा ने दासी से कहा, कि महारानी को बुला लाओ। उनसे कहना, कि वे सुदर्शन सम्बन्धी घटना के विषय में किसी प्रकार का विचार या संकोच न करें। इस सम्बन्ध में मैं किसी प्रकार का उपालम्भ न दूँगा। उनके लिए सुदर्शन ने मुझ से अभय दान माँग लिया है, इसलिए वे निर्भय रहें।

राजा की आज्ञानुसार, दासी रानी के महल में गई। वह थोड़ी ही देर में घबराई हुई लौट आई, और राजा से कहने लगी, कि—

अनर्थ हो गया! राजा के पूछने पर उसने उत्तर दिया, कि—महारानी ने गले में फाँसी लगाकर आत्म-हत्या कर ली! दासी का यह कथन सनकर, राजा स्वयं भी अभया के महल में गया। उसने देखा, कि रानी का शव रस्सी के सहारे छत में लटक रहा है। यह देखकर उसके मुँह से यही निकला, कि जिनके साथ इसने दुर्व्यवहार किया था, उन सुदर्शन सेठ ने तो इसको क्षमा कर दिया, लेकिन इसका पाप ही इसे खा गया! सुदर्शन को शूली दिलवाने वाली यह अभया, स्वयं ही फाँसी पर लटक गई! जो दूसरे का अहित चाहता है, उसका स्वयं का अहित होना स्वाभाविक ही है।

अभया की मृत्यु का समाचार, विद्युतवेग की तरह सारे नगर में फैल गया। नगर के लोग भी राजा की भाँति यही कहने लगे, कि रानी को उसी का दुष्कृत्य खा गया। उसने महापुरुष सुदर्शन को अपनी विषय-वासना पूरी करने के लिए भ्रष्ट करना चाहा था, और उनकी हत्या का जो प्रयत्न किया था, वह पाप उस पर चढ़ बैठा। उस पाप के बोझ को वह न सह सकी, इसी से मर गई। कोई-कोई लोग यह भी कहते थे, कि अभया कुलवती थी इसी से मर गई। वह संगति या स्वभाव के कारण दुष्कृत्य कर तो बैठी, परन्तु कुलवती होने के कारण उसकी आँखों में लज्जा थी। उस लज्जा की मारी, वह मर गई। वास्तव

में वह राजा या दूसरे लोगों को मुँह कैसे बताती ! इस प्रकार नगर के लोग अभया की मृत्यु के विषय में भिन्न-भिन्न प्रकार की बातें करते थे। कोई अभया की निन्दा करता था, और कोई प्रशंसा।

दधिवाहन ने अभया के शव को उतरवा कर उसकी अन्त्येष्ठि क्रिया उसी रीति से की, जिस रीति से एक राज रानी की अन्त्येष्ठि क्रिया होती है। इस कार्य में उसने किसी प्रकार का भेद भाव नहीं किया। इसी बीच में दधिवाहन को यह भी मालूम हो गया, कि अभया की धाय पंडिता कहीं भाग गई है। यह ज्ञात होने पर राजा समझ गया, कि इस घटना में पंडिता का भी हाथ था। उसने धीरे-धीरे यह पता भी लगा लिया कि सुदर्शन को महल में किस तरह लाया गया था, और इस कार्य में कौन-कौन दासियाँ सम्बन्धित थीं, फिर भी उसने इससे सम्बन्धित दासियों को कोई दण्ड नहीं दिया, किन्तु उन्हें भी क्षमा कर दिया, और इस प्रकार इस घटना पर स्वयं की ओर से सदा के लिए पर्दा डाल कर नीति के इस वाक्य का पालन किया कि—

अर्थनाशं मनस्तापं, गृहिणी चारितानि च।
नीच वाक्यं चापमानं, मतिमान्न प्रकाशयेत्॥

अर्थात्—धन नष्ट होने की बात, मानसिक दुःख की बात, स्त्री के चरित्र की बात, नीच द्वारा कहे गये दुर्वाक्य और अपने अपमान की बात बुद्धिमान लोग प्रकट नहीं करते।

१९

सुदर्शन मुनि

जीर्णाकन्था ततः किं, सितममलपटं, पट्टसूत्रं ततः किं
एका भार्या ततः किं, हयकरिसुगणै, रावृतो वा ततः किम् ।
भक्तं मुक्तं ततः किं, कदशनमथवा, वासरान्ते ततः किं
व्यक्तज्योतिर्नवांत र्मथित भवभयं, वैभवं वा ततः किम् ॥

अर्थात्—यदि चिथड़ों से बनी गुदड़ी पहनी तो क्या और निर्मल फेद रेशमी या सूतीवस्त्र पहना तो क्या; यदि एक स्त्री हुई तो क्या और

हाथी घोड़ों सहित अनेक स्त्रियाँ हुई तो क्या; यदि नाना प्रकार के सरस भोजन किये तो क्या और दिन भर के पश्चात् खराब अन्न से पेट भरा तो क्या; इन में से चाहे कुछ भी हो, लेकिन यदि संसार बन्धन से मुक्त करनेवाली आत्मज्ञान की ज्योति को न जाना तो इनमें से किसी का भी होना न होना बराबर ही है। उस दशा में यही कहा जावेगा, कि तूने कुछ भी नहीं पाया और कुछ भी नहीं किया।

बुद्धिमान लोग, लौकिक बड़ाई में फँस कर लोकोत्तर कार्य कदापि नहीं भूलते। उन्हें चाहे जैसी लौकिक बड़ाई मिली हो और वे चाहे जैसे सुख-वैभव सम्पन्न हों, तब भी वे परलोक को तो याद रखते ही हैं। इस कारण वे परलोक सुधारने यानी आत्मा का कल्याण करने के लिए लौकिक ऋद्धि-सम्पदा और बड़ाई को उसी प्रकार त्याग देते हैं, जिस प्रकार साँप केंचुल त्याग देता है। इसका कारण यही है, कि वे इस लोक के कार्य से परलोक का कार्य बड़ा मानते हैं। वे जानते हैं, कि लौकिक बड़ाई से हमारे आत्मा का कल्याण कदापि नहीं हो सकता। बल्कि इस लौकिक बड़ाई के कारण हम को अभिमान हो गया, तो उस दशा में यह लौकिक—बड़ाई हमारा अकल्याण करनेवाली हो जावेगी। हमारा कल्याण तो तभी है, जब हम लौकिक कार्य व्यवहार से निकल कर पारलौकिक कार्य साधन में लगें। अर्थात्, संसार-सम्बन्ध से निकल कर संयम को अपनावें। यह जानने के कारण ही वे संसार

व्यवहार में रहने पर भी आत्म-कल्याण की बात को नहीं भूलते और अवसर आने पर संयम लेकर आत्म-कल्याण करते ही हैं।

सुदर्शन को सब तरह की लौकिक बड़ाई प्राप्त थी। वह धनवान था, पुत्रवान था उसे अनुकूल एवं पति परायणा पत्नी भी प्राप्त थी, राजा एवं प्रजा द्वारा सम्मान भी प्राप्त था, तथा शूली का सिंहासन बनने के पश्चात् तो उसकी प्रतिष्ठा और भी बढ़ गई थी। लेकिन इस तरह की लौकिक बड़ाई पाकर भी सुदर्शन सेठ उसमें उलझा हुआ नहीं रहा। वह सोचता था, कि यदि मैं इस लौकिक-बड़ाई के जाल में फँसा रहा तो मुझे भी कष्ट होगा और मेरे द्वारा दूसरों को भी। शूली का सिंहासन बनने के पश्चात् तो उसने यह निश्चय ही कर लिया था कि अब मुझे संसार-व्यवहार में न रहना चाहिए, किन्तु जिस धर्म के प्रताप से शूली का सिंहासन हुआ है और मुझ पर लगा हुआ कलङ्क मिटा है, उस धर्म की ही सेवा करनी चाहिए, तथा उस समय मैंने कुछ देर के लिए जो व्रत लिऐ थे, वे त्याग व्रत जीवन भर के लिए स्वीकार करने चाहिएँ। यह संसार अनर्थ का मूल है। इस संसार में रहने के कारण ही मेरी ओर से अभया माता को कष्ट में पड़ना पड़ा। इसलिए अब संसार व्यवहार में न पड़ कर संयम स्वीकार करना ही अच्छा है।

इस तरह का निश्चय वह पहले ही कर चुका था। इस

निश्चय के अनुसार, उसे जो व्यवस्था करनी थी वह व्यवस्था करके, उसने संयम लेने की तय्यारी की। सुदर्शन ने अपनी इच्छा मनोरमा को सुनाई। मनोरमा, धर्मिणी एवं पति का हित चहानेवाली थी। इसलिए उसने पति की इस इच्छा की पूर्ति में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं की, अपितु इस इच्छा की प्रशन्सा करके सुदर्शन का उत्साह बढ़ाया।

दीक्षा की तिथि नियत हो गई। सारे नगर में यह बात फैल गई, कि सुदर्शन सेठ गृह-त्यागकर संयम लेता है। यह समाचार सुनकर नगर के कुछ लोग इस विचार से दुःखी हुए कि सेठ से हमारा वियोग होता है। दूसरी ओर कुछ लोग यह विचार कर प्रसन्न भी हुए, कि सेठ का वियोग तो शूली लगने पर भी होता ही, फिर उस तरह के वियोग की अपेक्षा इस तरह का वियोग क्या बुरा है! अच्छा है जो सेठ इस दुःखमय संसार से निकल कर आत्म कल्याण में लग रहा है। कहा ही है कि—

> धन्यानां गिरिकन्दरे निवसतां, ज्योतिः परं ध्यायता
> मानन्दाश्रुजलं पिबन्ति शकुना निःशङ्कमङ्केशयाः।
> आस्माकंतु मनोरथोपराचितप्रासाद वापी तट
> क्रीड़ा काननकेलि कौतुक जुषा मायुःपरिक्षीयते ॥

अर्थात्—वे लोग धन्य हैं, जो सांसारिक वैभव को त्यागकर पार्वतीय गुफा में रहते तथा आत्मज्योति का ध्यान करके आनन्द पाते हैं एवं उस

आनन्द के कारण निकले हुए आँसुओं को गोद में निर्भय बैठे हुए पक्षी पीते हैं। हमारा जीवन तो मनोरथ रूपी महल की बावड़ी के निकट के क्रीड़ास्थल में लीलाएँ करता हुआ वृथा ही बीत रहा है।

इस तरह नगर के लोग इस विषय में अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार बात करने लगे। राजा ने भी यह सुना, कि सुदर्शन सेठ दीक्षा ले रहा है। वह, सुदर्शन को समझाने के लिए सुदर्शन के घर आया। उसके साथ ही नगर के बहुत से वे लोग भी सुदर्शन को समझाने के लिए उसके घर आये, जो यह चाहते थे कि सुदर्शन सेठ हमको छोड़ कर न जावे। राजा और नागरिकों ने सुदर्शन सेठ से इस सम्बन्ध में बात चीत की, लेकिन सुदर्शन सेठ ने उन सब को इस तरह समझाया कि जिससे वे अधिक कुछ न कह सके। सुदर्शन सेठ के समझाने से सब को सन्तोष हो गया।

राजा दधिवाहन ने सुदर्शन सेठ का दीक्षा-महोत्सव किया। सुदर्शन सेठ धूमधाम के बीच नगर से निकल कर नगर के बाहर आया। वहाँ उसने विधिपूर्वक संयम स्वीकार किया। सुर्शदन सेठ, संयम लेकर सुदर्शन मुनि बन गये। उन्होंने वहाँ उपस्थित सब लोगों को धर्म का महात्म्य और उसकी आवश्यकता आदि विषय का उपदेश दिया। पश्चात् वे वहाँ से विहार कर गये।

सुदर्शन मुनि विहार करते हुए ग्रामानुग्राम विचरने लगे। कुछ

दिनों के पश्चात् वे पटना पहुँचे। पटना में अभया की सहायता करनेवाली उस की धाय पंडिता, हरिणी वेश्या के यहाँ रहती थी। सुदर्शन मुनि जिस समय नगर में भिक्षा के लिए भ्रमण कर रहे थे, उस समय पंडिता ने उनको देखा। सुदर्शन मुनि को देखते और पहचानते ही, पंडिता को वह सब घटना स्मरण हो आई, जिसके कारण अभया को मरना पड़ा था और पंडिता को चम्पा का राज प्रासाद त्यागकर वेश्या की सेवा करनी पड़ रही थी। सुदर्शन मुनि को पहचानकर पंडिता अपने मन में कहने लगी, कि—हाय-हाय ! इस दुष्ट के कारण कैसा अनर्थ हुआ ! यह पापी यदि मेरी पुत्री अभया का कहना मान लेता, अथवा इसने कहना नहीं माना था तो शूली पर चढ़ कर मर जाता तो न तो मेरी पुत्री अभया को मरना ही पड़ता न मुझे इस हरिणी वेश्या की सेवा ही करनी पड़ती। मेरे हृदय में इसके प्रति वैर की ज्वाला धधक रही है, लेकिन क्या करूँ ! मेरा वश नहीं चलता, नहीं तो इस दुष्ट से मैं अवश्य ही बदला लेती। फिर भी इसके जिस अभिमान के कारण मेरी अभया पुत्री को मरना एवं मुझे असहाय होना पड़ा है, इसका वह अभिमान नष्ट करने का प्रयत्न तो करूँगी ही। यदि मैं ऐसा कर सकी, तब भी मुझे बहुत कुछ शान्ति मिलेगी।

इस प्रकार विचारकर पंडिता, हरिणी वेश्या के समीप गई। उसने बात कहने के योग्य प्रसङ्ग निकालकर हरिणी से कहा, कि

वैसे तो संसार में इस तरह के पुरुष बहुत थोड़े होंगे जो सुन्दर स्त्री को देख कर उस पर मुग्ध न होते हों, लेकिन कोई कोई पुरुष ऐसे भी होते हैं कि जिनको अपना प्रेमी बनाने के लिए अनेकों त्रियाचरित्र कुशल सिर पटक मरजातो हैं, फिर भी वे पुरुष अपने निश्चय से विचलित नहीं होते ।

पंडिता का यह कथन सुनकर उत्तर में हरिणी ने उससे कहा, कि—तेरा यह समझना भूल है। ऐसा कोई पुरुष हो ही नहीं सकता, जिसको त्रियाचरित्र-कुशल सुन्दरी अपना सेवक नहीं बना सकती हो। जो स्त्रियाँ ऐसा करनेमें असमर्थ रहती हैं, उनके लिए यही कहा जा सकता है, कि या तो उनने पूरी तरह प्रयत्न ही नहीं किया, अथवा वे त्रियाचरित्र नहीं जानतीं।

पंडिता—आपकी यह बात ठीक नहीं है। मेरा तो यह अनुभव है, कि संसार में ऐसे-ऐसे पुरुष भी हैं, जो त्रियाचरित्र-कुशल स्त्रियों के पूर्ण प्रयत्न करने पर भी अपने ध्येय से विचलित नहीं हुए।

हरिणी—तेरा यह अनुभव गलत है।

पंडिता—तो क्या आपका यह कहना है, कि ऐसा पुरुष हो ही नहीं सकता, जो त्रियाचरित्र-कुशल सुन्दरी के वश हो ही न सके।

हरिणी—हाँ।

पंडिता—मैं अपने अनुभव को गलत और आपके कथन को तब ठीक मान सकती हूँ, जब आप मेरे द्वारा बताये गये पुरुष को सेवक बनाकर उसके साथ सम्भोग कर लें।

हरिणी—तू किस पुरुष को बताती है, बता! लेकिन ऐसा पुरुष मत बताना, जो वृद्ध घृणास्पद हो अथवा पुरुषत्वहीन हो।

पंडिता—नहीं, मैं आपको ऐसा पुरुष बताती हूँ, जो युवक स्वस्थ और सुन्दर है। यह बात दूसरी है, कि उसके शरीर पर अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषण न हों, लेकिन शारीरिक सौन्दर्य में उसकी समता करनेवाला पुरुष ढूँढने पर कठिनाई से ही मिलेगा। वह पुरुष पुरुषत्वहीन भी नहीं है।

हरिणी—अच्छा बता। मैं तेरे देखते ही देखते उसको अपना सेवक बना लूँगी।

पंडिता ने गोचरी लेकर जाते हुए सुदर्शन मुनि की ओर अंगुली उठाकर हरिणी से कहा, कि—देखो, आप उस पुरुष को पहचान लो। यदि आप इस पुरुष को अपने अधीन कर सकीं तो मैं आपकी बात भी स्वीकार करूँगी, तथा यह भी मानूँगी, कि आप त्रियाचरित्र में सब से बढ़कर हैं। मैं इस पुरुष को जानती हूँ। यह बहुत सुन्दर है। साथ ही इसके लिए मेरा यह अनुभव भी है, कि इस पुरुष को स्वयं के वश करना स्त्रियों के लिए सर्वथा असम्भव है। इसको स्वयं को भी यह अभिमान है, कि चाहे

कोई कैसी भी सुन्दर और त्रियाचरित्र-कुशल स्त्री क्यों न हो, मैं किसी भी स्त्री के वश नहीं हो सकता।

हरिणी—इसका ऐसा मिथ्याभिमान तो मैं मिटा ही दूँगी, लेकिन पहले तू यह बता कि इसको तू कैसे जानती है और इसके विषय में तूने यह धारणा किस कारण बना ली, कि इसको वश करना असम्भव है ?

पंडिता—देखो, मैं आपसे एक बहुत गुप्त बात प्रकट करती हूँ। आप मेरी कही हुई बात को किसी और से मत कहना, नहीं तो मैं किसी विपत्ति में पड़ जाऊँगी। यह पुरुष अब तो साधु हो गया है, लेकिन पहले चम्पा में रहता था और वहाँ का नगर सेठ था। उस समय इसका नाम सुदर्शन सेठ था। आपके यहाँ आई उससे पहले मैं भी चम्पा की महारानी अभया के पास रहती थी। महारानी अभया ने अपनी एक सखी से यह वाद लगाया, कि मैं सुदर्शन सेठ को अपने वश कर लूँगी, अन्यथा प्राण त्याग दूँगी, मुँह न दिखाऊँगी। अभया की यह प्रतिज्ञा पूरी कराने का मैंने भी प्रयत्न किया था। मैं, सुदर्शन को अभया के समीप राजमहल में ले आई थी। अभया, बहुत सुन्दरी थी और त्रिया-चरित्र में भी पूर्ण कुशल थी। उसने इसको स्वयं के वश करने का बहुत प्रयत्न किया, त्रिया-चरित्र और नीति के साम, दाम, दण्ड और भेद इन चारों अङ्ग का पूरी तरह प्रयोग किया, लेकिन वह अपने प्रयत्न

में असफल ही रही। अन्त में उसको प्रतिज्ञा के अनुसार मरना पड़ा, और इसी कारण मुझे आपके यहाँ आश्रय लेना पड़ा। इस घटना पर से ही मेरी यह धारणा बन गई है, कि इस पुरुष को विचलित करने में कोई भी स्त्री समर्थ नहीं है।

पंडिता ने, थोड़े में अभया के मरने तक की सारी घटना हरिणी को सुनाई, लेकिन उसने शूली का सिंहासन बनने और इस प्रकार सुदर्शन के बच जाने की बात प्रकट नहीं की। उसको यह भय था, कि शूली का सिंहासन बनने और सुदर्शन के बचने का समाचार सुनकर कहीं हरिणी सुदर्शन को स्वयं के वश करने का कार्य अस्वीकार न कर दे। इस भय के कारण ही उसने यह बात प्रकट नहीं की।

पंडिता की बात समाप्त होने पर हरिणी हँसकर कहने लगी, कि—बस इसी घटना पर से तुम्हारी यह धारणा बन गई है, कि इस पुरुष को विचलित करना असम्भव है? तुम्हारी इस धारणा को तुम तुम्हारी अभया रानी के साथ ही जाने दो। अभया रानी थी, और मैं वेश्या हूँ। उसको तो अपने जीवन भर में इस एक ही पुरुष को अपना बनाने के लिए प्रयत्न करने का अवसर मिला होगा, लेकिन मैं तो नित्य ही पुरुष को अपने वश में करने का कार्य करती हूँ। तुम्हारी उस रानी की अपेक्षा, मैं अधिक त्रिया-चरित्र—कुशल हूँ, और इस विषयक मेरा अभ्यास भी अधिक

है। इसलिए तुम देखना, कि जिस पुरुष को वश करने में तुम्हारी रानी असफल रही, उस पुरुष को मैं किस प्रकार अपने अधीन करती हूँ।

पंडिता के प्रयत्न से हरिणी ने, सुदर्शन मुनि को भ्रष्ट करने का निश्चय किया। हरिणी वेश्या तो थी लेकिन वह धन प्राप्त करने के लिए ही वेश्यावृत्ति करती थी। इसलिए उसका विचार सुदर्शन या दूसरे किन्हीं मुनि को भ्रष्ट करने का न तो था, न ऐसा विचार होने का कारण ही था। परन्तु पंडिता की कुसंगति के कारण वह वेश्यावृत्ति से भी भयंकर पाप करने के लिए तय्यार हुई। कुसंगति के कारण ऐसा होना आश्चर्य की बात नहीं है। कुसंगति किस प्रकार हानिप्रद है, इसके लिए भक्ति सूत्र में कहा है—

> दुःसंग सर्वथा त्याज्यः। काम क्रोध लोभ
> मोह स्मृति नाशस्य सर्वनाश कारणत्वात्।
> तरंगाइताऽपी में संगात् समुद्रायन्ती।

अर्थात्—दुःसंग सर्वथा त्याज्य है। क्योंकि दुःसंग से काम क्रोध लोभ बढ़ता है, स्मृति नष्ट होती है और फिर दुःसंग सर्वनाश का कारण बन जाता है। एक तरंग इतना काम क्रोध लोभ मोह भी, दुःसंग से वृद्धि पाकर समुद्र ऐसा अनन्त हो जाता है।

हरिणी सोचने लगी, कि—मैंने पंडिता से यह कहा है

कि मैं इस साधु को अपना सेवक बना लूँगी, लेकिन साधु लोग मेरे यहाँ भिक्षा के लिए भी नहीं आते हैं, न रात के समय अथवा पुरुषों की अनुपस्थिति में किसी स्त्री को अपने स्थान पर ही आने देते हैं। ऐसी दशा में उस साधु को अपना बनाने का उपाय यही हो सकता है कि मैं किसी भी तरह उसको अपने घर में ले आऊँ। वह एक बार मेरे घर में आ जावे, तो फिर तो मैं उसको अपना दास बना ही लूँगी। अपने हाव-भाव एवं नयणबाण से उसे ऐसा लट्टू कर लूँगी कि फिर वह साधु धक्के देकर निकाला जाने पर भी मेरे घर से न जावेगा। उसे मेरे घर लाने के लिए यह मार्ग अच्छा है, कि मैं श्राविका बनकर उसको अपने यहाँ भिक्षा के लिए लिवा लाऊँ। दूसरी तरह तो वह मेरे घर न आवेगा।

इस प्रकार सोचकर वेश्या ने, श्राविकाओं के रहन-सहन और बोलचाल आदि का कुछ अभ्यास किया। वह चतुर थी, इसलिए उसको इस विषयक अभ्यास करने में अधिक समय न लगा। जब उसको यह विश्वास हो गया कि मैं श्राविका बन कर सुदर्शन मुनि को भुलावे में डाल अपने घर ले जाने में सफल हो जाऊँगी, तब वह अवसर देखकर भिक्षा के लिए भ्रमण करते हुए सुदर्शन मुनि के सामने हाथ जोड़कर खड़ी हो गई और कहने लगी, कि महाराज, मेरे यहाँ पधार कर मुझे तारिये। मैं श्राविका हूँ। मेरा यह नियम है, कि मैं साधु–महात्मा को दान दिये बिना भोजन

नहीं करती। इसलिए मुझ पर कृपा करके मेरे घर पधारो। मेरा जीवन पहले तो बहुत पतित था, लेकिन आप ऐसे महात्माओं की कृपा से ही मैं धर्म पाई हूँ और श्राविका के योग्य व्रतों का पालन करती हुई, पवित्र रह कर अपना कल्याण कर रही हूँ। मेरी यह प्रबल भावना है, कि आप मेरे यहां पधार कर मेरे हाथ से कुछ दान लें। यदि आपने मुझ पर यह कृपा न की, तो नियमानुसार मुझे भूखी रहना पड़ेगा।

सुदर्शन मुनि सरल स्वभाव के थे। वे, वेश्या का यह कपट क्या जानें! हरिणी वेश्या ने सुदर्शन मुनि से प्रार्थना भी इस तरह से की, कि जिसमें सन्देह के लिए कोई स्थान ही न था। उसने स्वयं पर साधुओं का उपकार भी बताया, तथा कोई मेरे घर को वेश्या का घर कह कर साधु को मेरे यहां जाने से रोक न ले, इसके लिए यह भी पहले से ही कह डाला, कि पहले मेरा जीवन पतित था लेकिन अब पवित्र है और मैं श्राविका हूँ।

सुदर्शन मुनि, वेश्या के भुलावे में आ गये। वे वेश्या के साथ-साथ उसके घर चले गये, लेकिन उनने जैसे ही वेश्या के घर में प्रवेश किया वैसे ही—वेश्या के संकेत पर उसकी दासियों द्वारा गृह का द्वार बन्द कर दिया गया। यह देखते ही सुदर्शन मुनि समझ गये कि यहां कुछ छल है। वेश्या ने जब देखा कि अब सुदर्शन मुनि बाहर नहीं निकल सकते, तब वह मुस्करा कर कटाक्ष

करती और हाव-भाव दिखाती हुई मुनि से कहने लगी, कि— पधारिये-पधारिये, किसी प्रकार का संकोच न करिये। मैं श्राविका हूँ और आपको इसलिए लाई हूँ कि आप मेरे द्वारा दिया गया दान लें। मैं आपको ऐसा दान दूँगी, जैसा दान आज तक किसी भी श्राविका से न पाया होगा। दूसरी श्राविकाएँ तो केवल रोटी-टुकड़ा ही देती होंगी, परन्तु मैं आपको सरस भोजन कराने के साथ ही अपना सर्वस्व भी समर्पण कर दूँगी। आप अपने इन पात्रों को एक ओर रख दीजिये। यहां इनकी आवश्यकता न होगी। यहां आपके सन्मुख अभी स्वर्णथाल में षट्रस भोजन आता है।

वेश्या, इस प्रकार कहने लगी। उसकी सहायिकाएँ भी उसकी बातों में साथ देने लगीं। उन बातों को सुन कर मुनि ने सोचा, कि मैं इस माता के कपटजाल में फंस गया हूँ फिर भी मुझे घबराना न चाहिए, किन्तु धैर्य पूर्वक इसके द्वारा दिये जाने वाले सब उपसर्गों को सह लेना चाहिए अधीर होने से कोई अनुकूल परिणाम नहीं आ सकता।

इस प्रकार सोचकर सुदर्शन मुनि ने जहां वे खड़े थे उसके समीप ही एक स्थान को रजोहरण द्वारा बैठने के योग्य बनाया। फिर अपना आसन बिछाकर वे ध्यान लगाकर बैठ गये। जैसे

वेश्या द्वारा होने वाले आघातों से बचने के लिए ही उन्होंने ध्यान-रूपी कवच पहना हो।

वेश्या ने जब देखा कि ये मुनि ध्यान में बैठे हुए हैं और मेरी बातों को सुनते ही नहीं हैं, मेरा सारा प्रयत्न निष्फल हो रहा है, तब उसने मुनि का ध्यान भङ्ग करने के लिए राग-रङ्ग का उपाय अपनाना उचित समझा। उसने सोचा, कि गीत के वश तो देव भी हो जाते हैं। इतना ही नहीं किन्तु हरिण और विषधर साँप भी राग पर मुग्ध हो जाते हैं। ऐसी दशा में मनुष्य यदि राग के वश हो जावे, तो इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात है! यह साधु मेरी बातों से विचलित नहीं हुआ तो क्या हुआ, अभी हृदय हिला देनेवाला मेरा गीत सुनकर इसका ध्यान भङ्ग हो जावेगा, और तब यह मुझसे प्रेम करने लगेगा।

इस प्रकार विचार कर वेश्या ने, अपने सहकारियों-सहित साजबाज से गान प्रारम्भ किया। उसने कामोद्दीपक अनेक राग रागनियाँ गाईं, लेकिन उसका यह प्रयत्न भी निष्फल ही रहा। वह, सुदर्शन मुनि को ध्यान से विचलित करने में असमर्थ रही। अपने इस प्रयत्न को भी निष्फल देखकर वेश्या निराश-सी हुई। फिर भी उसने सोचा, कि यह साधु इस प्रकार भूखा प्यासा कबतक बैठा रह सकता है। कोई कैसा भी क्यों न हो, भूख तो सभी को सताती है, और भूख का दुःख ऐसा है कि जिससे मुक्त होने के

लिए मनुष्य सभी प्रकार के अकृत्य कार्य कर डालता है। इसको अभी नहीं तो कुछ देर पश्चात् भूख सतावेगी ही, और उस समय तो यह मेरा कहना मानेगा ही।

वेश्या ने, सुदर्शन मुनि को ध्यान से विचलित करने का समय समय पर बहुत प्रयत्न किया, लेकिन उसका एक भी प्रयत्न और भोजन आदि का प्रलोभन मुनि का ध्यान भङ्ग करने में सफल नहीं हुआ। जैसे महात्मा सुदर्शन वेश्या द्वारा किये गये प्रयत्नों के विषय में यह विचार कर ध्यानस्थ थे, कि—

इयं बाला मां प्रत्यनवरतमिन्दी वरदल
प्रभाचोरं चक्षुः, क्षिपति किमभि प्रेत मनया।
गतो मोहोऽस्माकं, स्मर कुसुम बाण व्यतिकर-
ज्वलज्ज्वाला शान्त, तदपि न वराकी विरमति॥

अर्थात्—यह बाला अपने नील कमल ऐसे सुन्दर नेत्रों के कटाक्ष बार बार मेरी ओर क्यों फेंकती है ! मैं नहीं कह सकता, कि इसका उद्देश्य क्या है। यदि इसका उद्देश्य अपने कटाक्ष से मेरे में काम उत्पन्न करना है, तो इसका यह विचार मूर्खतापूर्ण है। क्योंकि अब न तो मेरे में मोह है, न काम ज्वाला ही है; जो इसके कटाक्ष से प्रज्ज्वलित हो। फिर भी आश्चर्य है, कि यह मूर्खा अपना प्रयत्न नहीं त्यागती।

ध्यान लगाकर बैठे हुए मुनि को वेश्या के घर में तीन दिन बीत गये। उन तीन दिनों में वेश्या ने मुनि को विचलित करने का अपना

प्रयत्न नहीं त्यागा, और मुनि ने अपना ध्यान भी नहीं छोड़ा। जब चौथा दिन हुआ, और उस दिन भी मुनि पहले की भाँति ध्यान में ही बैठे रहे, तब वेश्या का हृदय पल्टा। वह सोचने लगी, कि मैं जिसको सुख मान रही हूँ, उससे भी आगे कोई सुख है; तभी तो ये मुनि इस सुख को नहीं अपनाते और तीन दिन से भूखे-प्यासे कष्ट सह रहे हैं। जिसे मैं सुख मानती हूँ, वह सुख तो मैं इन मुनि को दे ही रही हूँ। यदि इस सुख से आगे दूसरा सुख न होता, तो ये मुनि कष्ट सह कर इस सुख को क्यों ठुकराते! निश्चय ही इस सुख से परे कोई ऐसा सुख है, जिसके सामने यह सुख तुच्छ है। मैंने एक तरह से तो इन मुनि को इस प्रकार कष्ट दे कर बुरा किया, लेकिन दूसरी तरह से विचार करने पर यह भी अच्छा ही हुआ कि मैं पंडिता की बातों में आकर छल से इन मुनि को अपने घर लिवा लाई, और ये मुनि मेरे यहाँ तीन दिन तक कष्ट सहते रहे फिर भी ध्यान से विचलित नहीं हुए। इस घटना के कारण मेरे हृदय में भी वह सुख प्राप्त करने की भावना उत्पन्न हुई है, जिस सुख को इन मुनि ने प्राप्त किया है। मैं इस घटना से ही यह समझ पाई हूँ, कि सच्चा सुख तो वही है जो इन मुनि को प्राप्त है। जिसको मैं सुख मान रही हूँ, वह सुख नहीं है किन्तु दुःख है जो त्याज्य है।

इस प्रकार वेश्या-का कलुषित हृदय एक दम बदल गया।

वह पंडिता से कहने लगी कि—पंडिता, मैंने इन मुनि को कष्ट देकर भयंकर पाप किया है। अब मैं इन्हें कष्ट नहीं देना चाहती चाहे तू मेरे को हारी मान। मैं यह स्पष्ट स्वीकार करती हूँ, कि ये मुनि वैसे ही हैं, जैसा कि तू ने कहा था। इनकी इस दृढ़ता को देखकर मेरे हृदय में यह भावना हुई है कि मैं अब तक जो पापकृत्य करती रही हूँ, उन्हें सदा के लिए त्यागकर पवित्रतापूर्वक जीवन व्यतीत करूं और सच्ची श्राविका बन जाऊँ। इसके लिए मैं, इन मुनि को ही अपना गुरु बनाती हूँ।

पंडिता से यह कहकर वेश्या हाथ जोड़कर मुनि से कहने लगी, कि—महाराज, आप मुझ पापिनी का अपराध क्षमा करो, और यह द्वार खुला हुआ है अपने स्थान को पधारो। मैं, श्राविका बनकर आपको भ्रष्ट करने के लिए ही आई थी! इसी के लिए मैंने आपको इतने कष्ट भी दिये, फिर भी आप अपने निश्चय से नहीं डिगे। बल्कि आपने मुझको भी उसी तरह पवित्र बना दिया, जिस तरह लोहे की छुरी गई तो थी पारस को काटने के लिए, लेकिन वह स्वयं ही सोने की बन गई। यही बात मेरे लिए भी हुई है। अब मैं आपको मेरा गुरु बनाती हूँ, और आपकी साक्षी से यह प्रतिज्ञा करती हूँ कि आज से मैं पवित्र जीवन बिताऊँगी। वेश्यावृत्ति को सदा के लिए त्यागती हूँ।

वेश्या का कथन समाप्त होने पर पंडिता हाथ जोड़कर मुनि

से कहने लगी, कि—महाराज मुझ जैसी पापिनी दूसरी कौन होगी! मैं चम्पा में भी आपका शील नष्ट करने में अभया की सहायिका हुई थी, और यहां तो इन हरिणी बहन को मैंने ही—आपका शील नष्ट करने के लिए उभारा था। इससे अधिक दूसरा भयंकर पाप क्या हो सकता है! आपके सामने मैं अपने इन पापों की आलोचना करके अपने अपराधों के लिए आप से क्षमा मांगती हूँ, तथा भविष्य के लिए इन हरिणी बहन की तरह मैं भी पवित्र जीवन बिताने की प्रतिज्ञा करती हूँ।

हरिणी और पंडिता ने, मुनि से क्षमा मांगकर भविष्य में पवित्र जीवन बिताने की प्रतिज्ञा की। उन दोनों की प्रार्थना सुनकर मुनि ने ध्यान खोला। यद्यपि पंडिता और हरिणी के कारण उन्हें कष्ट उठाना पड़ा था, फिर भी वे मुनि पंडिता या हरिणी पर क्रुद्ध नहीं हुए, किन्तु उन्हें सान्त्वना देते हुए स्वयं पर उनका उपकार माना। उन्होंने हरिणी से कहा कि—माता, आपके इस गृह में मैं जैसा आत्मध्यान कर सका, वैसा आत्मध्यान दूसरी जगह शायद ही कर सका होऊंगा। इसलिए मझ पर आपका उपकार है। आप किसी प्रकार की चिंता न करें, और आप दोनों ने जो प्रतिज्ञाएँ की हैं, उनका पालन करती हुई आत्मा का कल्याण करें।

हरिणी तथा पंडिता को इस प्रकार प्रिय वचनों से सन्तुष्ट करके, मुनि वेश्या के घर से चल दिये। मुनि के जाने के पश्चात् पंडिता और हरिणी दोनों ही पवित्रतापूर्वक जीवन बिताने लगी। वेश्या के घर से निकल कर सुदर्शन मुनि ने सोचा, कि इस शरीर के कारण पहले भी मेरी कपिला तथा अभया माता को कष्ट हुआ है, और अब भी हरिणी माता को कष्ट हुआ। वास्तव में यह शरीर ही कष्ट का कारण है। इसके द्वारा किसी को कष्ट में न पड़ना पड़े इसी उद्देश्य से मैंने संयम लिया, लेकिन संयम लेने पर भी इस शरीर द्वारा किसी न किसी को कष्ट होता ही है। क्योंकि भिक्षा के लिए तो दूसरे के घर जाना ही होता है। इस तरह (दूसरे के घर) जाने से भी किसी न किसी को उसी प्रकार कष्ट होता ही है, जिस प्रकार इस हरिणी माता को कष्ट हुआ। मैंने गृहवास के समय पर-घर प्रवेश इसलिए त्यागा था लेकिन संयम में उस समय तक तो पर घर जाना ही होता है, जब तक कि इस शरीर को भोजन की आवश्यकता है; और दूसरे के घर जाने पर फिर किसी न किसी को कष्ट होना सम्भव है। इसलिए अब मुझे इस शरीर को न देखकर जंगल में रहना ही ठीक है। वहां इसकी रक्षा जितने काल तक होनी होगी उतने काल तक होगी और न होगी तो न सही, लेकिन इसकी रक्षा के वास्ते आहार के लिए नगर में आना और फिर किसी को कष्ट में पड़ने देना ठीक नहीं। वह वेश्या माता

तो सुधर गई, परन्तु मुझे मेरे आत्मा को भी सुधारना चाहिए। यह मेरे आत्मा की कमजोरी का ही कारण है कि मुझे रोटी के लिए जाना पड़ता है, जिससे इस शरीर को देखकर मेरी इस वेश्या माता ऐसी को भ्रम में पड़ना पड़ता है। मुझे अपनी यह कमजोरी मिटानी चाहिए, तथा भविष्य में जंगल में ही रहना चाहिए। ग्राम या नगर में न आना चाहिए।

इस प्रकार निश्चय करके सुदर्शन मुनि, सीधे ही जंगल में चले गये। उस दिन के पश्चात् छद्मस्थावस्था में वे फिर कभी भी ग्राम या नगर में नहीं आये।

२०

मोत

जब आत्मा का उपादान कारण अच्छा होता है, तब निमित्त कारण भी वैसे ही बन जाते हैं। यदि उपादान कारण अच्छा होता है, तो बुरा निमित्त भी अच्छा ही परिणाम देता है, और जब उपादान ही खराब होता है, तब अच्छा निमित्त भी खराब परिणाम देनेवाला होता है। जिस जल की बूँदें सीप के मुँह में पड़ कर मोती बनती हैं, उसी जल को बूँदें सर्प के मुँह में गिर कर विष बन जाती हैं। एक ही जल में की एक ही समय

में गिरी हुई बूँदों के परिणाम में इस प्रकार के अन्तर का कारण उपादान की भिन्नता ही है। जो साधु सभी जीवों का कल्याण चाहते हैं और जिनका दर्शन स्मरण करके अनेक जीव आत्मा का कल्याण करते हैं, कई खराब उपादान वाले लोग उन्हीं साधुओं द्वारा स्वयं का अकल्याण कर लेते हैं। उनकी निन्दा-बुराई करके और उनसे ईर्षा द्वेष रख कर पाप कर्म बाँध लेते हैं। जो साधु पाप नष्ट करने के साधन माने जाते हैं, उन्हीं द्वारा पाप बाँध लेने का कारण यही है कि उनका उपादान ही खराब है। इसके विरुद्ध जो पाप बन्ध या राग—द्वेष को उत्पत्ति के निमित्त कारण माने जाते हैं और जिन कारणों के विद्यमान होने पर अनेक लोग पाप बाँध लेते हैं अथवा रागद्वेष में पड़ जाते हैं, अच्छे उपादान वाले उन्हीं निमित्त कारणों से पाप और राग-द्वेष नष्ट कर देते हैं। इस प्रकार निमित्त-कारण की अपेक्षा अपेक्षाकृत उपादान कारण का महत्व अधिक है। निमित्त कारण, उपादान कारण के अनुसार ही अच्छा या बुरा परिणाम देता है। सुदर्शन मुनि से सम्बन्धित घटनाओं पर विचार करने से, यह बात और भी स्पष्ट होजाती है। कपिला के कपटजाल में फंसने पर, अभया के महल में उसकी अनुकूल-प्रतिकूल बातें सुनने पर, निरपराधी होते हुए भी शूली चढ़ाये जाने पर और तीन दिन तक वेश्या के घर में अनुकूल प्रतिकूल परिषह सहने पर राग-द्वेष होना और पाप कर्म बंधना स्वाभाविक था, लेकिन यह

स्वाभाविकता उन्हीं के लिए है, जिनका उपादान कारण खराब है। जिनका उपादान कारण अच्छा है, उनके लिए इन्हीं निमित्त कारणों द्वारा पाप कर्म नष्ट करना और राग-द्वेष मिटाना भी स्वाभाविक है। सुदर्शन मुनि का उपादान-कारण अच्छा था, तो ये सभी निमित्त-कारण उनके आत्मा की उन्नति में सहायक ही हुए। यह बात पिछले प्रकरणों से तो सिद्ध है ही, किन्तु इस प्रकरण से भी यही बात सिद्ध है। इसलिए निमित्त कारण की अच्छाई बुराई देखने की अपेक्षा, अपने आत्मा की अच्छाई बुराई देखने की और अपने आत्मा को अच्छा रखने की विशेष आवश्यकता है। यदि अपना आत्मा अच्छा होगा तो अपने लिए हानि करने वाली बातें भी लाभ करने वाली बन जावेंगी और अपना आत्मा ही कुसंस्कारों से भरा होगा, तो अपने लिए अच्छी बातें भी बुराई ही पैदा करेंगी।

हरिणी वेश्या के यहां से निकल कर सुदर्शन मुनि सीधे जंगल में चले गये। वहां उन्होंने ऐसे एकान्त स्थान पर बैठकर ध्यान लगाया, जहां मनुष्यों का आवागमन कदाचित ही होता था। योगायोग से, अभया रानी मरकर उसी जंगल में व्यन्तरी के भव में जन्मी और वहीं रहती थी। उसने, ध्यान लगाये हुए सुदर्शन मुनि को देखा। मुनि को देखते ही व्यन्तरी को विभंग-ज्ञान की सहायता से पूर्वभव की समस्त घटना स्मरण हो आई।

उसके हृदय में मुनि के प्रति वैरभाव जागृत हो उठा। वह सोचने लगी, कि मैंने पूर्वभव में इसको अपना प्रेमी बनाना चाहा था, लेकिन इस धर्म ढोंगी ने मेरा कहना नहीं माना। परिणामतः इसको मैंने शूली पर चढ़वा दिया, परन्तु यह शूली से भी बच गया और इसके बदले मुझे आत्महत्या द्वारा मरना पड़ा। इस समय यह धर्मढोंगी साधु बनकर बैठा है। यदि अब भी इसको मैं अपना प्रेमी बना सकूँ, तो मेरी पूर्वभव की अपूर्ण इच्छा पूर्ण हो जावे। लेकिन जब यह गृहस्थ था, उस समय भी इसने मेरी बात नहीं मानी थी, तो अब तो यह साधु हो गया है, इसलिए मेरी बात क्यों मानेगा! फिर भी मुझे प्रयत्न तो करना ही चाहिए। जो कार्य पूर्वभव में न कर सकी, सम्भव है कि प्रयत्न करने पर अब उसे कर सकूं। क्योंकि, उस भव और इस भव में अन्तर भी है। मैं उस भव में तो मानवी थी, लेकिन अब इस भव में देवी हूँ। यद्यपि उस भव से इस भव में जन्मना मेरा पतन है। क्योंकि मनुष्य जन्म देवों के लिए भी दुर्लभ है। ऊँचे देवलोक के देव भी मनुष्य भव की इच्छा करते रहते हैं, तो मैं तो नीच व्यन्तरी हूँ;इसलिए श्रेष्ठ मनुष्य भव से इस भव में आना यह मेरा पतन है, लेकिन इस धर्म ढोंगी को इसके निश्चय से भ्रष्ट करने के लिए मनुष्य भव की अपेक्षा यह भव अच्छा है। इस भव में मैं अपना शरीर इच्छानुसार बना सकती हूँ। बड़ा भी बना सकती हूँ

और छोटा भी बना सकती हूँ। सुन्दरी भी बन सकती हूँ, और कुरूपा भी बन सकती हूँ। अपना रूप ऐसा आकर्षक भी बना सकती हूँ कि जिसको देखते ही पुरुष मुग्ध हो जावे, और ऐसा भयङ्कर भी बना सकती हूँ, कि देखकर भय खा जावे। इस प्रकार इसको अपने वश करके इसके द्वारा अपनी इच्छा पूर्ण करने में यह भव उपयुक्त सहायक होगा।

इस प्रकार सोच कर व्यन्तरी, सुन्दर स्त्री का रूप धारण करके सुदर्शन के समीप गई। वह पुरुषों को मुग्ध करनेवाले हाव भाव दिखाती हुई सुदर्शन मुनि से कहने लगी, कि—हे साधु! उठो। तुम्हारा तप सफल हुआ है। तुम्हारे तप के फल स्वरूप मैं तुम्हारी सेवा करने के लिए आई हूँ इसलिए उठो। तुम तप द्वारा जो सुख प्राप्त करना चाहते थे, वह सुख देने के लिए मैं उपस्थित हूँ। तुम मेरे द्वारा सुख भोग कर के अपने तप का फल लो।

हाव भाव दिखाती हुई व्यन्तरी सुदर्शन मुनि से बारबार इस तरह कहने लगी, लेकिन सुदर्शन मुनि ध्यान से किंचित भी विचलित नहीं हुए। व्यन्तरी की बातें सुन कर ध्यान में बैठे हुए सुदर्शन मुनि सोचते थे, कि इस माता की मुझ पर बड़ी कृपा है, जो यह मेरी परीक्षा कर रही है। मैं तो परीक्षा से भय खा कर ग्राम नगर में जाना आना त्याग यहाँ पर जंगल में रहने लगा था, लेकिन जैसे इस माता ने सोचा कि परीक्षा में उत्तीर्ण हुए बिना

इसके आत्मा का कल्याण नहीं हो सकता, और यह सोच कर ही यह माता मेरी परिज्ञा ले रही है। मुझे अपने निश्चय पर दृढ़ रह कर इस माता द्वारा ली जानेवाली परीक्षा में उत्तीर्ण होना चाहिए, अनुत्तीर्ण न रहना चाहिए। यदि मैं अनुत्तीर्ण रहा, तो मेरे आत्मा का भी अपमान होगा।

इस प्रकार विचार कर सुदर्शन मुनि, व्यन्तरी के प्रयत्नों के साथ अपना ध्यान बढ़ाते जाते थे। सुदर्शन मुनि के समीप व्यन्तरी का सब प्रयत्न, पत्थर पर गिरे हुए या बीच में से काट डाले गये बाणों की तरह व्यर्थ हो रहा था। अपने प्रयत्न निष्फल देख कर व्यन्तरी क्रुद्ध हो उठी। वह अपनी वैक्रिय शक्ति की सहायता से विकराल पिशाचिनी के समान भयंकर रूपवाली बन गई, और हाथ में नंगी तलवार लेकर पाँव पटकती जीभ लपलपाती कटु शब्द बोलती और तलवार बताती हुई सुदर्शन से कहने लगी, कि या तो मेरे पैरों पड़कर मुझ से क्षमा माँग तथा मैं जो कुछ कहूँ वह करना स्वीकार कर, नहीं तो मैं तेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगी।

व्यन्तरी ने पहले तो अनुकूल परिषह दिये और फिर प्रतिकूल परिषह देने लगी, लेकिन सदर्शन मुनि किंचित भी भयभीत या विचलित नहीं हुए। वे तो यही सोचते थे, कि इस माता ने पहले उस रूप में मेरी परीक्षा की थी, और अब इस रूप में मेरी

परीक्षा कर रही है। पहले इसने राग की परीक्षा की और अब द्वेष की परीक्षा ले रही है, कि मेरे में अभी द्वेष है या नहीं ! मुझे माता द्वारा ली जानेवाली परीक्षा से प्रसन्न होना चाहिए। यह मेरे हित के लिए ही मेरी परीक्षा ले रही है। मुझे विश्वास है, कि मैं इस परीक्षा में भी उत्तीर्ण ही होऊँगा। जब राग रूपी समुद्र से मैं पार हो गया, तब द्वेष की उस परीक्षा में अनुत्तीर्ण कैसे रह सकता हूँ, जो एक गड्ढे के समान है। जब समुद्र को पार कर गया, तब गड्ढे को पार करना क्या कठिन है !

इस तरह सोचकर सुदर्शन मुनि-जैसे-जैसे व्यन्तरी उन्हें अधिक कष्ट देती थी, वैसे ही वैसे—अपना निर्मल ध्यान भी बढ़ाते जाते थे। उनका ध्यान ऐसा बढ़ा, कि वे अपूर्व करण द्वारा शुक्ल ध्यान में प्रवेश कर के अन्तर्मुहूत में नववें दसवें और ग्यारहवें गुण स्थान को पार करके बारहवें गुण स्थान पर सम्पूर्ण मोह आदि चार घातिक कर्म नष्ट करके तेरहवें गुणस्थान पर पहुँच गये। तेरहवें गुणस्थान पर पहुँचते ही उनको सम्पूर्ण अनन्त और निर्बाध केवलज्ञान तथा केवल-दर्शन प्रकट हुआ।

केवल ज्ञान प्रकट होने पर सुदर्शन मुनि सोचने लगे, कि मुझे केवल ज्ञान की यह सम्पत्ति इस व्यन्तरी माता की कृपा से ही अभी मिली है, अन्यथा न मालूम कब मिलती। इसलिए इस माता का मुझ पर बहुत उपकार है।

सुदर्शन मुनि को केवलज्ञान प्रकट हुआ है यह जान कर, देवता लोग आनन्दित होते हुए तथा भगवान सुदर्शन का जय-जय कार करते हुए केवलज्ञान महोत्सव करने के लिए उपस्थित हुए। उन देवों ने केवल-ज्ञान महोत्सव मनाया। भगवान सुदर्शन ने उपस्थित परिषद को धर्मोपदेश दिया। उन्होंने कहा कि—हे देवो! आप लोगों ने जो महोत्सव मनाया है, वह इस शरीर के कारण नहीं किन्तु गुणों के कारण मनाया है। लेकिन जिन गुणों के प्रकट होने से आप लोगों ने यह उत्सव किया है, वे गुण आपके आत्मा में भी हैं और आप भी उन गुणों को प्रकट कर सकते हैं। मेरा और आपका आत्मा समान है, अन्तर केवल उपाधि का है। यदि आप लोग अपने में रही हुई उपाधि मिटा दें, तो जिन गुणों की अभी आप लोगों ने महिमा की है आपके आत्मा में रहे हुए वे ही गुण प्रकट होने में देर नहीं लग सकती। इसलिए केवल गुणों की महिमा करने में ही न रह जाओ, किन्तु उन्हें प्रकट करने का प्रयत्न करो। यद्यपि गुणों की महिमा करने का उद्देश्य अपने में रहे हुए उन गुणों को प्रकट करना ही होता है, लेकिन इस उद्देश्य को विस्मृत न होना चाहिए किन्तु इसकी पूर्त्ति का प्रयत्न करना चाहिए।

भगवान सुदर्शन ने, इस प्रकार विस्तार पूर्वक उपदेश दिया। भगवान का उपदेश सुनकर व्यन्तरी का हृदय पल्टा। वह

सोचने लगी, कि जिनकी महिमा इन्द्रादि देव कर रहे हैं और जो सब को अपने आत्मा के समान मानते हैं, मैंने उनको कष्ट देकर भयंकर पाप किया है। मेरे पाप का बोझ मुझे दबा रहा है। मैं इस पाप को अब अधिक समय तक अपने पर लादे नहीं रह सकती।

इस प्रकार हृदय में पश्चात्ताप करती हुई व्यन्तरी हाथ जोड़ कर भगवान सुदर्शन से कहने लगी, कि प्रभो, मुझ पापिनी के अपराध क्षमा करो। मैंने आपको बहुत उपसर्ग दिये हैं। मेरे पाप का बोझ मेरे लिए असह्य हो रहा है। आप मेरे अपराध क्षमा करके, मेरे आत्मा पर से इस बोझ को कम करने की कृपा कीजिये।

केवली भगवान सुदर्शन से व्यन्तरी बार-बार इस तरह कहने लगी। भगवान सुदर्शन ने व्यन्तरी को सान्त्वना देते हुए उपस्थित देवों से कहा, कि—इससे मुझे मेरे संयम में बहुत सहायता मिली है। आज मैं जिस अवस्था को प्राप्त कर सका हूँ और जिन गुणों के प्रकट होने से आप लोग मेरी महिमा कर रहे हैं, वह अवस्था एवं वे गुण इस की सहायता से ही शीघ्रतम प्राप्त हुए हैं।

भगवान के इस कथन से व्यन्तरी का हृदय और भी नम्र हो गया। वह कहने लगी—प्रभो, यह आपकी उदारता है कि आप

मुझ पापिनी को भी उपकार करानेवाली मान रहे हैं। वास्तव में मैंने जो कुछ भी किया, वह आपका अपकार करने के लिए ही था। अभया के भव में भी मैंने आपका शील नष्ट करना चाहा था, और जब आपने मेरी बात स्वीकार नहीं की तब मैंने आप पर झूठा कलंक लगा कर आपको शूली पर चढ़वाया। यह बात दूसरी है, कि आपके शील के प्रताप से आपके लिए शूली भी सिंहासन बन गई, लेकिन अपनी ओर से तो मैंने आपके प्राण लेने का ही प्रयत्न किया था पश्चात् यहाँ भी आपका शील नष्ट करने के लिए, मैंने आपको अनेक अनुकूल प्रतिकूल परिषह दिये। इस प्रकार मैंने आपका अपकार ही किया है, उपकार नहीं किया है, आप मेरे द्वारा किये गये अपकारों को सहायता रूप उपकार मानते हैं यह आपकी महान् उदारता है। मुझे, अपने दुष्कृत्यों के लिए अत्यन्त पश्चात्ताप है। आप मेरे अपराधों को क्षमा करो।

व्यन्तरी ने, इस प्रकार अपने पापों की आलोचना करके उनके लिए पश्चात्ताप किया। देवगण उसकी प्रशन्सा करके कहने लगे, कि—तुमने अपने पाप प्रकट करके अपने आत्मा को हल्का कर लिया है। पाप तो हो जाते हैं, लेकिन पाप को स्वीकार करके इस तरह प्रकट करना बहुत ही कठिन है। बहुत लोग भय के कारण अपने पाप को भीतर ही भीतर दबाते हैं, परन्तु दबाने से पाप

घटते नहीं किन्तु बढ़ते हैं। तुमने अपने पाप प्रकट करके उनके लिए पश्चात्ताप किया है, इसलिए अब तुम पवित्र हो।

भगवान सुदर्शन ने भी प्रिय वचनों द्वारा व्यन्तरी को सन्तुष्ट किया। उन्होंने व्यन्तरी से कहा, कि—मैं स्वयं पर तुम्हारा उपकार निष्कारण नहीं मान रहा हूँ। अपितु चम्पा की जिस घटना का तुमने वर्णन किया है उस घटना के प्रताप से ही मैं संसार त्यागकर संयम लेने में समर्थ हुआ। पश्चात् यहाँ भी मैं तुम्हारी ही सहायता से जल्दी आत्मा का कल्याण कर सका। मैं, ग्राम-नगर में जाना त्याग कर यहाँ ध्यान करने लगा था, लेकिन ग्राम-नगर की सहायता के बिना भोजन-पानी नहीं मिल सकता और भोजन-पानी के बिना शरीर अधिक समय तक नहीं टिक सकता। ऐसे समय में यदि तुम्हारी सहायता प्राप्त न हुई होती और मेरा ध्यान न बढ़ा होता, तो मैं शीघ्रतम केवलज्ञान कैसे प्राप्त कर सकता था! मैं इसी शरीर से आत्म कल्याण कर सका, यह तुम्हारी सहायता का ही परिणाम है। इसी से मैंने तुमको मेरे पर उपकार करनेवाली कहा है। मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति वही स्थान है, जो स्थान अपने उपकारी के लिए होता है, इसलिए तुम चिन्ता त्याग कर प्रसन्न रहो।

भगवान सुदर्शन का यह कथन सुन कर व्यन्तरीका हृदय गद् गद् हो उठा। वह कहने लगी, कि—आपने मुझ पापिनी को भी पवित्र बना दिया। वास्तव में महापुरुषों का संग क्या नहीं करता! कहा ही है कि—

महानुभाव संसर्गः कस्यनोन्नति कारकः ।
पद्मपत्रस्थितं वारि धत्ते मुक्ताफश्रियम् ॥

अर्थात्—महापुरुषों की संगति से किस की उन्नति नहीं होती ! जल की बूँद भी कमल के पत्ते की संगति से मोती की शोभा धारण करलेती है ।

इसके अनुसार आपने मुझ पापिनी का भी उद्धार किया। यद्यपि मैं आपके संसर्ग में आई तो दुर्भावना से, लेकिन आप महापुरुष हैं इसलिए आपने मेरी वह दुर्भावना ही मिटा दी।

व्यन्तरी ने भगवान सुदर्शन से इस प्रकार की प्रार्थना की, और उस दिन से वह समकित धारिणी बन गई। देवगण भी भगवान सुदर्शन का जयजयकार करते हुए अपने स्थान को गये।

भगवान सुदर्शन, जनपद में विचर कर अपनी अमोघ वाणी द्वारा जनता का कल्याण करने लगे। कुछ समय तक अपने उपदेश द्वारा जनता का कल्याण करने के पश्चात् भगवान सुदर्शन, अपना निर्वाण-काल समीप जान सयोगी अवस्था से शैलेशी अवस्था में पहुँच कर और मन, वचन, काय के योग को रूँध कर सिद्ध बुद्ध मुक्त हो गये।

उपसंहार

धर्म की व्याख्या करनेवाले विद्वानों का कथन है, कि जो पतित होने से बचावे और उन्नत करे उसको 'धर्म' कहते हैं। पतन तथा उन्नति, लौकिक भी होती है और लोकोत्तर भी। इसलिए शास्त्रकारों ने, धर्म के लौकिक धर्म और लोकोत्तर धर्म ऐसे दो भेद कर दिये हैं। यहाँ इस विषयक विशेष व्याख्या नहीं करनी है, इसलिए यही कहा जाता है कि लोकोत्तर धर्म के दान, शील, तप और भाव ये चार अंग हैं।

शास्त्रकारों ने चरितानुयोग द्वारा जनता के सामने ऐसे लोगों की कथाएँ आदर्श के लिए रखी हैं जिनने लोकोत्तर धर्म के इन अंगों द्वारा आत्मा का कल्याण किया है। यद्यपि उन कथाओं में मुख्यता किसी एक ही अंग की होती है, लेकिन गौण रूप से शेष तीन अङ्ग भी उस कथा में मौजूद होते ही हैं। क्योंकि चारों अङ्ग के बिना लोकोत्तर धर्म अपूर्ण रहता है, और जब तक पूर्ण लोकोत्तर धर्म नहीं है, तब तक आत्मा का पूर्ण कल्याण भी नहीं हो सकता। इसलिए आदर्शरूप जो कथाएँ हैं, उनमें किसी एक अंग की विशेषता और किसी एक अङ्ग का प्रभाव बताने पर भी, शेष तीन अंग भी उनमें हैं ही। उदाहरण के लिए सुबाहुकुमार की कथा में दान का महत्व बताया गया है, लेकिन उस कथा में दान के साथ ही शील, तप और भाव भी हैं। एक ही कथा में धर्म के चारों अङ्ग का पूरी तरह वर्णन करना और चारों का समान रूप से महत्व बताना कठिन है, इसलिए एक-एक कथा में प्रायः एक-एक अङ्ग का महत्व उसकी विशेषता और उपयोगिता दिखाकर यह बताया गया है, कि कथानायक ने उस अङ्ग का किस प्रकार विशेष रूप से पालन किया।

सुदर्शन सेठ की यह कथा, शील का महत्व बताने के लिए है। इस कथा में यह बताया गया है कि शील का पालन कैसी दृढ़ता से करना चाहिए, और वैसी दृढ़ता से पालन किये गये शील

का महत्व तथा प्रभाव कैसा होता है। यद्यपि इस कथा में मुख्यतः शील की है, लेकिन शील के साथ ही—गौण रूप से—दान, तप और भाव भी इस कथा में मौजूद हैं।

शील की व्याख्या बहुत विस्तृत है। शील में समस्त सद्गुणों का समावेश हो जाता है। दुर्गुणों से निवर्तकर सद्गुणों में प्रवृत्त होना—यानी सदाचार का पालन करना—ही शील का अर्थ है। इस प्रकार शील के अन्तर्गत समस्त सद्गुण आ जाते हैं। नम्रता, सरलता, लज्जा, दया, सत्य, प्रियवादिता, प्रामाणिकता, ब्रह्मचर्य आदि समस्त सद्गुण शील के ही अङ्ग हैं। इस प्रकार शील का अर्थ व्यापक और विस्तृत है, लेकिन व्यवहार में प्रायः शील का अर्थ ब्रह्मचर्य अथवा स्वदारा सन्तोष ही किया जाता है। व्यवहार की इस व्याख्या को दृष्टि में रखकर ही सुदर्शन सेठ की कथा के लिए यह कहा जाता है, कि यह कथा शील का आदर्श बताने के लिए है। उसमें भी इस कथा का मुख्य आदर्श परदारागमन से स्वयं को बचाना है। एक बात और भी है। जिस व्यक्ति में कोई एक गुण पूर्ण रूप से मौजूद होता है, साधारणतया उसमें दूसरे गुण भी होते ही हैं। जो परदारा का पूर्ण त्यागी होगा, उसमें नम्रता, सरलता, लज्जा, दया, प्रियवादिता और प्रामाणिकता आदि गुण भी होंगे। शास्त्र में कहा है—

लज्जा दया संजम बम्भचेर।

अर्थात्—जिसमें लज्जा है उसी में दया है, जिसमें दया है उसी में संयम है, और जिस में संयम है उसी में ब्रह्मचर्य है।

इसके अनुसार किसी भी एक सद्गुण की पूर्णतया उपस्थिति के लिए, उसके सहचारी अन्य सद्गुणों का होना भी आवश्यक है। यदि ऐसा न हो किन्तु कोई एक भी दुर्गुण हो, तो उस दुर्गुण के रहते पूर्णतया एक भी सद्गुण नहीं रह सकता। इस दृष्टि से सुदर्शन की इस कथा को परदारा से बचने का आदर्श की कथा कहना ठीक ही है। इस कथा का अध्ययन करने पर यह बात और भी अधिक स्पष्ट जान पड़ेगी। सुदर्शन कैसा दृढ़व्रती था यह बताना तो इस कथा का उद्देश्य ही है। उसको स्वदारा-सन्तोष व्रत से पतित करने के लिए कपिला, अभया और हरिणी ने स्वयं की शक्ति भर सब प्रयत्न कर डाले, लेकिन वे सुदर्शन का व्रत भङ्ग करने में समर्थ नहीं हुईं। वह पौषध व्रत में कायोत्सर्ग करके बैठा था। उस समय पंडिता उसे उठाकर अज्ञात स्थान को ले जाने लगी, तथा ले भी गई, फिर भी उसने—कायोत्सर्ग का पालन करने के लिए—अपने शरीर की रक्षा का प्रयत्न नहीं किया। सत्यव्रत का पालन करने के लिए, वह राजा आदि अनेक लोगों के प्रयत्न पर भी कुछ नहीं बोला। वह कैसा अक्रोधी था इसके लिए लोगों द्वारा कही गई उस समय की बातें पर दृष्टिपात करना ही पर्याप्त होगा, जब वह शूली पर चढ़ाया जाने के लिए ले जाया जा रहा

था। वह वचन-पालन में ऐसा शूर था, कि कपिला और अभया को 'माता' कहा था इसलिए स्वयं के प्राण जाने के समय तक भी उसने उन दोनों की प्रतिष्ठा बचाने का ही प्रयत्न किया। उसमें क्षमा कैसी थी, इसके लिए अभया को अभय दिलाने की बात ही पूर्ण प्रमाण है। उसमें निराभिमानता ऐसी थी, कि नगर सेठ बना तब भी उसे अभिमान नहीं हुआ, कपिला के जाल से बच जाने पर भी अभिमान नहीं हुआ, शूली का सिंहासन बन जाने और राजा प्रजा एवं देवों द्वारा महिमा होने पर भी अभिमान नहीं हुआ, तथा वेश्या के घर में तीन दिन तक रह कर अपना शील अक्षुण्ण रख सकने के कारण भी अभिमान नहीं हुआ। सुदर्शन, पूर्ण धैर्यवान भी था। संसार में ऐसे बहुत कम लोग निकलेंगे, जिनको प्राण जाने का भय न हो और जो प्राण जाने के भय से भीत होकर अपने ध्येय से विचलित न हुए हों। लेकिन सुदर्शन शूली पर चढ़ाने तक भी धीर ही बना रहा। प्राण समर्पण कर देने वाले धीर तो कई निकलेंगे, परन्तु भूख का दुःख ऐसे बड़े-बड़े धीरों की भी धीरता छुड़ा देता है। भूख के दुःख से अधीर होकर ही अनेक लोग अनुचित काम कर डालते हैं। किन्तु सुदर्शन क्षुधा का दुःख सहकर भी धीर ही बना रहा, उसने भूख के कारण धैर्य नहीं त्यागा न उस दुःख से मुक्त होने के लिए शील ही नष्ट किया। सुदर्शन-मुनि, क्षुधा मिटाने के लिए

ही पटना में भिक्षा को निकले थे और हरिणी वेश्या श्राविका बन कर उन्हें अपने घर ले गई थी। इस प्रकार जब वे वेश्या के घर पहुँचे तब भूखे ही थे, और वेश्या का कथन अस्वीकार करने के कारण उनको वेश्या के घर में तीन दिन तक भूखा ही रहना पड़ा। इस बीच में वेश्या ने उन्हें भोजन का बहुत प्रलोभन दिया, परन्तु सुदर्शन मुनि धैर्यपूर्वक क्षुधा का कष्ट सहते रहे। सुदर्शन की निर्लोभता का तो कहना ही क्या है! विशाल राज्य अथवा सुन्दर युवतियों के लोभ में कौन नहीं पड़ सकता! ऐसे बहुत कम लोग निकलेंगे, जो इनके लोभ में न पड़े हों। बल्कि बड़े-बड़े युद्धों द्वारा लाखों करोड़ों मनुष्यों का रक्त, राज्य तथा रमणी के लिए ही बहाया जाता है। सुदर्शन को राज्य और रमणी दोनों ही की प्राप्ति हो रही थी, लेकिन सुदर्शन इन के लोभ में नहीं पड़ा। सुदर्शन का त्याग भी कम नहीं है। सुदर्शन ने गृह-संसार तो त्यागा हो, लेकिन वेश्या के घर से छूटने के पश्चात ग्राम नगर में आना जाना भी त्याग दिया। ग्राम-नगर में आना त्यागने से उन्हें कैसी कठिनाई में पड़ना पड़ा होगा, यह तो अनुमान से जान ही सकते हैं। सुदर्शन में तप भी कम न था। गृहस्थाश्रम में रहता हुआ सुदर्शन पौषधादि करता था, और मुनि होने के पश्चात ध्यान का उत्कृष्ट तप किया, यह इस कथा से प्रकट ही है।

इन सभी बातों से बढ़ कर सुदर्शन की निष्काम धर्म सेवा है। सुदर्शन, पूर्ण-धार्मिक व्यक्ति था। सेवक को जब किसी प्रकार का कष्ट होता है, तब वह सेव्य द्वारा उस कष्ट से मुक्त होने की इच्छा करता ही है। चाहे कष्ट हो या न हो, किसी भी समय सेव्य से सेवक की किसी प्रकार की कामना सेवा का महत्व घटाती है और ऐसे सेवक की सेवा एक वाणिज्य के समान हो जाती है। फिर भी ऐसे बहुत कम लोग निकलेंगे, जो सेव्य से किसी भी समय तथा किसी भी प्रकार की कामना न करते हों। बल्कि बहुत से लोग तो ऐसे होते हैं, जो सेव्य की सेवा किसी न किसी कामना से ही करते हैं। धर्म, सुदर्शन सेठ का सेव्य था और सुदर्शन सेठ धर्म का सेवक था। उसने और किसी समय तो धर्म के फलस्वरूप किसी प्रकार की सांसारिक कामना नहीं की, लेकिन उस समय भी उसने धर्म से कोई सांसारिक कामना नहीं की, जिस समय कि उसे शूली पर बैठा दिया गया था। यद्यपि यह नियम है कि:—

धर्मो रक्षति रक्षितः।

अर्थात्—जो धर्म की रक्षा करता है, वह स्वयं भी रक्षित रहता है।

इसके अनुसार चाहे सुदर्शन सेठ की शूली द्वारा मृत्यु भी हो जाती, तब भी उसकी किंचित् भी आध्यात्मिक हानि न थी, जो हानि होती वह भौतिक ही और आध्यात्मिक-हानि के सन्मुख

भौतिक हानि नगण्य है, फिर भी जब तक कोई कारण विशेष न हो तबतक धर्म अपने सेवक की भौतिक-हानि भी नहीं होने देता। इसलिए सुदर्शन की भौतिक रक्षा भी हुई ही, लेकिन सुदर्शन ने तो उस समय भी शरीर-रक्षा की कामना नहीं की थी।

तात्पर्य यह, कि इस प्रकार सुदर्शन में वे सभी गुण विद्यमान थे, जिनकी गणना शील के उप भेदों में है और जो आत्म कल्याण में सहायक हैं। इसलिए परदारागमन न करने के अर्थ में भी सुदर्शन की कथा को शील का आदर्श बतानेवाली कथा कहना ठीक है, और शील का जो व्यापक अर्थ है, उस व्यापक अर्थ की दृष्टि से भी सुदर्शन की कथा को शील का आदर्श बताने वाली कथा कहना ठीक ही है।

सुदर्शन, गृहस्थ श्रावक था, प्रतिमाधारी श्रावक न था। ऐसा होते हुए भी उसने शील का किस प्रकार पालन किया, किस प्रकार के त्रिया-चरित्र में पड़कर उसने शील की रक्षा की, उसने कैसे-कैसे कष्ट सहकर भी शील नष्ट नहीं होने दिया और शील के सन्मुख सांसारिक मान-सम्मान, स्त्री-पुत्र का स्नेह, सुख वैभव तथा जीवन या मृत्यु को भी किस प्रकार अपेक्षा नहीं की, यह इस कथा में बताया गया है। साथ ही यह भी बताया गया है, कि शील पालन के लिए सुदर्शन की तरह की दृढ़ता आने के वास्ते किस प्रकार की भूमिका की आवश्यकता है। कैसी भूमिका के होने पर ही इस प्रकार की दृढ़ता के साथ शील का पालन किया जा सकता

है, यह बताने के लिए ही इस कथा में सुदर्शन का बाल्यकाल, उसकी शिक्षा, उसके विचार और उसकी धार्मिकता का वर्णन किया गया है।

वैसे तो शील के द्वारा अनन्त जीव कल्याण कर गये हैं, फिर भी शील का आदर्श बताने के लिए सुदर्शन की ही कथा रखी जाने का कारण यह है, कि एक तो सुदर्शन गृहस्थ था। कोई बड़ा आदमी यदि बड़ा काम करे तो उसमें उसकी प्रशन्सा नहीं होती, जैसी प्रशन्सा किसी छोटे आदमी द्वारा बड़ा काम होने पर उस छोटे आदमी की होती है। जैसे महाभारत के युद्ध में दूसरे भी बड़े-बड़े वीर थे और उनने भी वीरता दिखाई थी, फिर भी अभिमन्यु की प्रशन्सा इसलिए हुई कि कि वह युद्ध में उपस्थित वीरों से अवस्था में छोटा होने पर भी उसने सब से अधिक पराक्रम दिखाया था। इसी प्रकार शील पालन द्वारा आत्मकल्याण करने वालों में, सुदर्शन भी पहली अवस्था का गृहस्थ था। दूसरे, अनुकूल परिस्थिति में शील की रक्षा करना वैसी विशेषता की बात नहीं है, जैसी विशेषता की बात प्रतिकूल परिस्थिति में शील का पालन करना है। सुदर्शन के सामने अनेक प्रतिकूल परिस्थितियां आईं। उसके सन्मुख, एक ओर तो राज्यप्राप्ति का प्रलोभन था और दूसरी ओर प्राण जाने का भय। शील भंग करने पर राज्य प्राप्त होता था, अन्यथा प्राण जाने का भय था। साधारणतया ऐसी स्थिति में शील की रक्षा करना बहुत ही कठिन है, लेकिन

सुदर्शन ने ऐसी परिस्थिति में भी शील की रक्षा की। इसी कारण शील का आदर्श बताने के लिए उस की कथा रखी गई है।

सुदर्शन की यह कथा, बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, गृहस्थ और गृहत्यागी सभी के लिए समान हितकारी है। बालकों को किस प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता है, उनको अपने गुरुजनों के प्रति कैसा व्यवहार रखना चाहिए, तथा उनके प्रति गुरुजनों का क्या कर्त्तव्य है, यह बात सुभग एवं सुदर्शन के बाल्यकालीन वर्णन से मालूम होगी। युवावस्था प्राप्त होने पर भी मर्यादा का किस प्रकार पालन करना चाहिए, युवावस्था के आवेश में किस तरह मर्यादा भंग न होने देनी चाहिए, धन-सम्पत्ति और पद प्रतिष्ठा पाकर किस प्रकार निराभिमानी रहना चाहिए, यह बात सुदर्शन के यौवनकालीन वर्णन से प्रकट है। वृद्धावस्था आने पर और संसार व्यवहार के योग्य सन्तान हो जाने पर क्या करना चाहिए, यह बात जिनदास तथा अर्हदासी के चरित्र से विदित है। इन दोनों के चरित्र से यह भी प्रगट है, कि सन्तान प्राप्ति के लिए धर्म-विरुद्ध कोई कार्य न करना चाहिए। सन्तान अथवा गृह में रहनेवाले नौकर आदि के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, उन्हें कैसी शिक्षा देनी चाहिये आदि बातें भी जिनदास और अर्हदासी के चरित्र से जानी जाती हैं।

अर्हदासी और मनोरमा का चरित्र स्त्रियों को बहुत उच्च

आदर्श सिखाता है। दोनों ही के कार्य, स्त्रियों को गृहिणी धर्म की शिक्षा देते हैं। अर्हद्दासी को सन्तान की आवश्यकता थी, फिर भी उसने पति के कथन पर विश्वास रखकर पति द्वारा बताया गया मार्ग ही अपनाया। इसी प्रकार मनोरमा से लोगों ने बहुत कुछ कहा सुना, परन्तु उसने अपने पति के चरित्र पर सन्देह तक नहीं किया। वह विधवा बनना अनुचित नहीं मानती थी, लेकिन दुराचारी पति की पत्नी रहना अच्छा नहीं समझती थी। उसने, पति का हितकारी मार्ग कभी नहीं रोका, न वह कभी पति के कल्याण में बाधक ही बनी।

इस प्रकार इस कथा द्वारा गृहस्थों को यह दृढ़ता बंधाई गई है, कि सुदर्शन तुम्हारी ही तरह का गृहस्थ था। वह भी, स्त्री-पुत्र, धन-सम्पत्ति वाला और प्रतिष्ठा प्राप्त था। वह सुन्दर भी था तथा युवक भी था, और उसे ऐसी-ऐसी सुन्दर युवतियाँ सम्भोग के लिए प्राप्त हो रही थीं, जो उस समय की सुन्दरियों में प्रसिद्ध थीं। साथ ही, उन सुन्दरियों का तिरस्कार करने से मृत्यु और उन्हें स्वीकार करने से सांसारिक सम्पदा प्राप्त होती थी। ऐसा होते हुए भी उसने शील की रक्षा की, तो तुम शील की रक्षा क्यों नहीं कर सकते ! दृढ़ता रखने पर अवश्य ही शील का पालन कर सकते हो।

गृहस्थों को यह दृढ़ता बंधाने के साथ ही, इस कथा द्वारा

गृह-त्यागियों को यह शिक्षा दी गई है, कि जब गृहस्थावस्था में रहते हुए और इस प्रकार की विषम स्थिति होने पर भी सुदर्शन ने शीलव्रत का पालन किया, तो तुम तो गृहत्यागी हो ! तुमने तो शील पालन के लिए ही दीक्षा ली है ! फिर भी यदि तुम अपना शील नष्ट कर दो, ब्रह्मचर्य से पतित हो जाओ तो यह बात तुम्हारे लिए कितनी लज्जास्पद होगी !

शील पालन के लिए किस प्रकार की दृढ़ता की आवश्यकता है यह तो इस कथा में प्रधान रूप से बताया ही गया है, लेकिन इस कथा से यह भी शिक्षा मिलती है कि शील रक्षा करने के लिए त्रियाचरित्र स्त्रियों के छलपूर्ण व्यवहार और उसके प्रपंच से किस प्रकार बचते रहना चाहिए। साथ ही इस कथा से एक यह शिक्षा भी मिलती है, कि मनुष्य कुसङ्ग के कारण किस प्रकार नष्ट हो जाता है। अभया को, कपिला की कुसङ्गति ने ही सुदर्शन का शील नष्ट करने के लिए प्रोत्साहित किया था। यदि कपिला से उसकी संगति न होती, तो सम्भवत: वह ऐसा दुष्कृत्य करने के लिए तय्यार न होती, न उसे आत्महत्या ही करनी पड़ती। इसी प्रकार हरिणी वेश्या ने भी, पंडिता के कुसङ्ग के कारण ही मुनिव्रतधारी सुदर्शन को पतित करने का प्रयत्न किया था। वह वेश्या तो अवश्य थी, लेकिन उसका उद्देश्य वेश्या वृत्ति द्वारा धनोपार्जन

करके आजीविका चलाना था, किसी शीलवान का शील व्यर्थ ही नष्ट करना उसका ध्येय न था। सुदर्शन मुनि से उसे द्रव्य नहीं मिल सकता था, इसलिए वह उन्हें पतित करने का प्रयत्न न करती। परन्तु पंडिता के कुसङ्ग से उसने ऐसा प्रयत्न किया। इस प्रकार यह कथा कुसङ्ग का परिणाम भी बताती है।

शील पालन की यह कथा, आदर्श-रूप है। प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है, कि वह इस आदर्श तक पहुँच कर आत्मा का कल्याण करे। यद्यपि एक दम से आदर्श तक नहीं पहुँचा जा सकता, परन्तु आदर्श को दृष्टि में रखकर बढ़ाते रहने से आदर्श तक पहुँचना असम्भव भी नहीं है। उदाहरण के लिए, पढ़नेवाले लड़के के सामने आदर्श रूप जो अक्षर रहता है, लड़का एक दम से उस आदर्श अक्षर की तरह का अक्षर नहीं बना सकता, परन्तु उस अक्षर को देखकर अक्षर बनाते रहने पर और प्रयत्न करते रहने पर वैसा ही अक्षर बनाने भी लगता है। इसी के अनुसार शीलपालन का जो आदर्श इस कथा में है, उस आदर्श तक एक साथ न पहुँच सकने पर भी, प्रयत्न करने पर पहुँचना असम्भव नहीं है। इस दिशा में जो आदर्श तक पहुँच कर आत्म-कल्याण

SPS
891.433 S 11 S
23988

मण्डल ऑफिस से प्राप्य पुस्तकें

१ श्रावक का अहिंसाव्रत ।)
२ श्रावक का सत्यव्रत ≡)
३ श्रावक का अस्तेयव्रत =)
४ श्रावक का ब्रह्मचर्यव्रत =)
५ श्रावक का परिग्रह
परिमाण व्रत =)॥
६ सकडाल पुत्र =)
७ हरिश्चन्द्र—तारा ॥)
८ धर्म व्याख्या =)
९ सुबाहुकुमार
१० सनाथ अनाथ निर्णय
११ सती-राजमती
१२ सती-वसुमती
(चन्दनबाला)
१३ रुक्मणी विवाह
१४ सुदर्शन चरित्र ।
१५ सेठ धन्नाजी (छपे
१६ श्रावक के गुणव्रत
(छपे

इसके अतिरिक्त पूज्य श्री १००८ श्री श्रीलालजी महाराज जीवन चरित्र, तीर्थंकर चरित्र दोनों भाग, धार्मिक परीक्षा की साधारण तथा प्रवेशिका परीक्षा की पाठ्य पुस्तकें, सधर्म म अनुकम्पा विचार, पंडित शङ्करप्रसादजी द्वारा लिखित शाल तथा आदर्श, क्षमा, आदि पुस्तकें, श्रीमान् बालचंदजी श्रीश्री द्वारा प्रकाशित वैधव्य दीक्षा, स्वर्गीय संसार, परमात्म प्रार्थना अ पुस्तकें, श्री श्वे० स्था० जैन कान्फ्रेन्स बम्बई द्वारा प्रकाशित श्री द वैकालिक उत्तराध्ययन सूत्र, आचारांगादि के अनुवाद, यति छोटेलालजी द्वारा प्रकाशित पूज्य श्री के राजकोट आदि व्याख्यान (गुजराती में) इत्यादि पुस्तकें भी मण्डल से प्राप्त सकती हैं।

पता —

श्री साधुमार्गी जैन पूज्य श्री हुक्मीचंद
महाराज की सम्प्रदाय का हितेच्छु
श्रावक मण्डल, रतलाम (माल

मण्डल ऑफिस से प्राप्य पुस्तकें

१ श्रावक का अहिंसाव्रत	।)
२ श्रावक का सत्यव्रत	≡)
३ श्रावक का अस्तेयव्रत	=)
४ श्रावक का ब्रह्मचर्यव्रत	=)
५ श्रावक का परिग्रह परिमाण व्रत	=)॥
६ सकडाल पुत्र	=)
७ हरिश्चन्द्र—तारा	॥)
८ धर्म व्याख्या	=)
९ सुबाहुकुमार	
१० सनाथ अनार्थ निर्णय	
११ सती-राजमती	
१२ सती-वसुमती (चन्दनबाला)	
१३ रुक्मणी विवाह	
१४ सुदर्शन चरित्र	।
१५ सेठ धन्नाजी	(छपे
१६ श्रावक के गुणव्रत	(छपे

इसके अतिरिक्त पूज्य श्री १००८ श्री श्रीलालजी महाराज जीवन चरित्र, तीर्थंकर चरित्र दोनों भाग, धार्मिक परीक्षा की साधारण तथा प्रवेशिका परीक्षा को पाठ्य पुस्तकें, सधर्म म अनुकम्पा विचार, पंडित शङ्करप्रसादजी द्वारा लिखित शाल तथा आदर्श, क्षमा, आदि पुस्तकें, श्रीमान् बालचंदजी श्रीश्री द्वारा प्रकाशित वैधव्य दीक्षा, स्वर्गीय संसार, परमात्म प्रार्थना अ पुस्तकें, श्री श्वे० स्था० जैन कान्फ्रेन्स बम्बई द्वारा प्रकाशित श्री द वैकालिक उत्तराध्ययन सूत्र, आचारांगादि के अनुवाद, यति छोटेलालजी द्वारा प्रकाशित पूज्य श्री के राजकोट आदि व्याख्यान (गुजराती में) इत्यादि पुस्तकें भी मण्डल से प्राप सकती हैं।

पता—

श्री साधुमार्गी जैन पूज्य श्री हुक्मीचंद
महाराज की सम्प्रदाय का हितेच्छ
श्रावक मण्डल, रतलाम (माल